श्री पूर्णानन्दगिरि परिव्राजक परमहंसविरचित

श्यामारहस्यतन्त्रम्

'शंकर' हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः
पंडित हरिशंकरशास्त्री
विद्यारत्न, विद्यानिधि

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

३३५

******

६४ तन्त्रों का सार सर्व तन्त्रोत्तम

श्यामारहस्यतन्त्र

भाषाटीका सहित

टीकाकार

पंडित हरिशङ्करशास्त्री

विद्यारत्न, विद्यानिधि

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

पूर्वद्रष्टव्यम्

भो तांत्रिको ! आपकी चिरकालीन आशा पूर्ण हो गई जिस श्यामारहस्य तंत्र को तांत्रिक जन बाहर की हवा भी नहीं लगाते थे वही तंत्र आज छपाकर प्रकाशित किया गया है। इस तंत्र के द्वारा साधक, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, कुबेर, यम, देव, दानव, भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस, पन्नग, ब्रह्मराक्षस, बैताल आदि सम्पूर्ण चराचर को वश में कर सकता है। इसी के द्वारा मारण मोहन, वशीकरण उच्चाटन, आकर्षण आदि जिस जिस कार्य की आवश्यकता हो सिद्ध कर लीजिये। अष्टसिद्धि नवसिद्धि तो साधक के संमुख हाथ बांधे सदैव उपस्थित ही रहती हैं।

जिसके प्रभाव से ब्रह्मा, सृष्टि उत्पन्न करता है, विष्णु पालन करता है, शिव संहार करता है जिसके प्रभाव से जड़ चेतन स्थावर जंगम प्रतीयमान हो रहे हैं जिसके साधन से मुमुक्षु को मोक्ष प्राप्त होता है इस तंत्र में। उन्ही महामाया कालिका का विधान साधन प्रकारकवच, सहस्रनाम स्तोत्रनाम स्तोत्रादिकों के द्वारा वर्णन किया है. कालिका का पूजन प्रकार अत्युत्तमता से वर्णन है यह सामान्य दर्शाया है ग्रन्थ की गुरुता वाणी से कथन नहीं होती देखने से ही प्रतीत होती है जिसका तंत्रशास्त्र में रुचि है या जो कालिका के उपासक हैं अथवा ज़िनका विश्वास तंत्र में नहीं है उनको ही क्या सम्पूर्ण गृहस्थी को गृहस्थ की रक्षार्थ रखना योग्य है यदि आपको संस्कृत के गद्य पद्यों का आनन्द लेना है यदि आपको प्राचीन कविता को देखना है यदि आपको जगन्मोहिनी कालिका को प्रसन्न करना है और अपना हित चाहते हों तब अवश्य इस महान आश्चर्य ग्रंथ के ग्रहण करने में विलम्ब मत करो।

हरिशङ्कर शास्त्री

विषय सूची

❀ श्रीगणेशायनमः ❀

अथ श्यामारहस्य तंत्रम्।

भाषाटीका सहितम् ॥

मंगलाचरण।

गणेशंसिद्धिसदनं शारदां सुखदायिनीम्। शंकरं शंकरं नत्वा सर्वा पत्तिनिवारणम्॥ सर्वाभीष्टप्रदां शुभ्रां साधकानां मनोरमाम्। श्यामारहस्यतंत्रस्य कुर्वे व्याख्यां सुमंगलाम्॥

प्रथमः परिच्छेदः।

देवीं दानवदैत्यदर्पदलनेत्रहानुन्मूलयन्तीं शिवां ब्रह्मानन्दमहेशमौलिमणिभिः संसेवितांघ्रिद्वयाम्। नत्वा श्रीगुरुपादपद्मपरमामोदामृतप्लावितः पूर्णानन्दगिरिस्तनोति विमलां श्यामारहस्याभिधाम्।

स्वतन्त्रं वीरतंत्रञ्च तन्त्रं फेत्कारिणीं तथा। कालिकाकुलसर्वस्वं कालीतंत्रंच यामलम्॥

कुलचूडामणिञ्चैव कुमारीतंत्रमेवच। कुलार्णवं तथाकालीकल्पं भैरवतंत्रकम्॥ कालिकाकुलसद्भावं तथा चोत्तर तन्त्रकम्। गुरूणांच

जो दानव और दैत्य गणों का दर्प उन्मूलन करते हैं ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादि ईश्वर श्रेष्ठगण भी जिनके दोनों चरणों की सेवा करते हैं उन्हीं देवी शिवा को प्रणाम करके और श्री गुरु के चरणारविन्द के परमानन्द सुधा संदोह में प्लावित होकर पूर्णानंदगिरि श्यामारहस्य नाम्नी अतीव दुर्लभ तंत्रसंहिता प्रणयन करते हैं॥ १॥

स्वतन्त्र वीरतंत्र, फेत्कारिणीतंत्र कालिकाकुल सर्वस्व, कालीतंत्र, यामल, कुलचूडामणि, कुमारीतंत्र कुलार्णव, कालिकल्प, भैरवतंत्र, कालिकाकुलसद्भाव, उत्तरतंत्र

मतं ज्ञात्वा साधकानां तथा मतम् ॥ शुद्धिबुद्धिस्वभावार्थं वक्ष्यामि मोक्षकारिणीम् ॥

तदुक्तं स्वतंत्रे ।

क्रोधीशं विन्दुयुककान्ते ! त्रिमूर्त्यग्निसमायुतम् । त्रिर्लिखेत् परतो देवि ! हुंकारद्वयमेव च । मायाद्वयं समालिख्य अत्रिसंवर्त्त-सूक्ष्मयुक् ॥ त्रैकालिके सप्तवर्णन् पूर्ववत् परमेश्वरि ! स्वाहान्तेयं महाविद्या द्वाविंशत्यक्षरापरा ॥ अनया सदृशी विद्या नास्तिज्ञानेतु मामके ॥

कुमारीतन्त्रेऽपि । भैरव उवाच ।

अतिगुह्यतरं ह्येतत् ज्ञानात्मकं सनातनम् । अतीव च सुगोप्यञ्च कथितुं नैव शक्यते ॥ अतीव च प्रियासीति कथयामि तव प्रिये ! रूपाणि बहुसंख्यानि प्रकृतेः सान्ति भाविनि ! ॥ तेषां मध्ये महेशानि कालिरूपं मनोहरम् । विशेषतः कलियुगे नराणां भुक्तिमुक्तिदम् । तस्यास्तू पासकारश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः । चन्द्रःसूर्यश्च वरुण कवेरोऽग्निस्तथापरः ।
दुर्वासाश्च वशिष्ठश्च दत्तात्रेयो बृहस्पतिः । बहुना किमिहोक्तेन सर्वे देवा उपासकाः ॥ कालिकायाः प्रसादेन भुक्तिमुक्तिःकरेस्थिता ॥ तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि यतो रक्षेयगत्रयम् । ककारं वह्निसंयुक्तं रतिविन्दुस-

---

एवं गुरुवर्ग और साधकगणोंका मत यह सब विशेष जानकर शुद्ध बुद्धि स्वभावार्थ यह मोक्षजनक संहिता कीर्तन करूंगा ॥

कुमारीतंत्र में भैरवने कहा है कि काली का विषय अत्यन्त गुह्यतर है । यह अतीव गुप्त रक्खे । किसीके निकट नकहै, तुम मेरी अत्यन्त प्रिय हो, इसकारण तुम्हारे निकट कहता हूं ॥

हे भामिनि ! प्रकृति के बहुसंख्यक रूप हैं तिनमें हे महेश्वरी ! काली रूप हीं मनोहर है - विशेषतः कलियुग में यह काली रूप ही संपूर्ण लोक को भुक्ति मुक्ति प्रदान करता है । ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि ईश्वरगण और चन्द्र, सूर्य, वरुण, कुवेर, अग्नि, दुर्वासा, वशिष्ठ, दत्तात्रेय, बृहस्पति, अथवा अधिक कहनेसे क्या है ? समस्त देवताभी उसीके वशीभूत हैं । कालिकाके प्रसाद से भुक्ति मुक्ति करस्थ होती है । उसका मंत्र कहता हूं । ककारको वह्निसंयुक्त और रतिविन्दु समन्वित

मन्वितम् ॥ त्रिगुणंच ततः कूर्चं युग्मं लज्जायुगं तथा । दक्षिणे कालिके चेति पूर्ववीजानि वेष्टयेत् ॥ वह्निजायावधिः प्रोक्तः कालिकाया मनुर्मतः । न सुसिध्य ह्यपेक्षास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ॥

श्रुतिरपि–अर्थहनां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मस्वरूपिणीमाप्नोति सुभगां त्रिगुणयुक्तां कामरेफेन्दिरां विन्दुमेलनरूपां एतत्त्रिगुणितामादौ तदनु कूर्चद्वयम् । कूर्चवीजञ्च–व्योमषष्ठस्वर विन्दुमेलनरूपम् । तदेव द्विरुच्चार्य्य भुवनां द्वयम् । भुवना तु व्योमज्वलनेन्दिरा शून्यमेलनरूपा। तदुक्तं–दक्षिणे कालिके तवाभिमुख्यता । तदनु वीजसप्तकमुच्चार्य्य धृहद्भानुजायामुच्चरेत् । मत्वा शिवमयो भवेत् । सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । गतिस्तस्यास्ति नान्यस्य स तु नारीश्वरः स तु दैत्वोश्वरः स तु सर्वेश्वर इति ॥

भैरव उवाच ।

नात्र चिन्ताविशुद्धिर्वा नारिमित्रादिदूषणम् । न वा प्रयासऽबाहुल्यं समयासमयादिकम् ॥ देवैर्देवत्वविषये सिद्धैः खेचरसिद्धये । पन्नगैराक्षसैर्वन्यैर्मुनिभिश्च मुमुक्षुभिः ॥ कामिभिर्धर्मिभिश्चार्थलिप्सुभिः सेवितां पराम् । न चित्तव्ययवाहुल्यं कायक्लेशकरं न च ॥ तत्र

करके त्रिगुणित करै फिर कूर्चयुग्म और लज्जायुग्म ग्रहण करके "दक्षिणे कालिके" यह पद मिलाय संपूर्ण पूर्व वीज वेष्टन करने चाहियें । अंतमें वह्निजाया संयुक्त करै इसकोही कालीमंत्र कहते हैं ॥ ❀

इसमंत्र में किसीप्रकार सुसिद्धादि की अपेक्षा नहीं है । अरिमित्रादि दूषण भी नहीं है इसके मननमात्रसेही पुरुषशिवमय होसक्ता है और संपूर्ण सिद्धियों का ईश्वरत्व लाभ होता है । इस में किसी प्रकारका परिश्रम करना नहीं होता समय असमयकी भी अपेक्षा नहीं है । देवगण देवत्व सिद्धिके लिये सिद्धगण खेचर सिद्धि के लिये, कामिगण धर्मिगण, और द्रव्य की इच्छा करने वाले मनुष्य अपने अपने अभिप्राय सिद्धिके लिये इस भगवती कालिकाकी परिचर्या करते हैं । इस में वित्तव्यय

❀ इसका सन्निवेश इस प्रकार है क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा । वह्नि शब्द में र, रतिविन्दु शब्द में दीर्घईकार का परचन्द्र बिन्दु है; तो क × ^ × ि ी × ँ = ह्रीं इस प्रकार हुआ । इस को त्रिगुणित करनेसे क्रीं क्रीं क्रीं होता है कूर्च शब्द में हूं, लज्जा शब्द में ह्रीं, वह्नि जाया शब्द में स्वाहा ॥

यश्चिन्तयेन्मन्त्री सर्वसिद्धिसमृद्धिदाम् ॥ तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः। गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ॥ तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः। राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः। वह्नेः शैत्यं जलस्तम्भं गतिस्तम्भं विवस्वतः॥ दिवारात्रिव्यत्ययञ्च वशीकर्तुं क्षमो भवेत्। सर्वस्यैव जनस्यैव वल्लभः कीर्तिवर्द्धनः॥ अन्ते च भजते देव्या गणत्वं दुर्लभं नरैः। चन्द्रसूर्य-समो भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि। न तस्य दुर्लभं किञ्चिद् यः स्म-रेत् घोरदक्षिणाम् ॥

अथास्याः सपर्य्याविधिर्लिख्यते—ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय बद्धपद्मासनः शिरःस्थाधोमुखशुक्लवर्ण—सहस्रदलकमलकर्णिकास्थ—शशहीनशर-दिन्दुसुन्दर—चन्द्रमण्डलांतर्गन्तहंसपीठे निजगुरुं ध्यायेत् ॥ यथा— शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुद्धक्षौमविराजितम्। गन्धानुलेपनं शान्तं वराभय-कराम्बुजम् ॥ मन्दस्मितं निजगुरुं कारुण्येनावलोकिनम्। वामोरुश-क्तिसंयुक्तं शुक्लाभरणभूषितम्॥ स्वशक्त्या दक्षहस्तेन धृतचारुकलेव-रम्। वामे धृतोत्पलायाश्च सुरक्तायाः सुशोभनम् ॥ परानन्दरसो-ल्लासलोचनद्वयपङ्कजम् ॥

(धनकाव्यय) वा कायक्लेश स्वीकार करना नहीं होता है। देवि कालिका सर्वविध सिद्धि और संपूर्ण समृद्धि प्रदान करती है। जो मंत्रशील पुरुष इनको चिन्ता करता है, समस्त सिद्धि सर्वदा उसके हस्तगत रहती है इस विषय में संदेह नहीं है। अधिक क्या सभामें उसके मुखसे गद्यपद्यमयीवाणी प्रादुर्भूत होती है । उसको देखते ही वादीगण तत्काल निष्प्रभ (प्रभाहीन) होते हैं। अन्यकी बात क्या कहूं स्वयं नरपति-गणभी उसका दासत्व करते हैं। वह व्यक्ति अग्निको भी शीतल, जलको भी स्तम्भित सूर्यकी गतिको भी अवरुद्ध, दिनको भी रात्रि और रात्रि का दिन करके सबको वशी-भूत करने में समर्थ होता है शत्रु मित्र आत्मपर (अपना पराया) सब लोकोंका वल्ल-भ और कीर्ति बंधन होता है शरीर छोड़कर चरम में देवीका सुदुर्लभगणत्व लाभ करता है चन्द्र सूर्यकी समान होकर अयुतकल्प (दशकल्प) स्वर्ग में अवस्थिति करता है। फलतः जो व्यक्ति दक्षिण कालिका और श्मशान कालिका का स्मरण करता है उस को कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥

इति ध्यात्वा दिव्याभिषेकेण गुरुणा संप्रदायानुगतकृतनामपूर्वकं मानसैरुपचारैराराध्य ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसक्षमलवरयुं हसक्षफ्रें श्री-अमुकानन्दानाथ श्रीअमुकदेवशर्मा श्रीगुरुपादुकां पूजयामि । इति गुरुपादुकां नत्वा दशधा जपसमर्पणं कृत्वा प्रणमेद् यथा—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अथ शारदाटीकाकारश्रीराघवभट्टमतेन तु शक्तिविषये गुरोर्ध्यानम् । शुक्लवर्णमेव न गौरम् । तदितरविषये शुक्लमेवेति निश्चितं वचनद्वयदर्शनात् । तद्यथा—

श्वेताम्बरधरं गौरं श्वेताभरणभूषितम् । अपिच—रक्तमाल्याम्बरधरं सुरक्तं पद्मविस्तरम् ॥

इति तु असमीचीनम् । श्वेतवर्ण गुरोर्ध्यानानन्तरं भवति शक्तिविषये तु तथा दर्शनात् । यथा ज्ञानार्णवे—

ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे कर्पूरधवलो गुरुः । तस्मात् सम्प्रदायानुगत्या गुरोर्ध्यानं कुर्यात् ॥ इति शेषः ।

अथ गुरोराज्ञां गृहीत्वा मूलाधारपद्मकर्णिकास्थत्रिकोणान्तर्गत-स्वयम्भूलिङ्ग वेष्टनीं प्रसुप्तभुजगाकारां सार्द्धत्रिवलयां विद्युत्पुञ्जप्रभां

अब देवीकी पूजाविधि लिखते हैं । ब्राह्ममुहूर्त में उठ, बद्ध पद्मासन हो मस्तक व अधोमुखमें संस्थित शुक्लवर्ण सहस्रदलकमलकर्णिका में अधिष्ठित शरत्कालीन शशहीन चन्द्रमाकी समान सुन्दर चन्द्रमण्डल के अन्तर्गत हंसपीठ में निज गुरु का ध्यान करे । यथा वह शुद्ध स्फटिक सन्निभ, शुद्ध क्षौम विराजित, गंधानुलिप्त, शमगुण विशिष्ट, वराभयकर--पद्म समन्वित, मृदुहास्यसमलंकृत, सकरुण दृष्टिसंपन्न और इन के वामऊरु में शक्ति विराजमान है । उनके समस्त आभरण शुक्लवर्ण हैं, स्वकीय शक्ति दक्षिणहस्त में तदीय सुचारु कलेवर धारण किया है और उत्पल हस्त में होने से उन का वामभाग शोभा पाता है तिसके द्वारा उनकी परम शोभा का संचार हुआ है उनके नेत्र कमल परमानंद रासोल्लास में विकसित हैं । अनंतर गुरुकी पादुका पूजा पुरःसर उसमें दशवार नमस्कार करके जप समर्पणानन्तर प्रणाम करै । यथा-जो ज्ञान-रूप अंजन शलाका की सहायता से अज्ञानतिमिर में अंधीभूत (अंधे) लोकों के चक्षु उन्मीलित करते हैं, उन्हीं श्रीगुरुको नमस्कार है ।

अनंतर श्रीगुरुकी आज्ञा ग्रहण कर, मूलाधार पद्मकर्णिकास्थित त्रिकोण-मध्य-गत स्वयम्भूलिंग को जिन्होंने वेष्टन कियाहै, जिनका आकार प्रसुप्त (सोते हुये)

नीवारशूकतन्वीं कुलकुण्डलिनीं इष्टदेवतास्वरूपां हुंकारेण हंसइति मनुना वधे वनदहनयोगात् सचैतन्यां विधाय ब्रह्मवर्त्मना परमशिव नीत्वा चन्द्रमण्डले कुलगुरून् ध्यायेत् । तदुक्तं कालिकास्मृतौ—

मूलाधारे स्मरोद्दिव्यं त्रिकोणं तेजसां निधिम् । तस्याग्निरेखामानीय अध-ऊर्द्ध व्यवस्थिताम् ॥ नीलतोयदमध्यस्थताड़िल्लेखेव भासुरम् । नीवारशूकतन्वीञ्च सुपीतां भास्करोपमाम् ॥ तस्याः शिखाया मध्ये-च परमोर्द्धव्यवस्थिताम् । सब्रह्मा स स्वरः शान्तःसशिवःपरमस्वराट् । स एव विष्णुः सप्राणः, स कलाग्निः सचन्द्रमाः ॥ इति कुण्डलिनीं ध्यात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । स महापातकेभ्यश्च पूतो भवति । सर्व-सिद्धिं कृत्वा भैरवो भवति ।

अथ कुलगुरून् ध्यायेत् यथा कुलचूड़ामणौ–मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्त गुणं ध्यात्वा गुरुं स्मरेत् । प्रह्लादानन्दनाथाख्यं सकलानन्दमेवच ॥

भुजंग (सर्प) की समान है, जो सार्द्ध त्रिवलय परिमित और विद्युत् पुंजप्रभा और नीवार शूकर की समान तनुभावापन्न है उन्हीं इष्टदेवतास्वरूप कुलकुण्ड-लिनी को हुंकार सहित हंस इत्यादि मंत्रमें जागरितकर ब्रह्मवर्त्म योग परम शिवमें लाकर उसमें संयुक्त करै । अनन्तर उनके सहित कुलगुरु इत्यादि सबका एकत्र ध्यान करै ।

कालिका स्मृति में भी कहा है कि मूलाधारमें जो तेजोनिधि दिव्य त्रिकोण विराज-मान है उसको स्मरण कर, उस में अग्निरेखा आनयनपूर्वक उस शिखाके मध्य अधः ऊर्ध्वमें जो अवस्थिति करती है, जो नीलतोयद मध्यस्थ तडिल्लेखा (विजलीके रेख) की समान परम विकटस्वर भावयुक्त हैं जो नीवार शूकर की समान अतिसूक्ष्म स्वरूप संपन्न है जो सुन्दर पीतवर्ण और भास्कर सदृशी हैं उन्हीं परम ऊर्ध्वमें व्यवस्थिता कुलकुण्डलिनीका ध्यानकरै । क्योंकि वही ब्रह्मा, वही विष्णु, वही स्वर्ग, वही परम-स्वप्रकाश शिव, वही प्राण वही कालाग्नि और वही चन्द्रमा हैं। इसप्रकार कुलकुण्ड-लिनी का ध्यान करने से सर्व प्रकार के पाप दूर होते हैं । वही क्या संपूर्ण महापातकों से भी परम विशुद्धि प्राप्त होती है और सर्व विधि-सिद्धि संग्रह सहित भैरवत्व लाभ होता है ।

कुल चूडामणि में सब कुलगुरुओं का निर्देश किया है । यथा मूलादि ब्रह्म रन्ध्रा-न्त का ध्यान करके गुरुका स्मरण करे। प्रथम प्रहलादानन्दनाथ फिर यथाक्रम से

कुमारानन्दनाथाख्यं वशिष्ठानन्दनाथकम् । क्रोधानन्दसुखानन्दौ ध्यानानन्दंततःपरम् ॥ बोधानन्दं ततश्चैव ध्यायेत् कुलमुखोपरि । महारसरसोल्लास हृदयाघूर्णलोचनाः ॥ कुलालिङ्गनसंभिन्ना घूर्णिता-शेषमानसाः । कुलशिष्टैः परिवृता पूर्णान्तः करणोद्यताः ॥ वराभययुताः सर्वे कुलतन्त्रार्थवादिनः ।

एवं कुलगुरून्नत्वा विसृज्य कुलमातृकाम् ॥ कुलस्थाने समानीय स्नानार्थं तीर्थमाश्रयेत् । शाक्तं कुलगुरुं वत्स! स्मृतं कुलसुखावहम् ॥ रहस्यमद्भुतं प्रोक्तं गोप्तव्यं पशुसङ्कटे । कुलनाथं परित्यज्य ये शाक्ताः परसेवेन. । तेषां शिक्षा च यागश्च अभिचाराय कल्पते । तस्मात् सर्व प्रयत्नेन कुलीनं गुरुमाश्रयेत् ॥ कुलीनः सर्वविद्यानामधिकारीति गयिते । दीक्षागुरुः स एवात्मा सर्वमन्त्रस्य नापरः॥

अन्यच्च श्रुतौ—

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् । अन्तः पदव्यामनुसञ्चरन्तीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ॥ इति । अहं देवो न

सकलानन्दनाथ, वशिष्टानंदनाथ, क्रोधानन्दनाथ, सुखानन्दनाथ ध्यानानन्दनाथ, वोधानन्दनाथ, इनका ध्यान करे। ये सब कुलगुरु पद वाच्य हैं। इनका हृदय परमानंद रस में उल्लसित. लोचनघूर्णित और अन्तःकरण पूर्णभाव युक्त है। कुल शिष्यगणों ने इनको वेष्टन कर रक्खा है. यह सभी वराऽभय संपन्न एवं सभी कुल और तंत्रार्थ वादी हैं।

इस प्रकार कुलगुरु गणों को प्रणामकर विदादे, कुलमातृका को कुलस्थान में लाकर स्नानार्थ तीर्थ का आश्रय करै शाक्त कुलगुरुही कुलसुख देनेवाले कहकर निर्दिष्ट हुए हैं। इस विषय में जो अद्भुत रहस्य कथित हुआ है उसको पशु संकट में गायन करै। जो शाक्त कुलनाथ को परित्यागकर अपर (दूसरे) की सेवाकरते हैं, उनकी शिक्षा और याग समस्तही अभिचार में परिकल्पित होते हैं। इसी कारण सर्व प्रयत्न से गुरुका आश्रय ग्रहण करै। कुलीन गुरु ही सर्व विद्या के अधिकारी कहकर परिग-णित हैं। वही दीक्षागुरु हैं। क्योंकि वही सब मंत्रों की आत्मा हैं, अन्य कोई नहीं॥

श्रुतिमें भी कहा है. जो प्रथम प्रयाण में प्रकाशमान, प्रति प्रयाणमें अमृतायमान और अन्तःपदवी में अनुसञ्चरण करती हैं, उन्ही आनन्दरूपिणी अबला को शरण

चान्योऽस्मि ब्राह्मैवाहं न शोकभाक्। सच्चिदानन्दरूपोऽहमात्मानमिति भावयेत् ॥ प्रातःकृत्यमवश्यमेव नित्यं करणीयम्। प्रातःकृत्यमकृत्वा तु यो देवीं भक्तितोऽर्चयेत्। तस्य पूजा च विफला शौचहीना यथा-क्रिया ॥

अथ नद्यादौ गत्वा कालिकारूपं सर्वं विभाव्य सुवर्णरजतात्मकं कुलगर्भमनामातर्जनीषु धृत्वा आचम्य मूलं स्मरन्। मलापकर्षकं कृत्वा आचम्य ॐ अद्येत्यादि कुलदेवताप्रीतिकामो मन्त्रस्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य जले त्रिकोण चक्रं कृत्वा सूर्य्यमण्डलादङ्कुशमुद्रया तीर्थ-मावाह्य मूलान्ते ॐ आत्मतत्वाय स्वाहा। विद्यातत्वायस्वाहा। शिव-तत्वायस्वाहा। इति आचामेत् ॐ ह्रीं स्वाहा। इत्यनेन त्रिराचम्या-त्मानं त्रिःसंप्रोक्ष्य मूलेन मृत्तिकाया अङ्गलेपनं कृत्वा मूलं पठन् कुम्भ-मुद्रया स्वमूर्ध्नि त्रिर्जलमभिषिच्यांगुलीभिः श्रवणादीनि सप्तच्छि-द्राणि संरुध्य त्रिर्निमज्जेत्। तदुक्तं कुमारीतन्त्रे—

वेदाद्यञ्च तथा माया स्वाहेत्याचमनं मतम्। नीलतन्त्रेऽपि मृत्कु-शानपि संगृह्य गत्वा जलान्तिकं ततः ॥ मलापकर्षकं कृत्वा मन्त्रस्नानं समाचरेत्। विद्यया त्रिर्निमज्यैव आचामेत् पयसा पुनः ॥

करता हूं। तथाहि मैं ही देव हूं अन्य कोई नहीं। मैं ही ब्रह्म सुतरां किसी काल में भी मुझ को शोक भोग करना नहीं होना। मैं ही सच्चिदानंद विग्रह हूं। आत्मा की इसरूपमें भावना करै। नित्य अवश्यही प्रातःकृत्य करना चाहिये। जो व्यक्ति प्रातःकृत्य न करके भक्ति सहित देवीकी अर्चना करताहै, उसकी वह पूजा शौच हीन क्रिया की समान विफल होती है।

अनन्तर नद्यादि में गमन और सर्वतोभाव में कालिका के रूपकी चिन्ता कर अनामा और तर्जनीमें सुवर्ण रजतात्मक कुलगर्भधारण पूर्वक आचमन सहित मूलमंत्र स्मरणान-न्तर अघमर्षण करै। तदनंतर आचमन करके " ओंअद्येत्यादि " कह संकल्प कर जल में त्रिकोणचक्र निर्माण और अंकुशमुद्रा की सहायता से सूर्य-मण्डलसे तीर्थ आवाहन पुरः सर मूलमंत्र जपके अन्त में ओंआत्म तत्वाय इत्यादि कहकर आचमन करना चाहिये। अथवा ओं ह्रीं स्वाहा इत्यादि विधान से तीन वार आचमन और तीनवार आत्मा को संप्रोक्षण पूर्वक मूलमंत्र जपकी सहायता से मृत्तिका ग्रहण और उससे अंगलेपन कर मूलमंत्र का पाठ करै। पाठके अन्त में कुम्भ मुद्राकी सहायता से अपने मस्तक में तीनबार जलसेचन (मांथे से

कुलचूड़ामणौ—

कृष्णरक्तहरित्पीता विविधा मम मूर्त्तयः । तत्र यत् कुल शिष्यश्च स तद्रूपं परामृशन् ॥ दिवं सर्वामथोर्वीञ्च पाताल भूतसम्भवाम् । आचान्तः कुलदर्भेण स दर्भःकुलपुत्रकः ॥ कुलपात्रे तु दूर्वाञ्च सतिलं जसलं ततः । गृहीत्वा कुलदेवस्य प्रीतये स्नान-माचरेत् ॥ कृतसङ्कल्प एवादौ कुलचक्रं जले न्यसेत् । जलस्थानात समानीय कुलमुद्रांकुशेन च॥ कुलतीर्थानि तत्रैव समावाह्य शिवात्मकम् तत्तोयञ्च त्रिधापीत्वा त्रिधाच प्रोत्तणं मतम् ॥

अथ अंकुशमुद्रा । यथाज्ञानार्णवे—

दत्तमुष्टिं विधायाथ तर्जन्यंकुशरूपिणी । अंकुशाख्या महामुद्रा त्रैलोक्याकर्षणक्षमा ॥

तीन धार जल गिराना) कर संपूर्ण अंगुलियों के साहचर्य कहीं २में श्रवणादिसप्तछिद्र संरुद्ध करके तीनबार निमग्न होवै ।

कुमारीतंत्र में कहा है कि,वेदादि माया और स्वाहा इत्यादि ही आचमन कह कर परिगणित हैं । नीलतन्त्र में भी कहा है कि मृत्तिका और कुशग्रहण पूर्वक जला-न्ति (बावड़ी) को गमन और अघमर्षण करके मंत्रस्नान करें । विद्या तत्वकी सहायता से तीनबार अवगाहन कर पुनर्वार जल ग्रहणपूर्वक आचमन करना चाहिये । कुल चूडामणि में कहा है कि समस्त मूर्ति कृष्ण, रक्त, हरित और पीत इत्यादि भेद से नाना प्रकार हैं । तिनमें जो कुल शिष्य है वह वैसे ही परामर्श पूर्वक आचमन और कुलपात्र में दूर्वा एवं तिल सहित जल ग्रहण करके कुलदेवकी प्रीतिके लिये स्नान करै । अनन्तर संकल्प कर, जल में कुलचक्र निक्षेपपूर्वक जल स्थान से आय, उस स्थानमें ही कुल मुद्रांकुश द्वारा संपूर्ण कुल तीर्थों का आवाहनकर वह शिवात्मक जल तीन बार पान और तीनबार मंत्रका प्रोक्षण करै ।

अंकुशमुद्रा ? यथा ?—ज्ञानार्णवमें दश मुष्टिविधान पूर्वक तर्ज्जनी को अंकुश रूपिणी करे । इसकाही नाम अंकुशाख्य महामुद्रा है । इसके द्वारा त्रैलोक्य आकर्षण कर सकता है तीर्थावाहनमंत्र यथा—श्रीक्रम संहिता में गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी तुम संपूर्ण जलमें सन्निहित (स्थित) होओ । स्वतन्त्र में भी कहाहै यथा-साधकाग्रगण्य पुरुष मूलमंत्र पाठकरके कुम्भमुद्रा द्वारा मस्तक में जलका छींटादे तीन बार आचमन करै । अनन्तर आत्मतत्व, विद्यातत्व, और शिवतत्व

तीर्थावाहनमन्त्रो यथा श्रीक्रमसंहितायाम्—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

अथ स्वतन्त्रेऽपि—

मूलं पठन् मूर्ध्नि तोयं मुद्रया कुम्भसंज्ञया। क्षिप्त्वा वारत्रयं देवि! आचामेत् साधकाग्रणीः। आत्मविद्याशिवैस्तत्वैस्ततो यागग्रहं विशेत्॥

कुम्भमुद्रा यथा गुप्तार्णवे—

दक्षांगुष्ठे परांगुष्ठं क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन तु। सावकाशाञ्चैव मुष्टिं कुम्भमुद्रां विदुर्बुधाः! सप्तच्छिद्राणि संरुध्य ततो मज्जेत् त्रिधा सुधीः॥ आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैराचामेत् साधकाग्रणीः। वह्निजायां ततो दत्त्वा शुद्धेन पयसा प्रिये!॥

ॐ मानध्वनि वज्रिणि महाप्रतिशरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। इति शिखाबन्धनम्। मूलेन तिलकं कृत्वा पूर्ववदाचम्य वैदिकां सन्ध्यां विधाय तान्त्रिकीं सन्ध्यां कुर्य्यात्। तदुक्तं कुमारीकल्पे-

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मानान्ते च ध्वनीति च। वज्रिणीति पदं प्रोक्तं महाप्रतिशरे तथा॥ रक्षद्वयं हुं फट् स्वाहा इति च तदनन्तरम्॥ अनेनैव च मन्त्रेण रक्षां कुर्य्याद्विचक्षणः॥

रक्षामिति शिखाबन्धनरूपेण वस्त्राञ्चले ग्रन्थिबन्धनरूपेण वा कुर्य्यादित्यर्थः। शारदाटीकायाञ्च-

उक्तेनैव विधानेन कृत्वा स्नानञ्च तान्त्रिकम्। वैदिकीं तान्त्रिकीं सन्ध्यां कृत्वा तर्पणमाचरेत्॥

सहित यागगृहमें प्रविष्ट होवे। कुम्भमुद्राका नियम यही है कि दक्षिण हाथ के अंगूठे में बायें हाथ का अंगूठा- निक्षेप करके दोनों हाथों के द्वारा परस्पर असंश्लिष्ट भाव में मुष्टिबंधन (मुट्ठीबांधने) को कुंभ मुद्रा कहते हैं। अनन्तर परम धीमान् साधक सप्तछिद्र संवरण (ढक) करके तीन बार अवगाहन पूर्वक आत्मतत्व, विद्यातत्व और शिवतत्व द्वारा आचमन करे। अनन्तर निर्मल जल द्वारा वह्निजाया को दान करके "ओं मानध्वनि" इत्यादि मंत्र से शिखाबंधन और मूलमंत्र से तिलक करके पूर्ववत् आचमन सहित वैदिकी संध्या विधानानन्तर तान्त्रिकी संध्या करे॥

तान्त्रिकीसन्ध्या यथा तदुक्तं तत्रैव–पुनराचम्य विन्यस्य षड़ङ्गमपि मन्त्रवित् । वामहस्ते जलं गृह्य गलितोदकाविन्दुभिः ॥ सप्तधा प्रोक्षणं कृत्वा मूर्ध्नि मन्त्रं समुच्चरन् । अवशिष्टोदकं दक्ष हस्ते संगृह्य बुद्धिमान् ॥ इड़याकृष्य देहान्तः क्षालितं पापसञ्चयम् । कृष्णवर्णं तदुदकं दक्षनाड्या विरेचयेत् ॥ दक्षहस्ते च तन्मंत्री पापरूपं विचिन्त्य च । पुरतो वज्रपाषाणे प्रक्षिपदस्त्रमन्त्रतः ॥

अन्यत्रापि—

षड़ङ्गन्यासमाचर्य वामहस्ते जलं ततः । गृहीत्वा दक्षिणे चैव संपुटं कारयेत्ततः ॥ शिववायुजलपृथ्वीवह्निबीजैस्त्रिधा पुनः । अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तधा तत्त्वमुद्रया ॥ निक्षिपेत्तज्जलं मूर्ध्नि शेषं दक्षे विधाय च । शरीरान्तःस्थितं पापं क्षालयेत् साधकाग्रणीः ॥

तांत्रिकी संध्या यथा–पुनर्वार आचमन और षडङ्गविन्यास पूर्वक वामहस्त में जल ग्रहण कर गलित उदक बिन्दु समूह में (सड़े हुएजल के। बूंदों में) सप्तबार प्रोक्षण और मस्तक में मंत्र समुच्चारणानन्तर अवशिष्ट उदक दक्षिण हाथ में संग्रह कर इडा द्वारा आकर्षण और देहान्तर्वर्त्ती पाप समूह प्रक्षालन करै। फिर कृष्णवर्ण उस उदक को दक्षनाडी द्वारा विरेचन और दक्षिण हाथ में उस को पाप रूपसे चिन्ताकर अस्त्र मंत्र में पुरोवर्त्ती वज्र पाषाण में उस जलको प्रोक्षण करै। अन्यत्र भी कहा है कि षडङ्गन्यास करके बांयें हाथ में जलग्रहण पूर्वक दक्षिण हाथ में संपुट करना चाहिये। फिर शिव वायु, जल, पृथ्वी और वह्नि बीज की सहायता से पुनर्वार तीनबार अभिमंत्रित और मूल मंत्र में तत्व मुद्रा द्वारा सातवार वह जल मस्तक में न्यस्त करै। अवशिष्ट जल दक्षिण हाथ में लेकर शरीरान्तः स्थित पाप प्रक्षालन करै॥

अब प्रयोग कहते हैं-पूर्ववत् आचमन तदुपरान्त यथाक्रमसे षड़ङ्गन्यास, वाम हस्तमें जल ग्रहण, दक्षिण हस्तमें आच्छादन, हं, वं, इत्यादि मंत्र से अभिमंत्रण, मूल मंत्र उच्चारण, गलित उदक विन्दु द्वारा तत्वमुद्राकी सहायता से मस्तक में सप्तबार अभ्युक्षण, अवशिष्ट जल दक्षिण हस्त में ग्रहण तेजोरूपमें ध्यान इडाद्वारा आकर्षण

अथ प्रयोगः पूर्ववदाचम्य षडङ्गन्यासं कृत्वा वामहस्ते जलं निधाय दक्षहस्तेनाच्छाद्य हं यं वं लं रं इति त्रिरभिमंत्र्य मूलमुच्चरन् गलितोदकबिन्दुभिः तत्वमुद्रया मूर्द्धनि सप्तधाभ्युक्षणं कृत्वा शेषजलं दक्षहस्ते समादाय तेजोरूपं ध्यात्वा इड़याकृष्य देहान्तः पापं प्रक्षाल्य कृष्णवर्णं तज्जलं पापरूपं ध्यात्वा पिङ्गलया विरिच्य पुरः कल्पितवज्रशिलायां फड़िति प्रक्षिपेत् । इति तांत्रिकी सन्ध्या ॥

ततः हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य जले यन्त्रं ध्यात्वा सावरणां देवतामावाह्य ऐशाने ऐं श्री अमुकानन्दनाथभैरवस्तृप्यतामिति देवतीर्थेन त्रिः सकृद्वा शुद्धोदकेन सन्तर्प्य वह्नौ परमगुरुं नैर्ऋत्यां परापरगुरुं वायव्यां परमेष्ठिगुरुं पूर्ववत् संतर्प्य मध्ये श्रीअमुकदेवता तृप्यतामिति यथाशक्तितः सन्तर्प्य एकैकांजलिना परिवारान् सन्तर्पयेत् ॥ अशक्तश्चेत् मूलमुचरन् सायुधसपरिवार-सवाहन-महाकालसहित-श्रीदक्षिणकालिकामाता तृप्यतामिति त्रिः सप्तधा वा ऋषीन् भैरवांतान् स्वकल्पोक्तविधिना स्वपित्रादीनपि सन्तर्प्य दूर्वाक्षतरक्तपुष्पा-

---

पूर्वक देहान्तवर्त्ती पाप प्रक्षालन और कृष्णवर्ण उस जलका पापरूप में ध्यान और पिंगलाद्वारा विरेचन, यह सम्पूर्ण कार्य करने के पीछे पुरः कल्पित प्रथम कल्पित वज्र शिला में अस्त्र मंत्रसे प्रक्षेप करै। यही तांन्त्रिकी संध्या है। अनन्तर हस्तप्रक्षालन आचमन, जलमें मंत्रध्यान, आवरण सहित देवता का आवाहन, ऐशान में ऐं श्री अमुकानंद इत्यादि कहकर देवतीर्थ में तीनबार वा एकबार विशुद्ध जल द्वारा तर्पण— यह संपूर्ण कार्य यथा क्रम से संपादन पूर्वक बह्नि में परम गुरु, नैऋतमें परापर गुरु, वायवीमें परमेष्टि गुरु-इनको पूर्ववत् सन्तृप्त करके मध्य में, श्री अमुक देवता तृप्त होवें, यह कहकर, यथाशक्ति उनके तर्पण सहित एक एक अंजलि द्वारा आचरण सबका तृप्त विधान करै। अशक्त (असमर्थ) होने से मूल मंत्र उच्चारण करके आयुध, परिवार, वाहन और महाकाल सहित श्री दक्षिण कालिका माता तृप्त होवें यह कहकर तीनबार वा सतबार भैरवान्त ऋषिगणों के और स्वल्पोक्त विधान में अपने पित्रादिकों

दिना अर्घ्यं कृत्वा ह्रीं हंसः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा इति सूर्य्याय त्रिरर्घ्यं समुत्थाय दत्त्वा सूर्य्यमण्डले देवीं ध्यात्वा दूर्वाक्षतविल्वपत्रजवापुष्पादिना अर्घ्यं कृत्वा देवीगायत्रीमुच्चरन् महाकालसहितायै श्रीमद्दक्षिणकालिकायै इदमर्घ्यं स्वाहा इत्यर्घ्यं दत्त्वा गायत्रीं यथाशक्तितः प्रजप्य देव्यै समर्पयेत्। तदुक्तम्। तर्पणादौ प्रयुञ्जीत तृप्यतां महाकालभैरवः पिता।

मूलान्ते तर्पयामीति स्वाहान्तं तर्पणं मतम्। एवंविधं तर्पणन्तु कृत्वा पापक्षयो भवेत्॥

कुलचूड़ामणौ च—

भैरवाय च देवाय भैरवेण च कर्तृणा। भैरवाख्यं प्रदातव्यं मन्त्रमुच्चार्य्य पूर्वतः॥ दातृदानग्रहीतृंश्च ततो लिङ्गानुरूपतः। भैरवीं भैरवात्मानं भावयेत् यदशेषतः॥ श्राद्धे विवाहे दाने च स्नानेनाङ्गप्रपूजने। एवं चिन्तापरे देवः प्रसीदति न संशयः॥

अन्यच्च—

एवमेव विधानेन यथाशक्ति च तर्पयेत्। मार्त्तण्डभैरवायेति त्रिरर्घ्यं कल्पयेत्ततः॥

का भी तर्पण करके दूर्वा, अक्षत और रक्तपुष्पादि द्वारा अर्घ्य सहित ह्रीं हंसः इत्यादि मंत्र में तीनवार सूर्य के सामने हो, अर्घ्य दे, सूर्य मण्डल में देवी का ध्यान करना चाहिये। फिर दूर्वा, अक्षत, बिल्वपत्र, और जवा पुष्पादि द्वारा अर्घ्य प्रस्तुत करके देवी गायत्री उच्चारण पूर्वक दक्षिण कालिका के उद्देश्य में वह अर्घ्य दे, यथाशक्ति गायत्री का जपकर देवी को समर्पण करै। जैसा कहा है तर्पण के आदि में 'तृप्यतां महाभैरवः पिता, इस प्रकार प्रयोग करके, फिर मूलांत में "तर्पयामि" इस प्रकार पद संयुक्त कर, शेष में स्वाहा शब्द मिलाले तो तर्पण होता है। इस प्रकार तर्पण करने से पाप क्षय होते हैं। कुल चूडामणि में कहा है प्रथम मंत्रोच्चारण करके भैरव देव को भैरवकर्तृक भैरवाख्य प्रदान करै। फिर लिंगानुरूप में दाता और दानग्रहीता को एवं भैरवी और भैरवात्मा की भावना करनी चाहिये। श्राद्ध, विवाह, दान, स्नान और अंग पूजन में इस प्रकार भावनापरायण होने से भगवान् भैरव प्रसन्न होते हैं, इस में संदेह नहीं। और भी कहा है, इस प्रकार के विधान में ही यथाशक्ति तर्पण करके "मार्तण्ड भैरवाय" इस प्रकार कहकर तीन बार अर्घ्य कल्पना करै।

कुलचूड़ामणौ च—

कुलसूर्य्याय देवाय त्रिरर्घ्यं तु प्रकल्प्य च । देवीं पितॄनृषींश्चैव तर्पयेत् कुलवारिणा ॥

नन्दिकेश्वरसंहितायाञ्च—

यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय निवेदनम् । तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरीम् ॥ दिनेशाय तु चोत्तिष्ठन् वारिणा चाञ्जलित्रयम् । अष्टोत्तरशतावृत्या गायत्रीं प्रजपेत् सुधीः ॥ कालिकायै पदं प्रोक्त्वा विद्महे तदनन्तरम् । श्मशानवासिनीं ङेन्तां धिमहीति ततो वदेत् ॥ तन्नो घोरे पदं प्रोच्य प्रचोदयात् पठेदिति । अस्याः प्रभावमात्रेण महापातककोटयः ॥ सद्यः प्रलयमायान्ति साधकस्य च नान्यथा । रावणस्य वधाच्चैव रामचन्द्रो विमोचितः ॥ गुरुदाराकर्षणाच्च देवश्चन्द्रो विमोचितः । मातृवधात् परशुरामो मोचितोऽस्याः प्रसादतः ॥ सुरापानाच्च श्रीकृष्णो दत्तात्रेयस्तथैव च । एवमेषा महाविद्या गोप्तव्या चैव सुन्दरि ! ॥ महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद्दशधा यदि । सत्यं सत्यं महादेवि ! मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥

कुल चूडामणि में कहा है, भगवान् कुल सूर्य के उद्देश्य में तीन अर्घ्य कलिपत करके, कुलसलिल द्वारा देवी, पितृगण और देवगणों का तर्पण करना चाहिये। नन्दिकेश्वर संहिता के मत में भास्कर को अर्घ्य निवेदन न करके विष्णु वा महादेव अथवा महेश्वरी की पूजा न करै। उठकर सूर्य को तीन अंजलि जलदे, विशिष्ट विधान में अष्टोत्तर शत (१०८) बार गायत्री जप करै। उस गायत्री का प्रयोग यह है, यथा-प्रथम में "कालिकायै" फिर "विद्महे" तदुपरान्त "श्मशानवासिन्यै धीमहि" तदनन्तर-"तन्नो घोरे प्रचोदयात्" यह पद संयुक्त करै। इस गायत्री के प्रभाव मात्र से साधक के करोडों महा पातक शीघ्र नाश होते हैं, यह अन्यथा नहीं है। इसके ही प्रभाव से श्री रामचन्द्र जी रावण वध के पाप से विमुक्त हुए थे और भगवान् चन्द्रमा गुरुपत्नी गमन करके मुक्त हुए थे। उसके ही प्रसाद से परशुराम जी ने मातृवध के पातक से छुटकारा पाया था एवं श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय इस के ही प्रभाव द्वारा सुरापान जनित पातक से मुक्त हुए थे हे सुन्दरि ! इस प्रकार से यह महाविद्या गुप्त रखनी चाहिये । इसका दश बार जपकरने से महापातक करने पर भी तत्काल उद्धार होता है यह सत्य सत्य ही कहता हूं ॥

अथ कुलचूड़ामणौ च—

उत्थाय कुलवस्त्रे च परिधाय कुलेन तु। तिलकं कुलरूपञ्च कृत्वा-चम्य कुलेश्वरः॥

स्वतन्त्रेऽपि—

मोक्षार्थी रक्तवस्त्रेण भोगार्थी श्वेतवाससा॥ मारणे कृष्णवस्त्रञ्च वश्ये रक्तं सदा गृही॥ उच्चाटे व्याघ्रचर्माणि वृक्षत्वक् स्तम्भकर्माणि। परिधाय ततो मन्त्री यागभूमिमथो विशेत्॥

तन्त्रान्तरे च—

ततश्च साधकश्रेष्ठो हृदि मन्त्रं परामृशन। अबहिर्मानसो योगी यागभूमिमथो विशेत्॥ जलशंखं करे कृत्वा गत्वा द्वारि महेश्वरि। क्षालयेद्धस्तपादौ च वक्ष्यमाणेन वर्त्मना॥

यागस्थानानि यथा। फेत्कारिण्याम्—

एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे॥ तत्रस्थः साधयेद् योगी विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम्॥ पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तर-मीक्षते। तदेकलिङ्गमाख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा॥

स्वतंत्र में कहा है, मोक्षार्थी रक्तवस्त्र, भोगार्थी श्वेतवस्त्र मारणार्थी कृष्णवस्त्र, वश्यार्थी रक्तवस्त्र, उच्चाटनार्थी व्याघ्रचर्म और स्तम्भनार्थी वृक्ष की छाल पहर कर यागभूमि में प्रवेश करै। तंत्रान्तर में कहा है, अनन्तर साधकश्रेष्ठ हृदय में मंत्र परामर्शन पूर्वक अवहिर्म्मनस्क (एकाग्र मनसे) और योग परायण होकर यागभूमिमें प्रवेश करै। हेमहेश्वरि हाथ में जलशंखधारण पूर्वक द्वार देशमें गमन करके वक्ष्यमाण विधान में हाथ और पैर प्रक्षालन करै। फेत्कारिणी में समस्त याग स्थान इस प्रकार से निर्देश किये हैं। यथाः-एकलिंग, श्मशान, शून्यगृह और चतुष्पथ (चौराहे) में अवस्थिति कर योगावलम्बन सहित त्रिभुवनेश्वरी विद्या की साधना करै। जहां पंचकोश (पाँचकोश) मेंभी लिङ्गान्तर लक्षित नहो, उसकोही एकलिंग कहते हैं। उस स्थान मेंही अनुत्तम सिद्धि संग्रह होती है।

मुण्डमालातन्त्रे च--

नदीतीरे विल्वमूले श्मशाने शून्यवेश्मनि । एकलिङ्गे पर्वते वा देवागारे चतुष्पथे ॥ शवस्योपरि मुण्डे च जले वा कण्ठपूरिते । संग्रामभूमौ योनौ वा स्थले वा विजने वने । यत्र कुत्र स्थले रम्ये यत्र वा स्यात् मनोलयः ॥

अन्यत्रापि—

ऊषरे पर्वते वापि निर्जने वा चतुष्पथे । देवागारे देवशून्ये विल्वमूले नदीतटे ॥ स्वगृहे निर्जनारामे तथा चाश्वत्थसान्निधौ । अथैतेषामेकतमं स्थानमाश्रित्य यत्नतः ॥

ओं वज्रोदके हुं फट् स्वाहा । अनेन सव्येन जलमानीय आसनमभ्युक्ष्य उपरि उपाविश्य ओं ह्रीं विशुद्धयै सर्वपापानि शमय अशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा इति पादौ प्रक्षाल्य पूर्ववदाचामेत् । तदुक्तं कुमारीकल्पे-

ओं वज्रोदके हुं फट् स्वाहामन्त्रेण मन्त्रवित् । जलमानीय सव्ये तु आसनं शोधयेत्ततः ॥ प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य लज्जावीजं तथैव च । ततो विशुध्यन्ते सर्वपापानि शमयेदथ ॥ अशेषान्ते विकल्पं स्यात् अपनयेति ततःपरम् । कूर्चवीजं भवेन्मन्त्रं पादप्रक्षालने प्रिये ! ॥

मुण्डमाला तंत्र में कहा है, नदीतीर, विल्वमूल, श्मशान, शून्यगृह एकलिंग पर्वत, देवालय, चतुष्पथ, शवके ऊपर, शवमुण्ड, कण्ठपूरितजल, संग्रामभूमि, योनिस्थल, विजनबन, इन सब स्थानों में अथवा जहाँ मनका लय होसके, इस प्रकार रमणीक स्थल में साधना करै । अन्यत्र कहा है, उज्जट (भीमरूप) पर्वत, निर्जल चतुष्पथ, देवालय, विल्वमूल, नदीतट, स्वगृह, निर्जन, उपवन, पीपल के समीप इनमें एक उत्तम स्थान आश्रय करके, यत्नपूर्वक "ओं वज्रोदके" इत्यादि मंत्रसे सव्यहस्त में जल लेकर आसन अभ्युक्षण और उसके ऊपर उपवेशन (बैठ) करके, ओं ह्रीं विशुद्ध इत्यादि मन्त्र से पांव धोने के पीछे पूर्वकी समान आचमन करै । कुमारीकल्प में भी इसी प्रकार कहा है । यथा—ओं 'वज्रोदके' इत्यादि मंत्रसे जल लाकर आसन शोधन करै । फिर प्रथम प्रणव अर्थात् ओं उच्चार करके, तदुपरान्त लज्जावीज अर्थात् ह्रीं उद्धृत करै । अनन्तर "विशुद्धयै सर्वपापानि शमयेत्" कहकर "अशेष विकल्पं अपनय" यह पद संयुक्त करै ! फिर कूर्च बीज अर्थात् हुं शब्द संयुक्त करै । तो मंत्रका प्रयोग इसप्रकार हुआ-'ओं ह्रीं विशुद्धये सर्वपापानि शमयेत् अशेषविकल्पमय नय हुं फट् स्वाहा' । हे प्रिये ! यही पादप्रक्षालन मंत्र है

अथ वामे त्रिकोणवृत्तभूविम्बं विलिख्याधारशक्तये नमः इति संपूज्य तदुपरि अस्त्रमन्त्रेण शोधितं साधारपात्रं निधाय नमः इति संपूज्य अंकुशमुद्रया सूर्य्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य ॐ इति गन्धपुष्पं दत्वा धेनुमुद्रां प्रदर्श्य ॐ इति दशधा जप्त्वा तज्जलेन गृहद्वारमभ्युक्ष्य द्वारदेवताः प्रपूजयेत् ॥ तदुक्तं तन्त्रान्तरे–

तत आचमनं कृत्वा सामान्यार्घ्यं प्रकल्पयेत् । त्रिकोणवृत्तभू-विम्बं मण्डलं रचयेत् सुधीः ॥ आधारशक्तिं संपूज्य तत्राधारं विनि-क्षिपेत् । अस्त्रमन्त्रेण संशोध्य हृन्मन्त्रेण प्रपूरयेत् ॥ निक्षिपेत्तीर्थमा-वाह्य गन्धादीन् प्रणवेन तु । दर्शयेद्धेनुमुद्रां वै सामान्यार्घ्यमिदं स्मृतम् । सामान्यार्घ्येण देवेशि ! पूजयेद्द्वारपार्श्वयोः ॥

धेनुमुद्रा यथा–

अन्योन्याभिमुखं श्लिष्टा कनिष्ठानामिका पुनः । तथाच तर्जनी-मध्या धेनुमुद्राऽमृतप्रदा ॥

अनन्तर वामपार्श्वमें त्रिकोण वृत्तभूविम्व अंकितकर "आधारशक्तयेनमः" कह विशेष प्रकारसे पूजाकर तिसके ऊपर अस्त्र मंत्र से शोधित आधार सहित पात्र न्यस्त करै। फिर "नमः" इस पदके प्रयोगान्त में सविशेष पूजा और अंकुशमुद्रा की सहायता द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थ आवाहन कर, प्रणवोच्चारण सहित गंध, पुष्प दान और धेनुमुद्रा प्रदर्शन करै। फिर प्रणवोच्चारण करनेपर दशवार जप और जल से गृह-द्वार अभ्युक्षण कर समस्त द्वार देवताओं की पूजा करनी चाहिये । तंत्रान्तर में भी इसी प्रकार कहा है, अनन्तर आचमन करके सामान्य अर्घ्यस्थापन और त्रिकोणवृत्त भू विम्व मण्डल की रचना करै। फिर आधारशक्ति की पूजा करके, उस में आधार निक्षेप करै। अनन्तर अस्त्र मंत्रसे संशोधन और हृन् मंत्र में प्रपूरण करके, तीर्थ आवाहन पूर्वक प्रणव सहित गंधादि निक्षेप और धेनुमुद्रा प्रदर्शन कर। इसकाही नाम सामान्यार्घ्य है। हे देवेशि ! सामान्यार्घ्यं द्वारा दोनों द्वारके पार्श्व की पूजा करै।

धेनुमुद्रा का प्रयोग यही है कि कनिष्ठा और अनाभिका को परस्परके अभिमुख में संश्लिष्ट करके तर्ज्जनी और मध्यमा को भी इसी प्रकार करै। इसकाही नाम धेनु-मुद्रा है। इसके द्वारा अमृत लाभ होता है।

द्वारदेवता यथा—

गणेशं क्षेत्रपालञ्च वटुकं योगिनीं तथा। ऊर्ध्वं वामे च दक्षे च अधश्चैव प्रकीर्त्तितम् ॥

अथ पूजा—द्वारोर्ध्वे गां गणेशं वामे क्षां क्षेत्रपालं दक्षिणे वां वटुकम् अधः यां योगिनीं एवं तत्रैव गां गङ्गां यां यमुनां श्रीं लक्ष्मीं ऐं सरस्वतीञ्च एवं चतुर्द्वारे सम्पुटवामाङ्गसङ्कोचेन पूजामण्डपान्तर्गत्वा नैर्ऋत्यां ब्रह्मणे नमः वास्तुपुरुषाय नमः इति गन्धपुष्पाभ्यां संपूज्याक्षतसिद्धार्थतिलान् नाराचमुद्रया श्रों सर्वविघ्नान् उत्सारय हुं फट् स्वाहा ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं हुं फट् स्वाहा अनेन भूमिमभिमन्त्रयेत्। तदुक्तं स्वतन्त्रे—

भूमिव्योमस्थितान् सर्वान् विघ्नांस्तांस्तान् सहाक्षतैः। सिद्धार्थैस्तिलसंमिश्रैः प्रोत्सार्य्य त्वासने विशेत् ॥

अन्यत्रापि—

भूतापसर्पणं कुर्य्यात् मन्त्रेणानेन साधकः। यस्मिन् कृते स्थले भूता दूरं यान्ति सुरार्चने ॥ स्थितेषु सर्वभूतेषु नैवेद्यं मण्डलं तथा। विलुम्पति सदा लुब्धा न च गृह्णन्ति देवताः। तस्माद् यत्नेन कर्त्तव्यं भूतानामपसर्पणम् ॥

द्वार देवता सब यथा;—गणेश, क्षेत्रपाल, वटुक, योगिनी, यह द्वारके उर्ध्व, वाम, दक्षिण और अधोदिक में अवस्थिति करते हैं। इनकी पूजा यथा;—द्वारके उर्ध्व में गां गणेश, वाममें 'क्षां' क्षेत्रपाल, दक्षिण में वां वटुक, अधोभाग में 'यां' योगिनी इत्यादि कहकर गंध पुष्प द्वारा पूजा करके अक्षत, सिद्धार्थ, और तिल, यह सब नाराचमुद्रा द्वारा प्रदान पूर्वक, 'श्रों' सर्व विघ्नान्, इत्यादि मंत्रसे भूमि का अभिमन्त्रण करे।

स्वतंत्र में भी इसी प्रकार कहा है, कि भूमि और आकाश संस्थित संपूर्ण विघ्न परम्परा अक्षत, सिद्धार्थ और तिल की सहायता से प्रोत्सारित (दूर) होकर आसनपर विराजमान होवे। अन्यत्र भी कहा है कि साधक इस मंत्र द्वारा भूतापसर्पण करै, इस के द्वारा भूमिस्थ समस्त भूत दूर सेही भागजाते हैं जो सम्पूर्ण भूत होने से लुब्ध होकर सर्वदा नैवेद्य मण्डल विलुप्त करता है देवगण उसको ग्रहण नहीं करते। इसी कारण यत्नसहित भूतगणों की अपसर्पणा करै। कुमारीतंत्र में भी कहा है,

कुमारीतन्त्रेऽपि—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सर्वाविघ्नांस्ततः परम्। उत्सारय ततो हुं फट् स्वाहा च तदनन्तरम्॥ अनेनैव च मन्त्रेण विघ्नानुत्सारयेत् सुधीः। प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य रक्ष रक्ष तदन्तरम्। हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण भूमिञ्च परिशोधयेत्॥ ततः पवित्रवज्रादौ प्रणवं पूर्वमुद्धरेत्॥ वर्मद्वयं ततश्चैव फट् स्वाहा तदनन्तरम्। अनेनैव विधानेन कुर्य्यात् भूम्यभिमन्त्रणम्॥

अथ आसनानि यथा—तदुक्तं मत्स्यसूक्ते—

मृदुचूड़कमासीनश्चान्येषु कोमलेषु वा। विस्तारेषु समाश्रित्य साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्॥ अर्वाक् षण्मासतो गर्भमृतमाहुर्मृदुं बुधाः। चूड़ोपनयनैर्हीनं मृतमचूड़कं विदुः॥ निवृत्तचूड़को बालो हीनोपनयनः पुमान्। यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेव कोमलं विदुः॥

स्वतन्त्रेऽपि—

कम्बले लोहिते वापि कृष्णे वा व्याघ्रचर्मणि। संन्यासी ब्रह्मचारी च विशेत् कृष्णस्य चर्मणि॥

प्रथम ओं फिर "सर्व विघ्नान्" फिर 'उत्सारय' फिर (हुं फट् स्वाहा) अर्थात् (ओं सर्वविघ्नानुत्सारयस्वाहा) इत्यादि मंत्र से संपूर्ण विघ्न उत्सारित करके फिर, ओं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा, इत्यादि मंत्र से भूमिशोधन और तदुपरान्त 'ओंपवित्रवज्र, इत्यादि मंत्र से भूमि का अभिमंत्रण करैं॥

अब समस्त आसन विधि लिखी जाती है। मृदु वा अचूड़क अथवा कोमल और विस्तार आदि अन्यान्य आसनमें आसीन होकर जिस भांति सिद्धि साधन में प्रवृत्तहोवे। छै महीने के अनधिक जो गर्भ में रहकर मर गया है, उसको ही पंडित गण मृदुकहते हैं। जिसका चूड़ा व उपनयन नहीं हुआ और उसी अवस्था में मरगया है, उसको अचूड़क कहते हैं। जिस बालक का चूड़ाकर्म तो होगया पर उपनयन नहीं हुआ है, वह यदि पांचवें वर्ष में मर गया है, पंडितगण उसको कोमल कहते हैं। स्वतंत्र में भी कहा है कि लोहित (लाल) व कृष्ण (काला) कम्बल अथवा व्याघ्रचर्म, वा कृष्णचर्म इन सब आसनों में संन्यासी और ब्रह्मचारी उपवेशन करें अर्थात् बैठें।

मत्स्यसूक्तेऽपि—

कृष्णसारद्वीपिचर्म अचूडकम्बलं तथा। पीतवस्त्रञ्च शुक्लं वा आसनाय प्रकल्पयेत् ॥

मुण्डमालातन्त्रे—

व्याघ्राजिनं सर्वसिद्धयै ज्ञानसिद्धयै मृगाजिनम्। वस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ कौषेयं पुष्टिदं प्रोक्तं कम्बलं सर्वसिद्धिदम्। शुक्लं वा यदि वा रक्तं विशेषाद्रक्तकम्बलम् ॥ मृदुकोमलमास्तीर्णं संग्रामे पतितं हि यत्। जन्तुव्यापादितं वापि मृगं वापि वरासनम् ॥ गर्भच्युतं वा नारीणामथवा योनिजां त्वचम्। सर्वसिद्धिप्रदञ्चैव सर्वभोगसमृद्धिदम् ॥ त्वचं वा यौवनस्थानां कुर्य्याद्वीरवरासनम्। श्मशानकाष्ठघटितं पीठं वा यज्ञदारुजम् ॥ न दीक्षितो विशेज्जातु कृष्णसाराजिने गृही। उदासीनवनासीनस्नातकब्रह्मचारिणः ॥ कुशाजिनाम्बरैराढ्यं चतुरस्रं समन्ततः। एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुरंगुलमुच्छ्रितम्। विशुद्धे आसने कुर्य्यात् संस्कारे पूजनं बुधः ॥ इति

अत्र मृतासनमवश्यमेव प्रत्यवायश्रवणात्। कालीतन्त्रे–मृतासनं विना देवि ! यो जपेत् कालिकां नरः। तावत्कालं नारकी स्यात् यावदाभूतसंप्लवम् ॥ यत्तु स्वतन्त्रादौ कम्बलाद्यासनमुक्तं तन्न स्वतन्त्रा-

---

मत्स्यसूक्त में भी कहा है, कृष्णसार और व्याघ्रचर्म, अचूडक, कम्बल, पीत वा शुक्लवस्त्र, इन सब में आसन कल्पना करै। मुण्डमाला तंत्र में कहा है व्याघ्रचर्म में सर्व सिद्धि, मृगचर्म में ज्ञानसिद्धि, वस्त्रासन में रोगनाश, वेत्रासन में प्रीतिवर्द्धन, कौशेय आसन में पुष्टि और कम्वल में सर्वसिद्धि लाभ होती है। शुभ्र वा रक्त विशेषतः रक्त कम्वल, संग्राम में पतित वा जन्तुकर्त्तृक व्यापादित (जानवरों से घायल) मृग उत्कृष्ट आसन अथवा स्त्रियों का गर्भच्युत अथवा योनिजात त्वक् सर्वसिद्धि प्रदान और सब प्रकार से भोग समृद्धि विधान करती है यौवनस्थ गणों के त्वक में भी वीर वरासन करै। श्मशानकाष्ठ का वा यज्ञ दारु की पीठ भी उत्कृष्ट आसन है। दीक्षित गृहीव्यक्ति कभी कृष्णसार के अजिन में उपवेशन न करै। उदासीन, बनासीन स्नातक यह कुश अजिन और वस्त्रावृत, समचतुष्कोण, एकहस्त वा दो हस्त परिमित, चार अंगुल ऊँचे आसनमें उपवेशन करैं। कालीतंत्र में कहा है, मृतासन के विना जो व्यक्ति देवीकालिका का जप करता है, वह यावत् प्रलय नरक में वास करता है। अतएव स्वतंत्रादि में जो कम्बलादिका आसन कहा वह स्वतंत्र आसन नहीं है तकयुक्तम्

सनं किन्तु मृतकयुतामिति बोद्धव्यम्। मृताभावे विष्टरमिति। तदुक्तम्-

मृताभावे विष्टरञ्च शवरूपंप्रकल्पयेत्।

अथ भूमौ त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्र आधारशक्त्यादिभ्यो नमः इति संपूज्य तदुपरि विहितासनमारोप्य कृताञ्जलिः पठेत्। तदुक्तम्-

मेरुपृष्ठऋषिः प्रोक्तः सुतलं छन्द ईरितम्। कूर्मोहि देवता देवि! आसनाय प्रकल्पयेत्॥ विनियोगं ततः कृत्वा पठेत् धृत्वा समन्ततः। पृथ्वि! त्वया धृतालोका देवि! त्वं विष्णुना धृता॥ त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्। इति धृत्वा तु देवेशि! कुशांस्तत्रैव दापयेत्॥ मायाबीजं समुच्चार्य्य आधारशक्ति मुच्चरेत्। कमलासनमालिख्य ङे नमोऽन्तं प्रपूजयेत्॥

कुमारीकल्पेऽपि-

आःकारान्तं सुरेखेच वज्ररेखे ततः परम्। हुं फट् स्वाहेति कुर्य्यात्तु मण्डलञ्च शवासने। वीरासनेनोपविशेत् संपूज्यासनमेव च।

समझना चाहिये मृतके अभाव में विष्टर आसन ग्रहण करै सो कहा है यथा—मृताभाव में विष्टरको शवरूप में कल्पना करलेना चाहिये।

अनन्तर भूमि में त्रिकोण मंडल की रचना करके उस में आधारशक्त्यादिभ्यो नमः] इत्यादि कह विशेष प्रकार से पूजा कर उस के ऊपर विहितासन स्थापन पूर्वक कृतांजलि होकर पाठ करै। सो कहा है। यथा-मेरुपृष्ठऋषि, सुतलंछन्द कूर्म देवता, आसन के लिये कल्पना करै। फिर इस प्रकार पाठ करै कि [हे पृथ्वि! तुम ने सब लोकों को धारण किया है, विष्णु तुमको धारण करते हैं। अतएव तुम मुझ को नित्य धारण और मेरे आसन को पवित्र करो।] यह कहकर समस्त कुश धारण और उस में प्रदान पूर्वक माया बीज और आधार शक्ति उच्चारण और तदुपरांत (कमलासनाय नमः) कहकर पूजा करै। कुमारी कल्प में कहा है, प्रथम आःकार, फिर (सुरेख) और फिर (वज्ररेख) में (हुं फट् स्वाहा) कहकर शवासन में मंडल की रचना करै। फिर आसनकी पूजा करके वीरासनमें विराजमान होवे। अनन्तर आसनके ऊपर तीनकुश डालकर (ह्रीं आधारशक्तये कमलासनायनमः) इत्यादि मंत्र से पूजा करके, फिर आः

अथ आसनोपरि कुशत्रयं दत्वा ह्रीं आधारशक्तये कमलासनाय नमः इति संपूज्य आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा इति मन्त्रेण तत्र मण्डलिकां कृत्वा तदुपरि वीरासने उपविश्य विजयां स्वीकुर्य्यात् । तदुक्तम्

भावचूड़ामणौ–

विना हेतुकमास्वाद्य क्षोभयुक्तो महेश्वरः । न पूजां ममकुर्य्याच्च न ध्यानं न च चिन्तनम् ॥ तस्माद्भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम् ।

विजयाकल्पेऽपि–

संविदासवयोर्मध्ये संविदैव गरीयसी । संविन्प्रयोगस्तेनेह पूजादौ साधकोत्तमैः । कर्त्तव्या च महापूजा करणीया सुनिन्दितैः॥

अन्यत्रापि–

आनन्देन विना भ्रंशो न च तृप्यन्ति देवताः । तस्मात् पूजादौ विजयास्वीकारः कार्य्यः । पुनश्चतुर्धा । ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च श्वेतरक्तकृष्णपीतप्रसूनभेदाः ।

तासां शुद्धिर्विजयाकल्पानुसारेण लिख्यते । संविदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदानघे ॥ भैरवाणाञ्च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा । ओं

सुरेख, में 'वज्ररेख में (हुं फट् स्वाहा) इत्यादि मंत्र से उस में मंडलिका करके उस के ऊपर वीरासन में बैठकर विजया स्वीकार में प्रवृत होवे । भावचूडामणि में कहा है । यथा विजया स्वीकार नकरने से महेश्वर भी क्षोभयुक्त होकर मेरी पूजा ध्यान और चिन्ता नहीं कर सकते । इसी कारण भोजन और पान करके परमेश्वरी की पूजा करै। विजयाकल्प में भी कहा है. संविद् और आसव में संविद् ही श्रेष्ठ है । इसी लये साधक प्रवर पूजादि में संविद् प्रयोग करै। अन्यत्र भी कहा है आनन्द अर्थात् संविद् के विना पूजा खंडित होती है, देवतागणों को भी तृप्ति लाभ नहीं होती। इसी कारण पूजादि में विजयास्वीकार कर्तव्य है। यह विजया चार प्रकार है यथा-ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा । यह श्वेत, रक्त, कृष्ण और पीतवर्ण है कुसुम भेद से इस प्रकार चारभेद कल्पित हुए हैं। विजयाकल्पानुसार उस की शुद्धि लिखी जाती है। हे संविदे ! तुम ब्रह्म से उत्पन्न हुई हो । तुम ब्रह्म की पुत्री हो । तुम सब प्रकार से

ब्राह्मण्यै नमः स्वाहा। साधयेदपरां ततः ॥इत्यनेन अभिमन्त्रणम् ।

सिद्धिमूले प्रिये ! देवि ! हीनबोधप्रबोधिनि। राजाप्रजा वशङ्कारि शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि ॥ ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा शोधयेदपरां ततः। अज्ञानेन्धनदीप्ताग्ने ज्वालाग्ने ज्ञानरूपिणि। आनन्दस्याहुतिं प्रीतिं सम्यग्ज्ञानं प्रयच्छ मे। ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा शूद्रां संशोधयेत्ततः ॥ नमस्यामि नमस्यामि योगमार्गप्रबोधिनि। त्रैलोक्यविजये मातः समाधिफलदाभव ॥ ह्रीं शूद्रायै नमः स्वाहा ओं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि पदं ततः ॥

अमृतमाकर्षय द्वन्द्वं सिद्धिं देहि ततःपरम् । अमुकं मे ततो ब्रूयात् वशमानय ततः परम् । छिठान्तोऽयंमनुः प्रोक्तः चतुर्णांनाञ्च शोधने ॥

उत्तरतन्त्रे च—

मूलमन्त्रं ततो देवि ! तस्योपरि नियोजयेत्। आवाहनादिमुद्रांच धेनुयोनी ततःपरम् ॥ दिग्बन्धश्छोटिकाभिश्च तालत्रयपुरःसरः ।

पाप सम्पर्क हीन हो भैरवगणों को दान करने के लिये ही तुम्हारी सृष्टि हुई है। तुम सर्वदा पवित्र हो। तुम्हीं ब्रह्माणी हो। तुम को नमस्कार है। यह कह "स्वाहा" समुच्चारण पूर्वक अपरा का साधन करे। यथा तुम सिद्धि की मूल कारण हो। तुम सबकी परम प्रीति भाजन हो। तुम्हीं स्वप्रकाश युक्त हो। तुम्हीं बुद्धिहीन गणों को प्रबोधित करती हो। तुम्हीं राजा और प्रजा दोनों को वशीभूत करती हो। तुम्हीं शत्रुकंठकी त्रिशूलिनी हो। तुम्हीं क्षत्रिया हो तुमको नमस्कार है यह कह कर "स्वाहा" प्रयोग पूर्वक अपरा का साधन करे। यथा—तुम अज्ञानरूप ईंधन को पावक स्वरूप हो। तुम्हीं ज्वालाग्नि हो। तुम्हीं ज्ञानरूपिणी हो तुम मुझको सम्यग ज्ञान एवं प्रीति और आनन्दाहुति प्रदान करो। तुम्हीं वश्या हो, तुमको नमस्कार है यह कहकर प्रथम "ह्रीं" और अन्त में स्वाहा उच्चारण करके शूद्रा का साधन करे यथा—तुम योग मार्ग प्रबोधिनीहो। तुम्हीं त्रैलोक्यविजया हो। तुमको नमस्कार है, नमस्कार है। हे मातः! तुम मेरी समाधि का फल प्रदान करो। तुम्हीं शूद्रा हो. तुमको नमस्कार है। यह कह पूर्व में "ह्रीं" और अन्त में "स्वाहा" प्रयोग करके प्रथम ओं अमृते अमृतोद्भवे अमृत वर्षिणी" पदबंधन पूर्वक फिर यथाक्रम से "अमृतमाकर्षय अमृतमाकर्षय सिद्धिं देहि अमुकं मे वशमानय स्वाहा। इत्यादि पद परम्परा प्रयोजित करे इसका अर्थ यही है तुम अमृता और अमृत से उत्पन्न हुई हो एवं अमृत वर्षण करती हो। अतएव अमृत को आकर्षण करो आकर्षण करो मुझको सिद्धि प्रदान करो, अमुक को मेरे वश में लाओ। यही मंत्र उल्लिखित चतुर्विध विजयाशोधन में प्रयोजित होता है।

दिव्यदृष्ट्या तथा पार्ष्णिघातैर्विघ्नान् विघातयेत् ॥ सप्तधा तर्पयेद् ब्रह्मरन्ध्रे मूलं जपेत् मनुम् । गुरुपद्मे सहस्रारे तथा संकेतमुद्रया ॥ त्रिधैव तर्पयेत् मंत्री साधकः सिद्धिमानसः । ऐं वद वद पदं ब्रूयात् वाग्वादिनि ततःपरम् ॥ मम जिह्वाग्रे स्थिरा भव सर्वपदं ततः । सर्वशङ्करी स्वाहेति मंत्रेण जुहुयान्मुखे ॥

संकेतमुद्रया तत्वमुद्रया इत्यर्थः ॥

अथ साधकः वामकर्णोर्ध्वे अमुकानन्दनाथश्रीभैरवगुरुपादुकाभ्योनमः दक्षिणकर्णोर्ध्वे गां गणपतिं मध्येइष्टदेवतां नमस्कृत्य सामान्योदकेन पूजास्थानादिकमभ्युदय स्वदक्षिणे गन्धपुष्पादिकं वामे सुगन्धिजलं देवतायाः पश्चिमे कुलदेवताया द्रव्याणि अन्यत् पानञ्च देवतावामे धारयेत् । तदुक्तं कुलचूड़ामणौ—

कुलासनं ततो धृत्वा तदभ्यर्च्य यथासुखम् । कुलासनं ततो बध्वा गुरुपूजाक्रमेण च ॥ आत्मशुद्धिं पीठशुद्धिं शृणु शुद्धयादि भैरव ।

उत्तर तंत्र में भी कहा है, यथा—हे देवि ! अनन्तर उसके ऊपर मूल मंत्र नियोजित करै । फिर आवाहनी धेनु और योनिमुद्रा का प्रयोग है, तालत्रय [तीन ताल] प्रदान सहित छोटिका द्वारा दिग्बन्धन दिव्यदृष्टि सहकृत पार्ष्णिघात द्वारा समस्त विघ्नों को उत्सारित सातवार तर्पण और मूलमंत्र जप करना चाहिये । साधक सिद्धि की कामना से तीन वार गुरु पद्म सहस्रार में संकेतमुद्रा प्रदर्शन पूर्वक तर्पण और "ऐं वद वद ,, इत्यादि मंत्र से मुख में आहुति प्रदान करै ।

इस मन्त्र का अर्थ यही है, तुम वाग्वादिनी हो । अतएव मेरे वाक्यस्फूर्त्ति करो । मेरी जिह्वा के अग्र में स्थिर हो इत्यादि यह संकेतमुद्रा शब्द में तत्वमुद्रा समझनी चाहिये ।

अनन्तर साधक वामकर्णोर्ध्व में, अमुकानन्दनाथ श्री भैरव गुरु के पादुका युगल में नमस्कार दक्षिण कर्णोर्ध्व में गा गणपति को नमस्कार और मध्य में इष्ट देवता को नमस्कार करके, सामान्य उदक द्वारा पूजा स्थानादि अभ्युक्षित कर अपने दक्षिण में गंध पुष्पादि, देवता के वाम में सुगन्धि जल पश्चिम में कुल देवता के सब द्रव्य और अन्यविध पान देवता के वाम में धारण करै। कुल चूड़ामणि में कहा है, यथा—अनन्तर कुलासन धारण करके, यथासुख उसकी अभ्यर्चना और गुरुपूजा के क्रम से उसका बंधन करै । अनन्तर आत्मशुद्धि और पीठशुद्धि करके, यागभूमि

कृत्वाचार्घ्यं ततो विद्वान् कुर्य्यात् कुलविधेष्टितम् ॥ दीक्षिताभिः कुलीनाभिर्युवतीभिः कुलात्मभिः । देवतागुरुभक्ताभिर्वाञ्छितं यागभूमिषु ॥ नानाविधानि पुष्पाणि गन्धानि विविधानि च । कर्पूरजाती धूपादि वासितं पटवासितम् ॥ ताम्बूलं देयद्रव्यञ्च धूपदीपादिकंच यत् । सर्वालङ्कारभूषाभिर्भूषितः कौलिकेश्वरः ॥ मूलमन्त्रं तप्ततोयैः प्रोक्षितं स्थापयेत्ततः । सर्वस्वं दक्षिणे स्थाप्यं वामे चार्घ्यं निवेदयेत् । पश्चिमे देवतायाश्च कुलद्रव्याणि धारयेत् ॥

पश्चिमे पृष्ठे इत्यर्थः । कालिकापुराणेऽपि—मदिरां पृष्ठतो दद्यादन्यपात्रञ्च वामतः ।

कुलार्णवेऽपि—आत्मस्थानमनु द्रव्यं देहशुद्धिस्तु पंचमी । यावन्न कुरुते देवि ! तावद्देवार्चनं कुतः ॥ मार्जनाद्देहशुद्धिस्तु प्राणयोगादिभिः प्रिये ! षड़ङ्गानि न्यसेन्मन्त्री आत्मशुद्धिरितीरिता ॥ गृहीत्वा मातृकावर्णमूलमन्त्राक्षराणि तु । क्रमोत्क्रमाद्विरावृत्तिर्मंत्रशुद्धिरितीरिता ॥ पूजाद्रव्यादि संप्रोक्ष्य मूलास्त्राभ्यां विधानतः । धेनुमुद्रां दर्शयेच्च द्रव्यशुद्धिरितीरिता ॥ पीठे देवीं प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य मंत्रवित् ।

में देवता, और गुरु गणों के प्रति भक्तिशालिनी, दीक्षिता, कुलीन युवती गणों का वांछित, कुलाचार विधिबोधित अर्घ्यविधान पूर्वक विविध गन्ध और पुष्प कर्पूर और जाती धूपादि सुवासित ताम्बूल और दीपादि देय द्रव्य, मूल मंत्र तप्त सलिल में प्रोक्षित करके स्थापित करै । तिसकाल सर्व अलंकारादि भूषणों से भूषित होवे । सर्वस्व दक्षिण में स्थापित करके वाम में अर्घ्य निवेदन और देवताके पश्चिम में समस्त कुलद्रव्य धारण करै यहां पश्चिम शब्द पृष्ठवाचक है । कालिकापुराण में भी कहा है, हे देवि ! आत्मशुद्धि स्थानशुद्धि, मंत्रशुद्धि, द्रव्यशुद्धि और देहशुद्धि न करने से किसी प्रकार अर्चनासिद्धि नहीं होसकी । हे प्रिये ! प्राण योगादि द्वारा मार्जन करने से देहशुद्धि सम्पन्न होती है । मंत्रशील पुरुष षडङ्गन्यास करै । इसकाही नाम आत्मशुद्धि है । मातृकावरण और मूल मंत्रके समस्त अक्षर ग्रहण करके क्रमोत् क्रमानुसार दो बार आवृत्ति करै । इसकाही नाम मंत्रशुद्धि है । मूल और अस्त्र मंत्र में विधानानुसार पूजा द्रव्यादि भली भांति प्रोक्षित करके धेनुमुद्रा प्रदर्शन करने को द्रव्यशुद्धि कहते हैं मंत्रवित् साधक देवी को पीठ में प्रतिष्ठापिता और दीप्तात्म ।

मूलमंत्रेण दीप्तात्मा अभिमाव्योदकेन च । त्रिवारं प्रोक्षयेद्विद्वान् देहशुद्धिरितीरिता । पंचशुद्धिं विधायेत्थं पश्चाद् यजनमाचरेत् ।

अन्यत्रापि । पंचशुद्धिविहीनेन यत् कृतं न च तत् कृतम् । पंचशुद्धिं विना पूजा अभिचाराय कल्पते ॥ आत्मशुद्धिः स्थानशुद्धिर्मन्त्रस्य शोधनं तथा । द्रव्यशुद्धिर्देहशुद्धिः पञ्चशुद्धिरितीरिता ॥

अथ कुमारीकल्पे—

पुष्पाधिष्ठाने पुष्पस्य प्रणवं पूर्वमुद्धरेत् । ततोऽभिषेकेति पदं शताभीति ततःपरम् । सेकेति च पदं प्रोक्त्वा हुं फट् स्वाहा ततःपरम् । अनेन मनुना देव्याः पुष्पाधिष्ठानमेव च ॥ प्रणवं पुष्पकेतुञ्च तथा राजार्हतेऽपि च । शताय सम्यगुक्त्वा च सम्बद्धाय ततश्च ओम् ॥पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे । पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहेति ततः परम् ॥ विशोध्य पुष्पमेतेन जलं पूर्ववदाहरेत् ॥

ओं शताभिषेक ओं शताभिषेक हुं फट् स्वाहेति मंत्रेण पुष्पमधिष्ठाय ओं पुष्पकेतु राजार्हते शताय सम्यक् सम्बद्धाय इति पुष्पमभिमन्त्र्य पूजाद्रव्यादिकं मूलान्ते फडित्यनेन अभ्युक्ष्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य वामपार्ष्णिघातत्रयं फडिति भूमौकृत्वा तर्जनामध्यमाभ्याम्

होकर, मूल मंत्रमें अभिवादित करके उदक द्वारा तीनबार प्रोक्षण करै इसका ही नाम देहशुद्धि है । इस प्रकार पञ्चविध शुद्धि विधान करके फिर यजन कार्य में प्रवृत्त होना चाहिये । अन्यत्र भी कहा है । उल्लिखित पंचशुद्धि हीन होकर जो किया जाता है, वह न करने में ही है । पंचशुद्धिके बिना पूजा करने से वह अभिचार रूप में कल्पित होती है । आत्मशुद्धि, स्थानशुद्धि, मंत्रशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, और देहशुद्धि इनका ही नाम पञ्चशुद्धि है ।

कुमारीकल्पमें भी कहा है, पुष्पाधिष्ठान समयमें प्रथम प्रणव उद्धार करके फिर शताभिषेक पद संयुक्त कर "हुं फट् स्वाहा" प्रयोजित करै । इस में जो मंत्र हो उसके पढने पर देवीका पुष्पाधिष्ठान करके फिर प्रणवोद्धार पूर्वक "पुष्पकेतु" इत्यादि पद प्रयोग सहित जो मंत्र हो, तिसको पढ पुष्पशुद्धि करके पूर्ववत् सलिल आहरण करना चाहिये । "ओं शताभिषेक" इत्यादि मंत्रसे पुष्पाधिष्ठान करके 'ओं पुष्पकेतु राजार्हते" इत्यादि मंत्र से पुष्प को अभिमन्त्रण और मूलके अन्त में फट् शब्द प्रयोग पूर्वक पूजा द्रव्यादि क्रा अभ्युक्षण करै अनन्तर धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरणानन्तर "फट्"

ऊर्ध्वोर्ध्वं तालत्रयं दत्त्वा तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं कुर्य्यात्। दिव्यदृष्ट्या दिव्यान् विघ्नानुत्सार्य्य रमिति चतुर्दिक्षु वह्नि प्राकारं ध्यात्वा मूलमन्त्रेण स्वदेहं संमार्ज्य प्राणायामं कुर्यात्। तथा मूलाधारे नमः संयोज्य दक्षिणांगुष्ठेन दक्षिणनासापुटं धृत्वा मूलमंत्रं प्रणवं वा षोड़शवारं जपन् वामेण वायुमापूर्य्य कनिष्ठानामिकाभ्यां वामनासापुटमपि विधृत्य तमेवचतुःषष्ठि वारं जपन् वायुं कुम्भयित्वा पुनस्तं द्वात्रिंशद्वारं जपन् दक्षिणेन वायुं रेचयेत्। एवं क्रमोत्क्रमेण प्राणायामत्रये कृते एकः प्राणायामः। इत्थं वारत्रयं कुर्य्यात्। तदुक्तं स्वतन्त्रे–

पार्ष्णिघातकरास्फोटसमुदाञ्चितवक्त्रैः। तालत्रयमथो दद्यात् सशब्दं सम्प्रदाय च॥ ऋतुचन्द्रैर्नेत्रवासिर्वासैर्वेदाधिकैः प्रिये!। मात्राभिः प्रणवं जप्त्वा पूरकुम्भकरेचकैः॥ प्राणायामं ततःकृत्वा भूतशुद्धिं ततश्चरेत्॥

शब्द पुरःसर भूमि में तीनबार वाम पादुका पार्ष्णि (बायें पैरका आघात) घात और तर्जनी मध्यमाकी सहायतासे ऊर्द्धार्द्ध में तीनताल प्रदान करके तर्जनी और अंगुष्ठ द्वारा छोटिका प्रयोग सहित दशदिक् बंधन करै। फिर दिव्यदृष्टि द्वारा समस्त दिव्य विघ्न उत्सारित और "रम" इत्यादि मंत्र से चारों दिशा में वह्नि प्राकार ध्यान करके, मूल मंत्र से स्वकीय (अपनी) देह मार्जनपूर्वक प्राणायाम करै। यथा—मूलाधार में मन संयोजित और दक्षिण अंगुष्ठ में दक्षिण नासापुट् धारण करके, सोलह बार प्रणव वा मूलमंत्रका जप समाधान करनेपर वाम नासाद्वारा वायु आपूरण, एवं कनिष्ठा और अनामिका द्वारा वामनासापुट धारण और (६४) चौंसठबार प्रणव जप पुरःसर वायुको कुम्भित करै। फिर पुनर्वार बत्तीसवार जप करके दक्षिण में वायुका रेचन करै। इस प्रकार क्रमोत्क्रमानुसार तीन प्राणायाम विहित होने पर एकमात्र प्राणायाम साधित होता है। इस प्रकार तीन बार करै। स्वतंत्र में भी कहा है। यथा—पार्ष्णिघात और कराघात द्वारा शब्द सहित तीन ताल प्रदान करै। फिर सोलहवार और बत्तीसबार प्रणव जपनेपर पूरक कुंभक और रेचक द्वारा

अन्यत्रापि —मनो जीवात्मनः शुद्धिः प्राणायामेन जायते ॥

कालीतंत्रेऽपि—प्राणायामत्रयं कुर्य्यान्मूलेन प्रणवेनवा ।

ज्ञानार्णवेऽपि—कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् । प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना ॥

अथ गौतमीये—

भूतशुद्धिं लिपिन्यासं विना यस्तु प्रपूजयेत् । विपरीतं फलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा ॥

ततो भूतशुद्धिं कुर्य्यात् । तथा मूलाधारपद्मात् कुलकुण्डलिनीं प्रसुप्तभुजगाकारां सार्द्धत्रिवलयां स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीं विषतन्तुतनीयसीं तड़ित्पुञ्जप्रभां हंस इति मन्त्रेण पृथिव्या सह स्वाधिष्ठानं समानीय तत्रस्थजले पृथिवीं विलीनां विचिन्त्य तस्माज्जलेन सह मणिपूरस्थवह्नौ तज्जलं विलीनं विचिन्त्य तस्मान्मणिपूरात् वह्निना सह अनाहत आनीय तत्रस्थवायौ वह्निं लीनं ध्यात्वा तस्मान्मरुता जीवात्मना सह विशुद्धस्थाकाशे वायुं लीनं कृत्वा तस्मादाकाशेन

प्राणायाम कर भूतशुद्धि करै । अन्यत्र भी कहा है, प्राणायाम द्वारा मन और जीवात्मा की शुद्धि होती है । कालीतंत्र में भी कहा है, मूलमंत्र वा प्रणव जप सहित तीनबार प्राणायाम करै । ज्ञानार्णव में भी कहा है, कनिष्ठा और अनामिका द्वारा नासा पुट् धारण करनेको प्राणायाम कहते हैं । इसमें तर्जनी और मध्यमाका प्रयोग करना नहीं होता गौतमीय में कहा है, भूतशुद्धि और लिपिन्यास न करके पूजा करने से अभक्तिकृत पूजाकी समान उससे विपरीत फल लाभ होता है । फिर भूतशुद्धि करै मूलाधार पद्म से सोते हुए सर्प की समान आकृति शालिनी सार्द्धत्रिवल (साढ़ेतीनवल) धारिणी स्वयंभूलिंग वेष्टिनि, मृणाल तन्तु की समान अतीव सूक्ष्म स्वरूपिणी तडित् पुंजकी समान प्रभाशालिनी कुलकुण्डलिनी को हंस इति मंत्र में पृथ्वी के सहित स्वाधिष्ठान में आनयन तत्रस्थ जल में पृथ्वी विलीन है इसप्रकार चिन्तन, मणिपुरस्थ अग्नि में वह जल लीन हुआ है इस प्रकार विभावन, उस मणिपुरसे वह्नि के सहित अनाहत में आनयन और तत्रस्थ जल में अग्नि लीन है इस प्रकार ध्यान करै। फिर उससे वायु और जीवनके सहित विशुद्धस्थ आकाश में वायुको लीन करके उस स्थान से आकाश

सह आज्ञाचक्रस्थमनसि आकाशं लीनं विचिन्त्य मनो नादे लीनं विधाय धरणी ध्वनिं समर्पयेत्। ततः सहस्रदलकमलकर्णिकास्थ चन्द्रमण्डलमध्यत्रिकोणान्तर्गतविन्दुरूपपरमशिवे कुण्डलिनी जीवात्मानञ्च नित्यैकरूपतां विभाव्य प्राणायामविधिना यमिति वायुवीजं धूम्रवर्णं षोडशवारं जपन् पापपुरुषेण सह शरीरं संशोष्य रमिति वह्निवीजं रक्तवर्णं चतुः शष्टिवारं जपन् तं संदह्य वमिति वरुणवीजं शुक्लवर्णं द्वात्रिंशद्वारं जपन् तद्भवामृतवृष्ट्या निष्पापं शरीरम् उत्पाद्य लमिति पृथ्वीवीजेन पीतवर्णं ध्यायन् शरीरं सुदृढ़ीकृत्य सोऽहमिति मन्त्रेण कुलकुण्डलिनीममृतलीलां पञ्चभूतजीवात्मानञ्च ब्रह्मपथेन स्वस्वस्थाने नियोजयेत्। तदा देवीरूपमात्मानं ध्यात्वा हृदि हस्तं निधाय जीवं न्यसेत्॥

यथा—आं ह्रीं क्रों हंसः श्री दक्षिणकालिकाया ! प्राणा इह प्राणा आं ह्रीं क्रों हंसः अमुष्याः जीव इह स्थित। आं ह्रीं क्रों हंस अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि आं ह्रीं क्रों हंसः अमुष्याः वामनश्चक्षुः, श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। इति जीवं न्यसेत्॥

के सहित आज्ञाचक्रस्थ मन में आकाश को लीन ध्यान कर मनको नादमें लीन और पृथ्वी ध्वनि समर्पण करै अनन्तर सहस्र दल कमल कर्णिका में प्रतिष्ठित चंद्र मंडल मध्यवर्त्ती त्रिकोण के अन्तर्गत बिन्दुरूप परम शिव में कुण्डलिनी और जीवात्मा, इन दोनों को नित्य एक रूपमें चिन्ता करके प्राणायाम विधानानुसार 'यम्' यह धूम्र वर्ण वायुवीज सोलहवार जपकर पाप पुरुषके सहित शरीर का शोधन करै तदनन्तर 'रं' यह रक्तवर्ण वह्नि बीज चौंसठवार जप और उसको दग्ध करके 'वम्' यह शुक्लवर्ण वरुण वीज बत्तीसवार जप और उस से समुद्भूत अमृत वृष्टि के द्वारा निष्पाप शरीर समुद्भावन पूर्वक, लम्, इस पीतवर्ण पृथ्वीवीज के ध्यान सहित शरीर को दृढ़ करै फिर 'सोहम्' मंत्रसे अमृत लोलाकुल कुण्डलिनी और पंचभूत जीवात्मा को ब्रह्मपथ योग में स्वस्वस्थान में नियोजित करै। तिसकाल देवी का रूप और आत्मा दोनों का ध्यान और हृदय में हस्तन्यस्त करके जीव न्यास करना चाहिये। यथा-आं ह्रीं क्रों इत्यादि मंत्र से जीव न्यास करै। स्वतंत्र में कहा है, यथा संहार क्रम योग के अनुसार पंचतत्त्व समुद्धार एवं वायु अग्नि और सलिलाद्धर में शोषण दाहन और साव्रन करके फेत्कारिणी तंत्र के मतसे जीवन्यास करै।

तदुक्तं स्वतन्त्रे—

संहारक्रमयोगेन पञ्चतत्त्वं समुद्धरेत् । शोषदाहप्लवान् कृत्वा वाय्वग्निसलिलाक्षरैः ॥ ततो न्यासं प्रकुर्वीत फेत्कारीतन्त्र ईरितम् ॥ देवीरूपं ततो ध्यायेदात्मानं कमलेक्षणे । ततो जीवं प्रविन्यस्य पाशादित्र्यक्षरेण तु ॥ प्राणमन्त्रेण मुक्तेन ततोऽमुष्याः पदं ततः । प्राणा इति पदं पश्चादिह प्राणाः पदं ततः सर्वेन्द्रियाण्यमुष्यान्ते वाङ्मनो नयनं ततः श्रोत्रघ्राणपदात् प्राणा इहागत्य सुखं चिरम् । तिष्ठन्तु वह्निजायान्तः प्राणमन्त्रोऽयमीरितः ॥

प्रकारान्तरश्च ज्ञानार्णवे—

विपरीतं प्राणमन्त्रं विलिखेत् पाशपूर्वकम् । प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रोऽयं सर्वकर्माणि साधयेत् ॥

अमुष्या इति पदानि बोद्धव्यानि इति साम्प्रदायिकाः । अमुष्याः स्थाने षष्ठ्यान्तं नाम प्रयोक्तव्यं तदुक्तं नारायणीये—

अमुकपदं यद्रूपं यन्त्रमंत्रेषु दृश्यते । साध्याभिधानं तद्रूपं तत्र स्थाने नियोजयेत् ॥

कुमारीकल्पेऽपि—

भूतशुद्धिं विधायेत्थं देवीरूपेण चिन्तयेत् ॥

अन्यत्रभी कहा है, यथा—हे कमलेक्षणे ! देवी रूप और आत्मा का ध्यान करके पाशादि तीन अक्षरों के सहित जीवन्यास करै । तिसकाल प्राण मंत्र उच्चारण करना चाहिये । उसकी विधि यही है प्रथम अमुष्या पद फिर प्राणाः अनन्तर इह प्राणाः सअमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि वाङमनोनयन घ्राण श्रोत्रपदात् प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा । इसकाही नाम प्राण मंत्र है । ज्ञानार्णव में कहा है, विपरीत प्राणमंत्र पाश पूर्वक लिखना चाहिये । इसकाही नाम प्राण प्रतिष्ठा मंत्र है । इस मंत्र के प्रभावसे संपूर्ण कर्म साधन कियेजातेहै कुमारी कल्पमें भी कहाहै, इस प्रकार भूतशुद्धि विधानकर

ओ आं ह्रीं क्रों फट् स्वाहा अनेन कायवाक्चित्तशोधनं कृत्वा रक्ष हुं फट् स्वाहा अनेन हृदि हस्तं दत्वा आत्मरक्षां विधाय स्ववामे लतां गुरुदेवतां नवयौवनगर्वितां विधाय भूतशुद्धिं प्राणायामान् कारयित्वा यथोक्तमाचरेत्। तदुक्तं तत्रैव।प्रणवः पूर्वमुच्चार्य्य विशेषासनमेव च। हुं फट् स्वाहा मनुः प्रोक्तं कायवाक् चित्तशोधने। रक्ष हुं फट् ततः स्वाहा मन्त्रः स्यादात्मरक्षणे ॥ ततः षोड़शवर्षीयां नारीमानीय मन्त्रवित्। युवतीं वा मदोन्मत्तां सुवेशां चारुहासिनीम्। सदा कामाभिलषितां सिन्दूराङ्कितभालिकाम्। साधके प्रेमसम्पन्नां वामे संस्थापयेत् बुधः ॥ तस्याश्च भूतशुद्धयादीन् कृत्वा तु मातृकां न्यसेत्। प्राणायामं मातृकाञ्च कारयित्वा यथाविधि ॥

अथ ऋष्यादिन्यासं कुर्य्यात्। यथा—कृताञ्जलिः भैरव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीदक्षिणकालिका देवता ह्रीं वीजं हुं शक्तिः क्रीं कीलकं रक्षार्थकाममोक्षपुरुषार्थचतुष्टयसिद्धिपूर्वकदिव्यज्ञानद्रुतकवित्व पाण्डित्यासिद्धये विनियोगः। इत्यभिलष्य पुष्पेण अनामिकया वा

के देवी के रूपीको चिन्ता करै। और आँ ह्रीं इत्यादि मंत्रमें काय वाक्य और चित्त शोधन करके रक्ष हुं इत्यादि मंत्रसे हृदय में हस्तदान पूर्वक आत्म रक्षा करै फिर अपने वाम में नवयौवनगर्विता गुरु देवता विधान करके भूतशुद्धि और प्राणायाम के पीछे यथोक्त आचरण करै उसमें ही यह कहा है। यथा— प्रणव उच्चारण करके फिर हुं फट् स्वाहा उच्चारण करै, यही काय वाक् और चित्त शोधन मंत्र है। अनन्तर रक्ष हुं फट् इत्यादि मंत्र से आत्मरक्षा करै। तदनन्तर मंत्रवित् साधक षोडशवर्षीय सुवेश, सुहासिनी सर्वदा कामाभिलाषिनी, सिंदूरचर्चित मस्तक, युक्त साधक के प्रतिप्रेमभावयुक्त, मदोन्मत्त युवती रमणी लाकर वाम में संस्थापन और उसकी भूत शुद्धि आदिक क्रिया सम्पादन पूर्वक मातृका न्यास करै और यथा विधि प्राणायाम एवं मातृका और निष्पादन पूर्वक ऋष्यादि न्यास में प्रवृत्त होवे। यथा—कृतांजलि होकर इस प्रकार कहै, भैरव ऋषि, अनुष्टुप छंद, दक्षिणा कालिका देवता, इत्यादि।

न्यसेत् । यथा—शिरसि भैरवऋषये नमः मुखे अनुष्टुपछन्दसे नमः हृदि श्रीदक्षिणकालिकायै नमः गुह्ये ह्रीं वीजाय नमः पादयोः हुं शक्तये नमः सर्वाङ्गे क्रीं कालिकाय नमः । तदुक्तम्—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिकछन्द उदाहृतम् । देवता कालिका प्रोक्ता लज्जावीजन्तु कीलकम् ॥ शक्तिस्तु कूर्चवीजं स्यादनिरुद्ध-सरस्वती । कवित्वार्थे विनियोगः एवमृष्यादिकल्पना ॥

कवित्वार्थे विनियोगः इत्युपलक्षणम् । यद्यस्याभिलषितं तदर्थे विनियोग इत्यर्थः । तन्त्रे विविधश्रवणात् । तदुक्तं कालीक्रमे—

कीलकं चाद्यवीजन्तु चतुर्वर्गार्थसिद्धये ।

कुलचूड़ामणौ—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक्छन्द उदीरितम् ॥ दक्षिणा-कालिका देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ।

अथ तन्त्रान्तर—

ऋषिं न्यसेन्मूर्ध्नि देशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे ॥ देवतां हृदये चैव वीजन्तु गुह्यदेशके । शक्तिस्तु पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत् ॥

गौतमीये—ऋषिश्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रः फलभाग् भवेत् ।
नैर्वीर्य्यं याति मन्त्राणां विनियोग अजानताम् ॥

अथ कराङ्गन्यासौ । ओं ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यंगुष्ठयोः । ओं ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इति तर्जन्योः । ओं ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट् इति मध्यमयोः ओं ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं इति अनामिकयोः । ओं ह्रौं

तंत्रान्तर में कहा है, मस्तक में ऋषिन्यास करे। मुख पद्म में छंद हृदय में देवता, गुह्य देश में बीज, दोनों पैरों में शक्ति और सर्वाङ्ग में कीलक विन्यस्त करै । गौतमीय में कहा है, ऋषि और छंद न जानने से मंत्र फलदायक नहीं होता और उसका विनियोग भी निर्वीर्य होता है ।

अब कराङ्गन्यास लिखते हैं। "ओं ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः" इत्यादि । इस वाही नाम करन्यास है । अथवा सर्वत्र नमस्कार के अन्त में करन्यास करै । अनन्तर 'ओं

कनिष्ठाभ्यां वौषट् इति कानिष्ठयोः । ओं ह्रः करतलपृष्ठाभ्यां नमः इति करतलपृष्ठयोःइति करन्यासःअथवा सर्वत्र नमस्कारान्तेन करन्यास ततः ओं ह्रां हृदयाय नमः इति हृदि तर्जनीमध्यमानामिकाभिर्न्यसेत् । ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा इति शिरसि तर्जनीमध्यमाभ्याम् । ओं हूं सिखायै वषट् इति शिखायां मुष्टिकृताधोमुखांगुष्ठेन । ओं ह्रैं कवचाय हुं इति कवचे हस्तद्वयांगुलीभिः ओं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् इति नेत्रत्रये तर्जनीमध्यमानाभिकाभिः । ओं ह्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट् इति करतलपृष्ठयोः । ततः ओं ह्रः अस्त्राय फट् इत्यने । तर्जनीमध्यमाभ्यां मूर्ध्नि ऊर्ध्वोर्ध्वं तालत्रयं दत्वा छोटिकाभिर्दशदिग्वन्धनं कुर्य्यात् ॥

तदुक्तं कालीतन्त्रे—

अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावदाभिधीयते । षद्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ॥ हृदयाय नमः प्रोक्तं शिरसे वह्निवल्लभा । शिखायां वषडित्युक्तवं कवचाय हुमीरितम् ॥ नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फट् प्रकीर्त्तितम् । वीजं मंत्राद्यवींज न तु पारिभाषिकम् ॥ तन्त्रान्तरे स्मरणात् ।

ह्रां हृदयायनमः" यह कहकर हृदय में तर्जनी, मध्यमा और अनामिका द्वारा न्यासकरै । ओं ह्रीं इत्यादि कहकर तर्जनी और मध्यमा द्वारा मस्तक में न्यास करै । ओं ह्रीं इत्यादि कहकर मुष्टिकृत अधो मुख अंगुष्ठ में शिखान्यस्त करै । 'ओं ह्रैं' इत्यादि कहकर दोनों हाथों की सब अंगुलियों से कवच में न्यास करै । 'ओं ह्रौं' इत्यादि कहकर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका द्वार नेत्र में तीन न्यास करै । 'ओं ह्रः' इत्यादि कहकर करतल पृष्ठ में न्यास करै "ओं ह्रः अस्त्राय फट्" इत्यादि कहकर तर्जनी और मध्यमा द्वारा मस्तक में ऊर्द्धोर्द्ध तीन ताल प्रदान करके कन अंगुली से दशदिक् बंधन करै । काली तंत्र में कहा है, यथा अंगन्यास और करन्यास यथावत् कथित होते हैं । प्रणवादिछै दीर्घ स्वराँत वीज द्वारा यथा क्रम से "हृदयानमः शिरसे स्वाहा" इत्यादि प्रयोग करै

स्वतंत्रेऽपि—

प्रणवं चाद्यवीजञ्च षड्दीर्घस्वरभाषितम्। कुर्य्यात् षडङ्गविन्यासं मूलखण्डत्रयेण वा ॥

अथ प्रकारः। आद्यसप्तवीजेन हृदयम्। द्वितीय खण्डषडक्षरेण शीर्षम्। तृतीयखण्डनवाक्षरेण शिखायाम्। पुनराद्येन कवचम्। द्वितीयेन नेत्रत्रयम्। तृतीयखन्डेनास्त्रम्। इत्थं वा अङ्गन्यासं कुर्य्यात्।

भैरवतंत्रेऽपि—

षडङ्गानि न्यसेन्मन्त्री त्रिः सकृद्वा यथाक्रमम् ॥

अथ वर्णन्यासं कुर्य्यात्। अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं नमो हृदि एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमो दक्षभुजे। ङं चं छं जं झं ञं। टं ठं डं ढं नमो वामभुजे। णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमो दक्षजङ्घायाम्। मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नमो वामजङ्घायां न्यसेत्। तदुक्तं काली तंत्रे—

एवं यथाविधि कृत्वा वर्णन्यासं समाचरेत। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ वै हृदये न्यसेत् ॥ ए ऐ ओ औ ततः अं अः क ख ग घ पुनस्ततः। न्यस्त्वा च दक्षिणभुजं स्पृशेत् साधकसत्तमः ॥ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ तथा पुनः।

इति वामभुजेन्यस्य ण त थ द पुनः स्मरेत्। ध न प फ ब भ दक्षिणे जङ्घके न्यसेत्। म य र ल व श ष स ह क्ष वाम जङ्घके। तथैतल्लिखितवर्णास्वरसात् विन्दुरहितवर्णन्यासः। विरूपाक्षमते तु सविन्दुरेव न्यासप्रमाणम्। तदुक्तं कवचे लिखिष्यामः।

स्वतंत्र में भी कहा है, प्रणव और दीर्घ स्वर भाषित आद्य वीज षट्क और मूल बीज के तीन खंड द्वारा षडङ्ग विन्यास करै। आद्य सप्तवीज द्वारा हृदय, द्वितीय खण्ड षडक्षर द्वारा मस्तक, तृतीय खण्ड नवाक्षर द्वारा शिखा इत्यादि क्रम से अंगन्यास करै।

ऋषिर्ब्रह्मा भवेच्छन्दोगायत्री मातृका पुनः। देवता व्यंञ्जनं वीजं-शक्तयस्तु स्वरास्ततः॥ अव्यक्तं कीलकं ज्ञेयं न्यास उक्तः क्रमेण तु।

उक्त इति पूर्वोक्तऋष्यादिक्रमवत्। क्रमेण न्यस्येदित्यर्थः। षडङ्गं मातृकायाश्च साधकःकारयेत्ततः।

स्वराणां क्लीवहीनानां ऋ ॠ ऌ ॡ रहितानामित्यर्थ। एवं विधिना मातृका षडङ्गं कृत्वा ध्यायेत् यथा–

शरत् पूर्णेन्दुशुभ्रां सकलगुणमयीं नलिरक्तत्रिनेत्रां शुक्लालङ्कारभूषां शशिमुकुटजटाटोपयुक्तां प्रसन्नाम्। पुस्तीस्रक्पूर्णकुम्भान्। वरमपि दधतीं शुक्लपट्टाम्बराढयां वाग्देवीं पद्मवक्त्रां कुचभरनमिताम् चिन्तयेत् साधकेन्द्रः॥

एवं ध्यात्वा ललाटादिक्रमेण अकारादिक्षकारान्तं क्रमेण न्यसेत्। यथा श्रीक्रमे–

ब्रह्मरन्ध्रे तथा वक्त्रे वेष्टने नयनद्वये। श्रतिनासापुटद्वन्द्व गण्डोष्ठद्वयकेऽपिच॥ दन्तयुग्मे च मूर्द्धास्ये षड्र्णान् षोड़श न्यसेत्। दोःपत्सन्धिषु साग्रेषु पार्श्वयुग्मे न्यसेत् पुनः॥ पृष्ठनाभिद्वये चैव जठरे

अनन्तर वर्णन न्यास करै। यथा–अं आं इत्योबि ब्रह्मऋषि गायत्री छंद, मातृका देवता, व्यंजन वर्णवीज, समस्त स्वरशक्ति, अव्यक्त कीलक क्रमानुसार न्यास करै। अनन्तर साधक मातृका देवी का षडङ्गन्यास करै और विधि, विधान से मातृका का षडङ्गन्यास करके ध्यान करै यथा—शरत्काल के पूर्ण चन्द्रमा की समान शुभ्रवर्णा, नाना विध गुणयुक्त चंचल और लोहितवर्ण तीननेत्र युक्त श्वेत वर्ण के भूषणों से भूषित, पुस्तक, माल्य (माला) और पूर्ण कुंभ धारिणी, श्वेतवर्ण, पट्टवस्त्र में मण्डित देह, पद्मकी समान वदन मण्डल युक्त और कुचभरे। नमित देह वाग देवताकी चिन्ता करै। इस प्रकार से ध्यान करके, ललाटादिक्रमसे यथाक्रम अकार से क्षकार पर्यन्त न्यास करना चाहिये। यथा—श्रीक्रममें कहा है, ब्रह्मरन्ध, वदन, वेष्टन, दो नेत्र, दो श्रवण, दो नासापुट, गण्ड और दो ओष्ठ दन्त युग्म और मस्तक, इन सबमें सोलह स्वर विन्यास करै। बाहु और पद संधि, दोनों पार्श्व, पृष्ठ और नाभि, जठर

विन्यसेदथ । त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थि मज्जशुक्राणि धातवः । प्राण-जीवौ च परमौ यकारादिषु संस्थिताः । एवं क्रमेण देवेशि न्यस्तव्या एतदात्मिकाः ॥ हृदोर्मूलेऽपि विन्यस्य तथापरगले न्यसेत् । करमूले हृदारभ्य पाणिपादयुगे तथा ॥ जठराननयोर्व्याप्तिं न्यसेदित्यर्ण रूपिणीम् ॥ एवं ज्ञानार्णवे । अन्यच्च ललाटमुखवृत्ताक्षीत्यादि ।

अथ प्रयोगः- अंनमो ब्रह्मरंध्रे ललाटे वा आं नमो मुखवृत्ते एवं क्रमेण मकारपर्यन्तं विन्यस्य । यं त्वगात्मनेनमः । रं असृगात्मने नमः । लं मांसात्मने नमः । रं मेद आत्मने नमः । वामांशे ककुदि वा शं असृग्रात्माने नमः । षं मज्जात्मने नमः । सं शुक्रात्मने नम । हं प्राणात्मने नमः । लं जीवात्मने नमः । चं परमात्मने नमः इति विशेषः ॥

पंचाशदक्षरन्यासः क्रमेणैव प्रकाशितः । ओमाद्यन्तो नमोऽन्तश्च-सविन्दुर्विंदुवार्जितः । मायालक्ष्मीवीजपूर्वो न्यस्तव्य उच्यते बुधैः॥ लला-टेऽनामिकामध्ये विन्यसेन्मुखवृत्तके । तर्जनीमध्यमानामा वृद्धानामा च नेत्रयोः । अंगुष्ठं कर्णयोर्न्यस्य कनिष्ठांगुष्ठकौनसोः । मध्यास्तिस्रो

इन सबमें न्यास करै । त्वक, अस्थि, मांस, मेद, शोणित, मज्जा, शुक्र, सब धातु प्राण जीव, यह यकारादि में प्रतिष्ठित हैं । हे देवि ! ! उल्लिखित क्रमानुसार वह २ समस्त वर्ण उस उस पदार्थ में न्यस्त (संयुक्त) करै । हृदय मूलमें विन्यास करके फिर अपर गलमें विन्यास करना चाहिये । अनन्तर हृदयसे आरंभ करके कर मूल पाणि पाद युग (हाथपैर) एवं जठर और आनन में वर्णरूपिणी व्याप्ति (व्यासहोने वाली) न्यस्त करै ।

अब प्रयोग वर्णित होता है ।-यथा ओ नमो ब्रह्मरन्ध्र इत्यादि क्रम से मकार पर्य-न्त विन्यस्त करके येत्वगात्मा को नमस्कार रं, अमृतात्मा को नमस्कार लं मासात्मा को नमस्कार, 'रं' मेद आत्मा को नमस्कार बामस्कन्ध वा कुकुद (कंधे) में शं असृ-गात्मा को नमस्कार षं मज्जात्मा को नमस्कार से शुक्रात्मा को नमस्कार हं प्राणात्मा को नमस्कार, लं जीवात्मा को नमस्कार, चं परमात्मा को नमस्कार, इत्यादि विधान में न्यास कार्य समायन करै । क्रमानुसार यह पञ्चाशदक्षर न्यास प्रकाशित हुआ । इस के आदि अंत में ओ३म्, अन्त में नमः शब्द और विंदु प्रयोग करना, चाहिये । अथवा विंदु न देने पर भी चलता है पण्डितगण कहते हैं, प्रथम माया और लक्ष्मी

मामोष्ठयोर्न्यसेत् ॥ अनामां दन्तयोर्न्यस्य मध्यमामुत्तमांगके । मुखे-ऽनामां मध्यमां च हस्तेपादे च पार्श्वयोः ॥ कनिष्ठानामिका मध्यास्ता-स्तु पृष्ठे प्रविन्यसेत् । ताः सांगुष्ठा नाभिदेशे सर्वाः कुक्षौ च विन्यसेत्। हृदये च तलं सर्वमंसयोश्च ककुत्स्थले । हृत्पूर्वं हस्तपत्कुक्षिमुखेषु-तलमेवहि ॥ एतास्तु मातृकामुद्राः क्रमेण परिकीर्त्तिताः । अज्ञात्वा विन्यसेद्यस्तु न्यासः स्यात्तस्य निष्फलः—

अथ श्रीकण्ठन्यासो यथा—

विन्यसेन्मातृकास्थाने श्रीकण्ठादीन् यथाक्रमम् । पूर्णोदर्य्यादिभिः सार्द्धं मातृकार्णसमन्वितान्॥ श्रीकंठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः। अर्घीशो भारभूतिश्चातिथीशः स्थाणुको हरः ॥ झिण्टीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः । अक्रूरश्चमहासेनः षोड़शेस्वरमूर्त्तयः ॥ पश्चात् क्रोधीशचण्डेशपञ्चान्तकशिवोत्तमाः । अथैकरुद्रकूर्मैकनेत्राद्ध चतुराननाः ॥ अजेशः सर्वसोमेशस्तथा लांगलिदारुकौ । अर्द्धनारी-श्वरश्चोमाकान्तश्चाषाढिदंडिनौ ॥ स्युरत्रिमीनमेषाख्या लोहितश्च

बीज न्यस्त करना चाहिये। ललाट, अनामिका और मुख मण्डल में यथा क्रमसे तर्जनी, मध्यमा और अनाभिका, दोनों नेत्रों में वृद्धा, दोनों कर्णों में अँगुष्ठ नासिका के दोनों छिद्रों में कनिष्ठा और अंगुष्ठ, दोनों गंड में मध्यत्रय (तीनों के बीच में) दोनों ओष्ठ में मध्यमा, दोनों दंत पंक्ति में अनामा, उत्तमाँग में मध्यमा, मुख में अनामा, हस्त में मध्यमा, पाद और दोनों पार्श्व में कनिष्ठा और अनाभिका, और पृष्ठ में तत्तत अंगुली न्यस्त करके नाभि में उसके सहित अंगुष्ठ और कुक्षि में वह सब विन्यस्त करे। अनन्तर हृदय में दोनों अंश में, ककुत् [कंधा] प्रदेश में हस्त, पद कुक्षि और मुख में वह सब विन्यस्त करै। यह सम्पूर्ण मातृका मुद्रा यथाक्रम से कही गई। इन को न जानकर विन्यास करने से वह न्यास सर्वदा निष्फल होता है।

अब श्री कंठन्यास कहते हैं। यथा मातृका स्थान में पूर्णोदरी प्रकृति के सहित मातृका वर्ण युक्त श्रीकंठादि यथाक्रमसे न्यस्त करै। श्रीकंठ अनंत, सूक्ष्म, त्रिमूर्त्ति अमरेश्वर, अर्घीश, भारभूति, अतिथीश, स्थाणुक, हर, झिंटीश, भौतिक, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर, महासील और महादेव, यह सोलह स्वर की मूर्त्ति हैं। इन कोही श्री कंठादि कहते हैं।

और क्रोधीश, चण्डेश, पंचात्मक, शिवोत्तम एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्र, अर्द्ध चतुरानन, अजेश, सर्वसोमेश, लांगल, दारक, अर्द्धनारीश्वर, उमाकांत आषाढ़ी, दंती, अत्रि,

शिखी तथा । छगलांडद्विरंडेशौ समहाकालवालिनौ । भुजङ्गेश पिनाकीश खड्गेशाख्यावकेश्वरः ॥ श्वेतभृग्वीशनकुलि शिवाः संवर्त्तकः स्मृतः ॥ एते रुद्राः स्मृता रक्ताधृतशूलकपालकाः । पूर्णोदरी स्याद्विजया शाल्मली तदनन्तरम् ॥ लोलाक्षी वर्तुलाक्षी च दीर्घघोणा समीरिता । सुदीर्घमुखी गोमुख्यौ दीर्घजंघा तथैवच ॥ कुम्भोदर्य्यूर्द्ध्वकेशी च तथा विकृतमुख्यपि । ज्वालामुखी ततो ज्ञेया पश्चादुल्कामुखी तथा ॥ चुल्लीमुखी विद्यामुखी चैताः षोड़श शक्तयः । महाकालीसरस्वत्यौ सर्वसिद्धिसमन्विते ॥ गौरी त्रैलोक्यविद्याच मन्त्रशक्तिस्ततः परम् । आत्मशक्तिर्भूतमाता तथा लम्बोदरी मता ॥ द्राविणी नागरी भूयः खेचरी चैव मंजरी । रूपिणी वीरणी पश्चात् काकोदर्य्यपि पूतना ॥ स्याद्भद्रकाली योगिन्यौ शंखिनी गर्जिनी तथा । सकालरात्रिकुब्जिन्यौ कपर्दिन्यपि वज्रिणी ॥ जया च सुमुखी प्रोक्ता रेवती माधवी तथा । वारुणी वायवी प्रोक्ता पश्चाद्रक्षोविदारिणी ॥ ततश्च सहजालक्ष्मीर्व्यापिनी माययान्विता । एतारुद्राङ्कपीठस्थाः सिन्दूरारुणविग्रहाः । रक्तोत्पलकपालाढ्या अलंकृतकराम्बुजाः ॥

अथ प्रयोगः यथा—अं श्रीकण्ठ पूर्णोदरीभ्यां नमः इति ललाटे । आं अनन्तवीजाभ्यां नमः इति मुखवृत्ते । एवं क्रमेण सर्वं कुर्य्यात् ।

मीन, मेष, लोहित, शिखी, छगलाण्ड, द्विरण्डश, महाकालवाली, भुजंगेश, पिनाकीश खड्गेश, वकेश्वर, श्वेतभृग्वीश, नकुली, शिव, संवर्त्तक, इन को रुद्र कहते हैं। यह सब रक्तवर्ण और सभी शूल एवं कपालधारी है। और पूर्णोदरी, विजया, शाल्मली लोलाक्षी, वर्त्तुलाक्षी, दीर्घघोणा, दीर्घमुखी, गोमुखी, दीर्घजंघा, कुम्भोदरी, ऊर्द्ध्वकेशी, विकृतमुखी, ज्वालामुखी, उल्कामुखी चुल्लीमुखी, विद्यामुखी, यह सोलह शक्ति हैं। महाकाली, सरस्वती, गौरी, त्रैलोक्यविद्या, मंत्रशक्ति, आत्मशक्ति, भूतमाता, लम्बोदरी, द्राविणी, नागरी, खेचरी, मञ्जरी, रूपिणी, कारिणी, काकोदरी, पूतना, भद्रकाली, योगिनी, शंखिनी, गर्जिनी, कालरात्रि, कूजिनी, कपर्द्दिनी, वज्रिणी, जया, सुमुखेश्वरी, रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी, रक्षोविदारिणी, सहजा लक्ष्मी और माया, यह रुद्रगणों की अंक पीठस्थ और सभी सिंदूर की समान लोहित शरीर सभी रक्तोत्पल और कपालहस्ता और समस्त ही अलंकृत कराम्बुज हैं। इन का प्रयोग। यथा—ओं श्री कण्ठपूर्णोदरी दोनों को नमस्कार है। यह कहकर ललाट में न्यास करै। इत्यादि।

अथ षोढ़ान्यासः। तदुक्तं वीरतन्त्रे—

केवलां मातृकां कृत्वा मातृकां तारसंपुटाम्। मातृकापुटितं तारं न्यसेत् साधकसत्तमः॥

ओं अं ओं एवं तथैव मातृकापुटितं एवं कामपुटितं तत् पुटितं कामम्। शक्तिपुटितं तत्पुटितां शक्तिम्। लज्जापुटितं तत्पुटितां लज्जाम्। मन्त्रपुटिताम् तत्पुटितं मन्त्रम्। पुनरनुलोमाविलोमतः केवलमन्त्रं मातृकास्थाने न्यस्य अष्टोत्तरशतेन व्यापकं कुर्य्यात्।

इति गुप्तेन दुर्गाया अङ्गषोढ़ा प्रकीर्त्तिता। तारायाः कालिकायाश्च तन्मुख्याश्च तथापि वा॥ कृतेऽस्मिन्न्यासवर्य्ये तु सर्वं पापं प्रणश्यति। विषापमृत्युहरणं ग्रहरोगादिनाशनम्॥ दुष्टसत्वा विनश्यन्ति शत्रवोयान्ति मित्रताम्। कविता लहरी तस्य द्राक्षारसपरम्परा॥ अणिमाद्यष्टसिद्धिस्तु तस्य हस्ते व्यवस्थिता। कायिकं वाचिकं वापि मानसञ्चापि दुष्कृतम्॥ सर्वं तस्य विनाशत्वं याति न्यासस्य चिन्तनात्। पुरस्कृत्य चयं याति यत्किञ्चिदुपपातकम्। यद्रूपं दृश्यते योहि स तद्रूपञ्च गच्छति॥ यं नमान्ति महेशानि! षोढा पुटितविग्रहाः। अल्पायुः स भवेत् सद्यो देवता कम्पते भिया॥

अब सोढ़ान्यास कथित होता है। वीरतंत्र में कहा है, केवल मातृका विधान पूर्वक प्रणव पुटित मातृका और मातृका पुटित प्रणव विन्यस्त करै। यथा 'ओं अं ओं' इस प्रकार मातृकापुटित और कामपुटित एवं तत्पुटित काम इत्यादि। पुनर्वार अनुलोम और विलोम क्रम से मातृका स्थान में केवल मंत्रन्यास करके अष्टोत्तर शत द्वारा व्यापक विधान करै। इसका ही नाम दुर्गा और कालिका का अंगषोढा है। इस षोढा विधान करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं। विष और अपमृत्यु दूर होती है, गृहरोगादि दूर होते हैं, दुष्ट सत्व विनाशित होते हैं, शत्रुओं में मित्रता होती है मुखसे द्राक्षारसधारा की समान रसमयी कविता लहरी निर्गत होती है, अणिमादिक आठ सिद्धि हस्तगत होती हैं, कायिक, वाचिक और मानसिक पाप सम्पूर्ण इस न्यास के चिंतामात्र से ही तत्काल दूर होते हैं, और जो कुछ उपपातक हैं, वह भी इसी प्रकार नष्टहोते हैं, हे महेशानि! षोढा पुटित विग्रह व्यक्ति गण जिसको नमस्कार करते हैं, वह व्यक्ति शीघ्र अल्पायु होता है और देवतागण भी उसके भयसे कम्पित होते हैं।

अथ तत्वन्यासः । मूलविद्या स्वतन्त्रे—

आत्मविद्या शिवैस्तत्वैस्तत्वन्यासं समाचरेत् ॥

अथ जीवन्यासं कुर्य्यात् । यथा कुमारीतन्त्रे—

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशके । गुह्ये वक्त्रे तु सर्वांगे सप्तबीजान् क्रमान् न्यसेत् ॥

अथ प्रयोगः- आद्यबीजमुच्चार्य नमो ब्रह्मरन्ध्रे एवं द्वितीयबीजं भ्रुवि । तृतीयं भाले चतुर्थं नाभौ पंचमं गुह्ये षष्ठं वक्त्रे । सप्तमं सर्वांगे न्यसेत् । ततः प्रणवपुटितमूलेन व्यापकन्यासं कुर्य्यात् नवधा सप्तधा पंचधा वा मस्तकादिपाद पर्य्यंतं पादादिमस्तकांतं न्यसेत् । तदुक्तं भैरवतन्त्रे-

पंचधा नवधा वापि मूलेन सप्तधा तथा ॥

व्यापकं कुर्य्यादित्यादि । स्वतन्त्रेऽपि—

मूलेन व्यापकं न्यासं नवधा कारयेत् प्रिये ॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरिविरचिते श्यामारहस्येन्यासांतविवरणंनामप्रथमःपरिच्छेदः ।

अब तत्वन्यास कथित होता है । स्वतन्त्र में कहा है, आत्मतत्व, विद्यातत्व; और शिवतत्व द्वारा तत्व न्यास करे । फिर जीव न्यासकरै । जैसा कि कुमारी तन्त्र में कहाहै; ब्रह्मरन्ध भ्रू, ललाट, नाभिदेश, गुह्य, वक्त्र (मुख)और सर्वांग में यथाक्रम से सप्तबीज न्यस्त करें ।

प्रयोग यथा-आद्यबीज उच्चारण करके ब्रह्मरन्ध में नमः इस प्रकार कहै फिर द्वितीय बीज भ्रू में, तृतीय बीज ललाट में, चतुर्थ बीज नाभि में, पंचम बीज गुह्य में, षष्ठ बीज वक्त्र में और सप्तम बीज सर्वांग में न्यस्त करै । फिर प्रणव पुटित मूल मन्त्र में व्यापक न्यास करके नव (९) बार, सात बार, वा पाँचवार मस्तकादि पद पर्यंत और पादादि मस्तक पर्यंत न्यास करै । भैरवतंत्र में इसी प्रकार कहा है,-यथा पाँच बार, नवबार, अथवा सातबार मूल की सहायता से व्यापक न्यास करै, इत्यादि स्वतंत्र में भी कहा है, हे प्रिये ! मूल की सहायता से नौ बार व्यापक न्यास करना चाहिये ॥

इति श्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानंदगिरि विरचित श्यामारहस्य भाषाटीकासहित न्यासान्त विवरण नाम प्रथमपरिच्छेदः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयः परिच्छेदः ।

अथान्तर्यजनं वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम् । गुरुध्यानं प्रकुर्वीत यथा पूर्वं विशालधीः ॥ स्नायाच्च विमले तीर्थे पुष्करे हृदयाश्रिते । विन्दुतीर्थेन वा स्नायात् पुनर्जन्म न विद्यते ॥

इड़ासुषुम्ने शिवतीर्थकेऽस्मिन् ज्ञानाम्बुपूर्णेऽथतत: शरीरे । ब्रह्माम्बुभिः स्नाति तयोः सदा यः किं तस्य गाङ्गैरपिपुष्करैर्वा । इति स्नानम् ॥

शिवशक्त्योः समायोगो यस्मिन् काले प्रजायते । सा सन्ध्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थैः प्रतीयते ॥ इति सन्ध्योपासनम् ॥

अथ मूलधारात् कुलकुण्डलीं सोमसूर्य्याग्निरूपिणीं समुत्थाप्य परविन्दुं निर्भिद्य देहदेवतां तर्पयेत् । तदुक्तम्–

चन्द्रार्कानलसंजुष्टाकुलितं यत् परामृतम् । तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत्तेन देवताम् ॥ इति तर्पणम् ।

ब्रह्मरन्ध्रादधोभागे यच्चान्द्रं पात्रमुत्तमम् । कलासाधनं संपूर्य्य तर्पयेत्तेन खेचरीम् ॥ इत्यर्घ्यसाधनम् ।

जिसके द्वारा दृष्ट अदृष्ट फल प्राप्त होता है इस समय वही अन्तर्यजन कहते हैं। विशाल बुद्धि पुरुष पूर्वकी समान यथाविधानसे गुरुका ध्यान करै और हृदयाश्रित विमल पुष्कर तीर्थ में अथवा विन्दु तीर्थ में स्नान करै, तो पुनर्जन्म नहीं होता । इडा और सुषुम्ना इन दोनों को शिव तीर्थ कहते हैं। यह ज्ञानरूपी जलसे पूर्ण है। जो व्यक्ति ब्रह्म सलिलमें अर्थात् इन दोनों तीर्थ में सर्वदा स्नान करता है उसको गंगाजल अथवा पुष्करके जलमें स्नान करने की कोई आवश्यकता नहीं है । यह स्नान वर्णित हुआ । जिस समय शिव और शक्ति इन दोनों का मिलाप होता है कुलनिष्ठगणों की वही सन्ध्या है समाधि परायण होनेपर उसकी प्रतीत होसकी है । संध्योपासन वर्णित हुई ।

अनन्तर मूलाधार से सोम सूर्याग्निरूपिणी कुलकुण्डलिनी को समुत्थापित (उठाना) और परविन्दु को निर्भेद करके देह देवताका तर्पण करै। यही कहा है, यथा—जो परमामृत चन्द्र सूर्य और अग्नि से संजुष्ठ (मिलित) और आकुलित है, उसी दिव्य अमृतसे देवताका तर्पण करै । यह तर्पण वर्णित हुआ । ब्रह्मरन्ध्र के अधोभाग में, जो चंद्र संबंधीय पात्र हैं, उसको कलासाधन की सहायता से पूरण करके उसके द्वारा खेचरीका तर्पण करै। इसकाही नाम अर्घ्यसाधन है । विमल बुद्धि

आधार लिङ्गनाभौ हृदयसरसिजे तालमूले ललाटे द्वेपत्रे षोड़शारे द्विदशदशदले द्वादशार्द्धे चतुष्के। वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वरांश्च वर्णौ कोदण्डमध्ये न्यसतु विमलधीन्यासिसम्पत्तिसिद्ध्यै॥ इति मातृकार्णान् कण्ठच्छदक्रमेण ध्यायेत्।

अथ षडंगन्यासः तदुक्तं गौतमीये-

इज्यमानहृदर्थोऽयं हृदये स्याच्चिदात्मकः। क्रियते तत्परत्वेन हृन्मन्त्रेण ततः परम्॥ सर्वज्ञादिगुणोत्तुंगे संविद्रूपे परात्मनि। क्रियते विषयाहारः शिरोमन्त्रेण देशिकः॥ हृच्छिरोरूपसिद्धौ नियता भावनादृढा। क्रियते निजदेहस्य शिखामन्त्रेण देशिकः॥ मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रवाच्येन तेजसा। सर्वतो धर्ममंत्रेण अहन्यहनि संवृतिः॥

इति अहिंसनीयवह्निलक्षणम्। यत्र क्षणे हिंस्राणां हिंसोपाया न प्रवर्त्तते इत्यर्थः।

यो ददाति परं ज्ञानं संविद्रूपे परात्मनि। हृदयादिमयं तेजः स्यादेतन्मैत्रसंज्ञितम्॥ आध्यात्मिकादिरूपं यत् साधकस्य विनाशयेत्। अविद्याशतमंत्रं तत्परं धाम समीरितम्॥

इति षडङ्गन्यासं विधाय ध्यानं कुर्य्यात्। यथा उदयाकरपद्धत्यां-

---

साधक आधार में, लिंग भि में, हृदय सरोज में, तालु मूल में ललाट में, षोड़शारमें, द्विदश दशदल में, षड़ दल पद्म, चतुर्दल में वासन्त में और बाल म एवं ड क, फ, उ, ठ, सहित कण्ठदेश में और कोदण्ड में न्यास सम्पत्ति सिद्धिके लिये ह, उ, क्ष, और संपूर्ण स्वर संयुक्त करें। इस प्रकार से कण्ठच्छद क्रमानुसार समस्त मातृका वर्गका ध्यान करे॥

अथ षडङ्गन्यास कीर्तन किया जाता है। गौतमीय में कहा है, हृदयमें जो चिदात्मक वस्तु है, वह सबकोही साधनीय है अर्थात् सबकोही उसका साधन करना चाहिये। इसी कारण तत्पर होकर हृन्मन्त्र द्वारा उसकी साधना करे। संवित् साक्षात् परमात्मा का रूप है। सर्वज्ञादि गुण परम्परा की सहायतासे उस परमात्मा ने संसार में सबकी अपेक्षा उच्चस्वरूप लाभ किया है। साधक शिरोमंत्र की सहायता से उस में उल्लिखित चिदात्मक वस्तु की साधना करते हैं इसका ही नाम अहिंसनीय वह्नि लक्षण है। इस प्रकार षडङ्गन्यास विधानपूर्वक ध्यान करना चाहिये। जैसे—

शक्तिद्वयपुटांतस्थं लक्ष्यत्रयसुसंस्थितम् । ज्योतिस्तत्त्वमय ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात् ॥

अथवा-शृङ्गाटद्वयमध्यस्थं शक्तिद्वयपुटीकृतम् । सदा समरसं ध्यायेत् कालं तत्कुलयोगिनाम् ॥

अन्यच्च-किरणस्थं तदग्रिस्थं चन्द्रभास्करमध्यगम् ॥ महाशून्येन यत्कृत्वा पूर्णस्तिष्ठति योगिराट् ॥

महाशून्य इति सर्वोपाधिविनिर्मुक्ते । पूर्ण इति सर्वोपाधि विनिर्मोक्षात् विभागविरहात् । पूर्ण एव भवतीति । अथवा-निरालम्बपदे शून्ये यत्तेज उपपद्यते । तद्धर्ममभ्यसेन्नित्यं ध्यानं तत्कुलयोगिनाम् ॥

तद्धर्ममिति अन्तःकरणस्थं अभ्यसेदिति वारंवारं कुर्य्यादित्यर्थः॥ इति ध्यानम् ॥

अर्चयन् विषयैःपुष्पैस्तत्क्षणात्तन्मयो भवेत् । न्यासस्तन्मयताबुद्धिः सोऽहम्भावेन पूजयेत् ॥

तन्मयेति तदेवात्मतत्त्वज्ञानम् । सोऽहमिति तत्त्वम्पदबोधनार्थं परिचिन्तनमात्रम् । विषयपुष्पाणि यथा—

अमायमनहङ्कारमरागमपदं तथा । अमोहकमदम्भञ्च तत्त्वेर्ष्याक्षोभकं तथा ॥ अमात्सर्य्यमलोभञ्च दशपुष्पंविदुर्बुधाः । अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहम् ॥ दयापुष्पं क्षमापुष्पं ज्ञानपुष्पञ्च

उदयाकर पद्धति में कहा है-कुलाकुल नियोजन सहित ज्योतिस्तत्वमय ध्यान करै। अथवा शृङ्गाटद्वितय (भाल मध्य में) मध्यस्थित और दो शक्ति पुटित समरस ध्यान करै। अन्यत्र भी कहा है, उपाधि शून्य, आलम्बन शून्य ब्रह्मपद में जो तेज उत्पन्न होता है, उसी अन्तःकरणस्थ तेज का वारम्बार ध्यान करै । यही कुल योगी गणों का ध्यान है।

भली भांति पुष्प की सहायता से पूजा करने पर तत्काल साधक तन्मय होता है। तन्मयतां बुद्धि का नाम न्यास है। सोह—भाव में पूजा करनी चाहिये। यहाँ तन्मयता शब्द में आत्मतत्व ज्ञान है। सोहं शब्द में तत्व, पद शोधनार्थ, परिचिन्तन मात्र पूजा का उपकरण, यही भावार्थ है । विषयपुष्प शब्द में अमाया, अनहङ्कार, अमोह, अमद, अमात्सर्य अलोभ, इत्यादि समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त, अहिंसा, इन्द्रिय

चन्दनम् । इत्यष्टसत्पाभिः पुष्पैः पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥ इति पूजनम् ।

माला पंचाशिका प्रोक्ता सूत्रं शक्तिशिवात्मकम् । ग्रथिता कुंडली शक्तिः कल्पान्ते मेरुसंस्थिता ॥

एवं विधिना वर्णमालामुपस्कृत्य सुमेरुरूपं कृत्वा अकारादिक्ष-कारान्तम् । लकारादि श्रीकंठांन्तम् मूलमंत्रं जप्त्वा परतेजसि समर्पयेत् ॥

अथ होमः—आत्मानमपरिछिन्नं विभाव्यांतरं वा परमात्म ज्ञा-नात्मस्वरूपं चतुरस्रं चित्कुण्डमानंदमेखलायुतम् अर्द्धमात्राकृतयो-निभूषितं नाभौ ध्यात्वा तन्मध्यस्थ ज्ञानाग्नौ जुहुयात्। यथा मूलांते नाभौ चैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्ष-सिद्धहोम्यहं स्वाहा । अनेन प्रथमाहुतिं दद्यात् ॥

मूलांते-धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा । सुषुम्ना वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम् ॥ स्वाहा—इति द्वितीयाहुतिं दत्वा॥ मूलांते—प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलंब्योन्मनी स्रुचा । धर्माधर्मकल-स्नेहपूर्णं वह्नौ जुहोम्यंह स्वाहा । अनेन तृतीयाहुतिं दद्यात् ॥

ततो मूलान्ते—

अन्तर्निरंजर्निनिबन्धनमेधमाने मायान्धकार परिपंथिनि संवि-दग्नौ ॥ कस्मिश्चिदद्भुतमरीचि विकाशभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधां

निग्रह, दया, क्षमा और ज्ञान, इन पाँच को भी पुष्प कहते हैं । इन सब पुष्पों में परमे-श्वरी की पूजा करनी चाहिये । इसका ही नाम पूजा है ।

पञ्चाशत (पचास) वर्ण की माला एवं शिव और शक्ति को सूत्र कहते हैं । इस प्रकार विधान से वर्णमाला उपस्कृत (बनाय) कर, आकार से क्षकार और लकार से श्रीकण्ठ पर्यन्त मूलमंत्र जप पूर्वक परम तेज में समर्पण करै ।

अनन्तर होम करना चाहिये । यथा—आत्माको अपरिच्छिन्न विचार अथवा जो परमात्मा स्वरूप हैं, जो आनन्दरूप मेखला युक्त और अर्द्धमात्रा कृत योनि मण्डित है। उसी चतुरस्र चित्कुण्डका नाभि में ध्यान करके तिसके मध्यस्थित ज्ञानरूप अग्नि में आहुति प्रदान करै यथा—मूलान्ते इत्यादि कहकर प्रथम आहुति दे। अनन्तर मूलान्त में धर्म और अधर्मरूप हवि द्वारा प्रज्वलित अग्निमें मनरूप स्रु च (प्रीति) द्वारा सुषुम्ना वर्त्मयोगमें आहुति देताहूं यह कह स्वाहा उच्चारणकर दूसरी आहुति प्रदान करै । अनन्तर मूलांतमें प्रकाशाकाश कहकर तीसरी आहुति प्रदानपूर्वक पुन-र्वार मूलमंत्र उच्चारण करके अन्तर्निरञ्जन इत्यादि कहकर अन्तर्यजन करै तो

दिशि वावसानम् ॥ इत्यंतर्यजनं कृत्वा साक्षाद् ब्रह्ममयो भवेत् । न तस्य पापपुन्यानि जीवन्मुक्तो भवेत् ध्रुवम् ॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानंदगिरिविरचिते श्यामारहस्येन्यासांतअंतर्यजनं नामद्वितीयः परिच्छेदः ।

अथ तृतीयः परिच्छेदः ।

अथ साधकः कुलवेशं कृत्वा कुलवेशंच कारयित्वा पीठ न्यासं कुर्य्यात् ॥

तदुक्तं कुमारीतन्त्रे -

ततः स्त्रीवेशधारी स्यात् सिंदूराङ्कितभालकः । शृंगारोज्ज्वलवेशाढ्यस्ताम्बूलपूरिताननः । एवं वेशादिकं कृत्वा वनितामपि कारयेत् । पीठन्यासं ततः पश्चादाधारशक्तिपूर्वकम् ॥ प्रकृतिं कमठं चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च । सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिंतामणिगृहं तथा ॥ श्मशानं पारिजातञ्च तन्मूले रत्नवेदिकाम् । तस्योपरि मणेः पीठं न्यसेत् साधकसत्तमः ॥ चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवांश्चशवमुंडकान् । धर्मांश्चैवाप्यधर्मांश्च पादगात्र चतुष्टये ॥

पादगात्र चतुष्टयंतु—दक्षांस—वमुख-दक्षजङ्घा—दक्षपार्श्वादिकम् ॥

साधक साक्षात् ब्रह्ममय होता है। पाप पुण्य कुछ नहीं रहता और जीवन्मुक्ति लाभ करसक्ता है।

इति श्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरी विरचित श्यामारहस्य श्रीपण्डितहरिशंकरकृत भाषाटीका सहित अन्तर्यजन नामक द्वितीय परिच्छेदः ॥ २ ॥

अनन्तर साधक स्वयं कुल वेश करके और कराकर पीठन्यास करे । कुमारी तंत्र में कहा है । यथा-अनन्तर स्त्री वेश धारण करके भालदेश (मस्तक में सिंदूर लगाना चाहिये और शृंगार योग्य उज्ज्वल वेश धारण पूर्वक ताम्बूल द्वारा मुख पूर्ण करे । स्वयं इस प्रकार वेशादि करके स्त्री को भी इसी प्रकार वेश पहिरावे। अनंतर आधार शक्ति पूर्वक पीठन्यास करे । प्रकृति, कमठ, शेष, पृथ्वी सुधाम्बुधि मणिद्वीप चिन्तामणि, गृह, श्मशान पारिजात, इसके मूल में एक वेदिका और उसके ऊपर मणिपीठ न्यस्त करै। फिर चारों ओर में मुनिगण देवगण, शिवगण, और समस्त शवमुण्ड एवं पादगात्र चतुष्टय में धर्म और अधर्म वर्ग विन्यास करै। दक्षिण

हृदि कन्दं तथा पद्मं सूर्यं सोमं महेश्वरि। वैश्वानरं तथा सत्त्वं रजश्चैव तमस्तथा ॥ आत्मानञ्चैव विन्यस्य शक्तिं हृत्पद्मके न्यसेत्।

आत्मानमिति आत्मशब्देनात्मचतुष्टयमुच्यते। शक्तिर्यथा-

इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामदा कामदायिनी। रतीरतिप्रियानंदा तथैव च मनोन्मनी ॥ वाग्भवं प्रथमं चाक्त्वा परायै तदनंतरम्। अपरायै द्विरूपायै हेमौ वाच्यावतःपरम् ॥ सदाशिव महा तं पद्मासनं तथा। नम इत्येव मंत्रोऽयं पीठन्यास उदाहृतः। एवं पीठे देहमये चिंतयेदिष्टदेवताम्।

अथादौ कामकलारूपमात्मानं विभाव्य मूलाधारात् कुंडलिनीं परमशिवांतं ध्यात्वा चंद्रामृतेन संप्लाव्य करकच्छपिकया पुष्पं गृहीत्वा सुषुम्नया आवाह्य हृदयाष्टदलरक्त पद्ममध्ये ध्यायेत्। तदुक्तं स्वतंत्रे-

अतः कामकला ध्यानमावाह्य कालिकां शिवाम्। कूर्माख्यमुद्रया पुष्पैश्चक्रमध्ये निधापयेत् ॥

स्कंध, दक्षिणमुख, दक्षिण जंघा, दक्षिण पार्श्व नाभि और वामपार्श्व, इन सबका नाम पादगात्र चतुष्टय है। हे महेशानि! हृदय में कंद, पद्म, सूर्य, सोम, वैश्वानर, सत्व, रज, तम और आत्मा न्यस्त करके हृत् पद्म में शक्ति न्यास करै यहाँ आत्मशब्द में आत्म चतुष्टय समझना चाहिये। शक्ति शब्द में इच्छा, ज्ञाना क्रिया कामदा कामदायिनी, रति, रतिप्रिया,आनन्दा और मनोन्मनी जाने। प्रथम वाग्भव अर्थात् ऐं उच्चारण करके फिर परायै अपरायै द्विरूपायै ऐसा कहना चाहिये। अनन्तर सदा शिवाय महा प्रेताय पद्मासनाय नमः इस प्रकार पद प्रयोग करै।

अनन्तर आदि में कामकलारूप आत्मा की विशेष प्रकार भावना कर मूलाधार से परम शिव पर्यंत कुण्डलिनी के ध्यानान्तर चन्द्रामृत द्वारा संप्लावित और कर कच्छपिका (कछुई) द्वारा पुष्प ग्रहण पूर्वक सुषुम्ना द्वारा आवाहन करके हृदयस्थी अष्टदल रक्तपद्ममें ध्यान करना चाहिये स्वतंत्र में यही कहा है। यथा—अतएव काम कला का ध्यान करके परम मंगल रूपिणी कालिका को अवाहन पूर्वक कुसुम मुद्राकी सहायता से समस्त पुष्प निवेदन करके चक्र में सन्निधापित (स्थापित) करै।

अथ कामकला यथा।

मुखं विंदुयदाकारं तदधः कुचयुग्मकम्। सर्वविद्या मृता पूर्ण सर्ववाग्विभवप्रदम् ॥ सर्वार्थसाधकं देवि सर्वरंजन कारकम्। तदधः सपरार्द्धंच सुपरिष्कृतमण्डलम् ॥ सर्वदेवादि भूतान्तःसर्वदेवनमस्कृतम्। सर्वाह्लादसुसंपूर्णं सर्ववश्यप्रवश्यकम्। एतत् कामकलाध्यानं सुगोप्यं साधकोत्तमैः।

श्रीक्रमेऽपि—

या सा मधुमती नाम्ना मायामोहनकारिणी। बाह्याभ्यन्तरयोगेन चिन्तनीयाञ्च तां शृणु॥ त्रैलोक्यमेकरूपेण स्वात्मानमेकरूपिणम्। एकाकृतिस्वरूपेण सर्वां शान्तिं विचिन्तयेत्॥ कामयेत् कामिनीं सर्वां देवीमीश्वररूपिणीम्। चिन्तयेत् सुन्दरीं देवीं सर्वव्यापककारिणीम्। ईकारः सर्वमन्त्रः स्यादपरं स्याच्चतुष्टयम्। विन्दुत्रयस्य देवेशि! प्रथमे देवि! वक्त्रके॥ विन्दुद्वयं स्तनद्वन्द्वं हृदि स्थाने नियोजयेत्। हकारार्द्धकलां सूक्ष्मां योनिमध्ये विचिन्तयेत्॥ तथा कामकलारूपां मदनांकुरगोचरे। उद्यदादित्यसङ्काशां सिन्दूराभां स्तनद्वयं॥ विंदुं सङ्कल्प्य वक्त्रेतु स्फुरद्दीपशिखां प्रिये। आधाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं तन्त्र

अब कामकला वर्णित होती है। यथा—मुख विन्दु की समान आकार युक्त उसके निम्न में कुच युगल वह सर्वविध विद्यारूपी अमृत में पूर्ण है सर्वविध वाग्विभव प्रदान और सर्वविध मनोरथ समाधान और सबका मनोरंजन करती है। उसके नीचे अपरार्द्ध सुपरिष्कृत मण्डलमें अलंकृत है। संपूर्ण देवता और भूतवर्ग इसके अन्तर्निष्ठ हैं सम्पूर्ण देवता उसको नमस्कार करते हैं वह सब प्रकार के आह्लाद में परिपूर्ण औ सबकीवशीकरण स्वरूपहै। इस प्रकारकामकलाका ध्यानकरै यह ध्यान अत्यन्तगुप्त रखना चाहिये। श्री क्रममें भी कहा है, मधुमती नामक जो माया सब को मोह उत्पन्न करती है, बाहर और भीतर उसकी जिसरूपमें चिन्ता करनी चाहिये सो श्रवण करो। एकरूप में त्रैलोक्य, एकरूप में स्त्री आत्मा और एकरूप में सर्वविध शान्ति की चिन्ता करनी चाहिये। उस ईश्वर रूपिणी देवी को यावतीय कामिनी रूपमें और सर्व व्यापक कारिणी सुंदरी रूप में ध्यान करै। प्रथम देवी के वक्र में तीन विन्दु और हृदय में दो विन्दुस्वरूप स्तनद्वन्द्व (दोनों छाती) नियोजित करके सूक्ष्म हकारार्द्ध कालयोनि में चिन्ता करै। फिर मदनांकुर गोचर में कामकला रूपकी भावना करनी चाहिये। यह कामकला उदय हुए प्रभाकर (चंद्रमा) की समान और सिंदूरवत् आभा युक्त है।

मार्गेण भावयेत् ॥ कामबिंदुरहं देवि तत्रस्थां परमेश्वरीम् । शिव-शक्तिमयींदेवी तदधःस्थात् कुचद्वयम् ॥ तदधः सपरार्द्धेच चिद्रूपां परमां । कलाम् सापि कुंडलिनी शक्तिः कामकलास्वरूपिणी ॥ सा शिखावर्त्मे गच्छन्ती भित्वा ग्रन्थिं चतुर्दश । प्रविश्य परमार्गन्तु सूक्ष्म मार्गस्वरूपिणी ॥ सापि च त्रिविधा सृष्टिर्ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणी । सञ्चिन्त्य साधक श्रेष्ठस्त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ एतत्ते कथितं देवि कामकलाविनिर्णयम् । गोप्तव्यं हि प्रयत्नेन यदि च्छेदात्मनो हितम् ॥

अथ कूर्ममुद्रा यथा । कालिकापुराणे—

वामहस्तस्य तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम् । तथा दक्षिणतर्जन्यां वामांगुष्ठेन योजयेत् ॥ प्रोन्नतं दक्षिणांगुष्ठं वामस्य दक्षिणादिकाः । अंगुलीर्योजयेत् पृष्टे दक्षिणस्य करस्यच ॥ वामस्य पितृतीर्थेन मध्य-मानामिके तथा । अधोमुखे च ते कुर्य्यात् दक्षिणस्य करस्यच ॥ कूर्म-पृष्ठसमं कुर्य्याद्दक्षिणस्य करस्य च । एवंविधः सर्वसिद्धिं ददाति पा-णिकच्छपः । कुर्य्यात्तु नयनाग्रे तु निमील्य नयनद्वयम् । समं काय-

---

हे प्रिये ! दोनों स्तन में विन्दु कल्पना करके वदन मण्डल में आधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यंत तंत्र मार्गानुसार स्फूर्तिमती कीदीप शिखारूपमें चिंता करै। मैंही वह बिन्दुरूप काम हूं साक्षात् परमेश्वरी उस बिंदुमें विराजमान है। उसके अधोवर्ती दोनों कुच शिवशक्ति मय हैं उसके अधोभाग स्थित सपरार्द्ध चित्स्वरूपिणी परमा कला है। इस कांही नाम कामकला स्वरूपिणी कुण्डलिनी शक्ति है। यह चौदह ग्रंथि भेद कर शिखावर्त्ममें गमन और सूक्ष्ममार्ग रूप एवं परमार्थमें प्रवेश करतीहै। यही त्रिविधा सृष्टि और यही ब्रह्मा विष्णु स्वरूपिणी है। इसकी चिंता करने से साधक श्रेष्ठ होकर तीनों लोकों को वशीभूत कर सक्ता है। हे देवी ! मैंने तुम्हारे निकट यह कामकला का स्वरूप कीर्तन किया। अपने हित की कामना होने से इसको यत्न सहित गुप्त रखना चाहिये।

कूर्ममुद्रा यथा-कालिका पुराण में लिखा है वामहस्त की तर्जनी में दक्षिण हस्त की कनिष्ट अंगुली और दक्षिण हस्त की तर्जनी में वामहस्त का अंगुष्ठ योजना (मिलाय) करके दक्षिण हस्त के अंगुष्ठ को ऊंचा कर वामहस्त की मध्यमादि सब अंगुली दक्षिण हस्त के क्रोड़ में, न्यस्त करै। फिर वामहस्त की तर्जनी और अंगुष्ठ के मध्यभाग में दक्षिणहस्त की अनामिका और मध्यमा अधोमुख में संयोजित करके, दक्षिण हस्त का पृष्ठ देश कछुए की पीठ के समान ऊंचा करना चाहिये इसका नाम पाणिकच्छप या कूर्ममुद्रा है। इसके द्वारा सर्व प्रकार की सिद्धि संग्रहीत होती है।

शिरोग्रीवं कृत्वा स्थिरतरो बुधः । ध्यानं समारभेन्मन्त्री सर्वपाप विनाशनम् ॥

ध्यानं यथा स्वतंत्रे-

देव्या ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वदेवोपसेविताम् । अञ्जनाद्रिनिभां देवीं करालवदनां शिवाम् ॥ मुण्डमालावकीर्णांसां मुक्तकेशीं स्मितानानाम् । महाकाल हृदम्भोजे स्थितां पीनपयोधराम् ॥ विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शिवैः सह । नागयज्ञोपवीताञ्च चन्द्रार्द्धकृतशेखराम् ॥ सर्वालङ्कारयुक्ताञ्च मुण्डमालाविभूषिताम् । मृतहस्तिसहस्रैस्तु काञ्चीबद्धां दिगम्बरीम् ॥ शिवाकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम् । रक्तपूर्णमुखाम्भोजां मद्यपानप्रमत्तकाम् ॥ वह्न्यर्कशशिनेत्रान्तु वह्निविन्दुयुताननाम् । विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीम् ॥ कण्ठावसक्तमुण्डालीं गलद्रुधिरचर्चिताम् । श्मशानवह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववन्दिताम् ॥ सद्यश्छिन्नशिराः खड्गवराभीतिकराम्बुजाम् । तत्र वामोर्द्धहस्तेन कपालं तदधः शिरः ॥ दक्षिणोर्द्ध-हस्ते अभयं तदधो वरामिति ॥

दोनों नेत्र निमीलित (बंदकर) करके नासाग्र में इसका विधान करे एवं काय, शिर और ग्रीवा समभावमें रख, स्थिरतरहो ध्यानमें प्रवृत होवे। तो समस्त पाप नष्ट होतेहैं

ध्यान यथा—स्वतंत्र में कहा है, संपूर्ण देवता जिसकी सेवा करते हैं, उसी देवी का ध्यान कहता हूं । वह अंजन पर्वत सन्निभा, स्वप्रकाशयुक्त, करालवदना, परम मँगल स्वरूपिणी, मुक्तकेशी, स्मेरानना, मुण्डमाला समलँकृत गलदेश युक्त, महाकाल के हृत् पद्ममें अधिष्ठिता पीनपयोधरा, विपरीतरतासक्त, शिवगण में परिवेष्ठिता, भयँकर दँष्ट्रा सँपन्न सर्व्व यज्ञोपवीत में अलँकृता, अर्द्ध चँद्रकृत शेषर शालिनी, सर्वालङ्कार-भूषित, मुण्डमाला में अलँकृत, सहस्र मृत हस्ति के काञ्ची दाम में विमण्डित दिग्वस्त्रा, शिवा कोटि सहस्र की समभिव्याहारिणी योगिनियों में परिवारिता, रक्तपूर्ण मुखपद्म से सुशोभिता, मदपान में मत्तभावापन्न, सूर्य, सोम और अग्निरूप तीन नेत्र में विमण्डित है। उसका बदन मण्डल शोणित संसर्ग से समुज्ज्वलित हुआ है। इसने दो मृत बालकों का कर्णमूल में भूषण धारण किया है। कण्ठदेश विलम्बिनी मुण्डमाला से रुधिर राशि ने गिरकर उसका सर्वशरीर चर्चित किया है। वह श्मशानालय और अग्निमें अवस्थिति करतीहै ब्रह्मा और केशव उसकी बँदना करते हैं उसके हस्त में सद्य छिन्नमस्तक, खड्ग, वर और अभय विराजमान है तन्मध्य वामार्द्ध हस्त में कपाल और उसके अधोवर्त्ती हस्त में मस्तक एवँ दक्षिण की ओर

तदुक्तं महाकालकृतस्तवे-

ऊर्द्ध्वे वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं तथाधःसव्ये चाभीर्वरञ्च ॥ इत्यादि-

ध्यानान्तरं यथा भैरवतन्त्रे-

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् । कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥ सद्यश्छिन्नशिरः खड्गवामाधोर्द्ध्वकराम्बुजाम् । अभयं वरदं चैव दक्षिणोर्द्ध्वधः पाणिकाम् ॥ महामेघप्रभां श्यामां तथैवच दिगम्बरीम् । कण्ठावशक्त मुण्डालीं गलद्रुधिरचर्चिताम् ॥ कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम् । घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ॥ शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् । सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराभिःस्फुरिताननाम् ॥ घोररूपां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् । दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ॥ शवरूप महादेव हृदयोपरि संस्थिताम् । शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् । महाकालेन च समं विपरीत-

---

उर्द्ध्ववर्त्ती हस्त में अभय और उसके अधोभाग में वर विराजमान है महाकालकृत स्तव में भी इसीप्रकार लिखा है यथा-वाम करतलके ऊर्द्ध में कृपाण, उसके अधोभाग में छिन्नमुण्ड, दक्षिण करमें अभय और वर इत्यादि।

ध्यानांतर यथा—भैरव तन्त्रे—दक्षिण कालिका का भजनी करै वह करालवदना, घोरा, मुक्तकेशी, चतुर्भुजा, अलौकिक स्वभाव युक्त और मुण्डमाला विभूषित हैं। उसको वाम ओर के अधः और ऊर्द्ध कर कमल में सद्य छिन्न शिर और खड्ग विराजमान है; दक्षिण हस्त के अध और ऊर्द्ध में अभय और वर शोभित है। उसकी प्रभा महामेघ की समान है। वह श्यामा और दिगम्बरी है। उसके कण्ठ में मुण्डमाला दोलायमान है। गिरती हुई रुधिर धारा में उसका कलेवर चर्चित होता है। उसके कर्ण में शव युग्मका भूषण है। उससे वह भयानक हुई है। उसके दंष्ट्रा घोर भावापन्न हैं। पयोधर पीनोन्नत हैं। शव समूह के कर समूह में उसकी काँची (कौंधनी) निर्मित हुई है। उसका वदन मण्डल सहास्य है। उसके दोनों स्रक् (गलफू) से जो रुधिर धारा गिरती है तिसके द्वारा उसका आनन प्रस्फुरित [खिला] हुआ है। वह घोर रूपा, एवं रौद्र प्रकृति और श्मशान में वास करती है। वह शवरूप महादेव के हृदयों पर अवस्थिति करती है। शिवागण भयंकर स्वरसे उसके चारों ओर चीत्कार करते हैं। वह महाकाल के सङ्ग विपरीत रत में मत्त है। वह त्रिजगत् की धात्री है

रतातुराम्। भजेत्रिजगतां धात्रीं स्मेरामनसरोरुहाम्। एवं संचिन्तयेत् कालीं धर्मकामार्थसिद्धिदाम् ॥

अथानयोरेकतरेण देवीं ध्यात्वा मानसोपचारैराराध्य पूर्ववज्जपहोमं कृत्वा नमस्कारं स्तोत्रपाठं च कुर्य्यात् ॥ यंत्र निर्माणार्थं पात्राणि यथा मुंडमालातंत्रे—

ताम्रपात्रे कपालेवा श्मशाने काष्ठनिर्मिते । शनिभौमदिने वापि शरीरे मृतसम्भवे ॥ स्वर्णरौप्ये च लौहेवा चक्रमभ्यर्च्य यत्नतः॥

स्वतन्त्रेऽपि—

इत्थं विन्यस्तदेहः सन् चक्रराजं समालिखेत् ॥ सुवर्णे रजते ताम्रे पाषाणे वाष्टधातुषु ॥ इति ॥

अथ वहिः पूजार्थं वक्ष्यमाणगन्धाष्टकलिप्ते स्वर्णादिकुण्डगोलस्वयम्भूकुसुमागुरुलिप्ते वा स्वर्णरजतताम्रशलाकया विन्दुकण्टकेन पुष्पेण वा मन्त्रमुच्चारणम्। विन्दुमायायुत त्रिकोणपंचवृत्ताष्टदलपद्मचतुरस्रं चतुर्द्वारात्मकम् यन्त्रराजं लिखेदिति सत्सम्प्रदाया वदन्ति। तथाच कालीतंत्रे-

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत्। ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ॥ ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः। वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेत् नूपुरयुग्मकम् ॥

उसका वदन सरोरुह मृदु मन्द हास्य में अलंकृत है । धर्म, कामार्थ सिद्धिदायिनी कालिका को इस रूप में चिंता करै। इन दोनों के एकतर ध्यान द्वारा देवी का ध्यान करके मानस उपचार समूह में आराधना कर पूर्व की समान जप होम सहित नमस्कार स्तोत्र पाठ करै।

यंत्र निर्माणार्थ सम्पूर्ण पात्र यथा-मुण्डमालातंत्रे-ताम्रपात्र में, कपाल में, श्मशान काष्ट निर्मित पात्र में, शनिवा मङ्गलवार में मृत व्यक्ति के देह में सुवर्ण चाँदी वा लोहे के पात्र में यत्नसहित यंत्र की अभ्यर्चना करै । स्वतन्त्र में भी कहा है इस प्रकार अंगन्यास करके सुवर्ण, रजत, ताम्र, पाषाण अथवा अष्टधातु में यंत्रराज अंकित करै।

अनन्तर वहिः (बाहिरी) पूजा के लिये निम्नलिखित अष्टविध गंध में विलिप्त प्रदेश में सुवर्ण, रजत (चाँदी) वा ताम्र निर्मित शलाका अथवा विंदुकण्टक पुष्पद्वारा मंत्रोच्चारण सहित विंदु और मायावीज युक्त त्रिकोण पञ्चवृत अष्टदल पद्म चतुरस्र और चतुर्द्वार युक्त यंत्रराज अङ्कित करै। सत् सम्प्रदाय गण इसप्रकार कहते हैं। तथा कालीतन्त्रमेंभी लिखाहै, आदिमें त्रिकोण विन्यस्तकरके उसके बाहर त्रिकोण विन्यस्त करना चाहिये। अनंतर उत्कृष्ट विधानसे तीन त्रिकोण अङ्कित करै। तदनंतर गोलाकार लिखकर अष्टदल लिखना चाहिये। विहित विधान में वृत अङ्कित कर दो नूपुर

स्वतन्त्रेऽपि—

स्वयम्भू कुसुमं कुण्डगोलोत्थं रोचनागुरु । काश्मीरमृगनाभी च शिह्लण्च चन्दनद्वयम् ॥ एष गन्धः समाख्यातः सर्वदा चण्डिका-प्रियः । एतेन गन्धयोगेन योनिचक्रं समालिखेत् । योनिद्वयं ततः कुर्य्यात् कोणषट्कं ततः प्रिये ! ततश्चाष्टदलं भूमिं चतुर्द्वारैः समन्वि-ताम् ॥ एतत्ते कथितं चक्रमत्र पुष्पाञ्जलिं किरेत् ॥

कुमारीकल्पेऽपि—

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत् । बहिस्त्रिकोणमालिख्य कोणषट्कं लिखेद्बहिः ॥ मध्ये तु बैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम् । षट्कोणात् तु बहिर्वृत्तं ततोऽष्टदलकं लिखेत् ॥ बहिर्वृत्तेन संयुक्तं नूपुरेकेण संयुतम् । ज्ञात्वैवं मुक्तिमाप्नोति यन्त्रराजं न संशयः ॥ एतत् तु विलिखेत्ताम्रे कुण्डगोलविलेपिते । स्वयम्भू कुसुमैर्युक्ते कुंकु-मागुरुसेविते ॥

ननु उक्त पञ्चदशकोणं कथमुक्तं स्वतन्त्रादि तन्त्रविरोधात् । न च वाच्यं कालीतंत्रमतमिति तत्रैव पूजायां षट्कोणपदश्रुतेः । तद्यथा ।

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् । विप्रचित्तान्तु संपूज्य बहिः षट्कोणके बुधः ॥

(पृथ्वीपर) लिखे स्वतंत्र में भी इसीप्रकार लिखा है, यथा—स्वयम्भू कुसुम गोरोचन, अगरु काश्मीर (केशर) मृगनाभि- शिहल (सिहलोजय) रक्तचंदन और श्वेतचंदन, इनका ही नाम गन्ध है । यही सर्वदा चण्डिका को प्रिय है । इस गन्ध-योग में ही योनिचक्र लिखना चाहिये । फिर दो योनि लिखकर कोणषट्क पातन करे । अनन्तर अष्टदल और चतुर्द्वार समन्वित भूमि लिखै । तुम्हारे निकट यह चक्र वर्णन किया । इस चक्र में ही पुष्पांजलि विकरण करे । कुमारी कल्प में भी कहा है, प्रथम त्रिकोण अङ्कित करके उसके बाहर त्रिकोण अङ्कित करे । बाहिरी त्रिकोण लिख-कर बाहिरेकोण षटक् संयुक्त करना चाहिये । मध्य में बीज और माया विभूषित बिंदुचक्र लिखकर षट्कोण से बाहिरे अष्टदल और वृत्त संयुक्त करना चाहिये । इस प्रकार बहिर्वृत्त और भूपुरैक समन्वित यंत्रराज जानसकने से निःसंदेह मुक्ति लाभ होती है । स्वयम्भू कुसुम सहित कुंकुम और अगर समन्वित एवं कुण्डगोल विलिप्त ताम्रपात्र में उल्लिखित यंत्रराज लिखना चाहिये । यदि कहो कि यहांपर किस प्रकार से पन्द्रह कोण का उल्लेख किया है । इसमें स्वतंत्रादि के सहित विरोध होता है । तो यह कालीतन्त्र का मत है । इस प्रकार नहीं कहसकते । क्योंकि कालीतन्त्र में ही

इति बहिरुपादानं व्यर्थमेव । अन्तः षट्कोणाभावात् वचनान्तर दर्शनाच्च । तथा कालीतन्त्रे—

पंचशक्तिं समालिख्य अधोवक्त्रां सुलक्षणाम् ॥

कालिकाश्रुतौ च-

त्रिकोणं त्रिकोणं नवकोणं पद्मम् ।

कुलसंभवेऽपि—

त्रिकोणं विन्यसेत् पद्मे पुनश्चापि त्रिकोणकम् । नवकोणं पुनस्तत्र तन्मध्ये स्थापयेत् शिवाम् ॥

तस्मात् षट्कोणमत्र शक्त्यात्मकमिति । ननु एवं त्रिकोण द्वयान्तर्गत भैरवीचक्रवत् नवकोणं मतान्तरं स्यात् नैवं तदा तत्रैव पूजायां महाविरोधः । तद्यथा कुलसंभवे—

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् । विप्रचित्तां न्यसेच्चैव वहिः षट्कोणके बुधः ॥ उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां परात्रिकोणके न्यसेत् नीलां घनां वलाकाञ्च तथैवापरके त्रिके ॥ मात्रां मुद्रां मिता ञ्चव परात्रिकोणके वुधः ॥

एतदुक्तं भवति षट्कोणावरणे अपरात्रिकोणके तयावरणम् तथापरे त्रिकोणत्रयं अपरं त्रयं यजेदित्यस्य अर्थो मवन्मते तु त्रिकोणं नास्त्येव त्रिकोणशब्दस्य केवलं त्रिकोणात्मके शृङ्गाटके शक्तित्वात्

पूजा के समय षट्कोण शब्द प्रयोजित हुआ है । यथा-ज्ञानवान् साधक बाहरके षट्कोण में काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, बिरोधिनी, और विप्रचित्ता की पूजा करके इत्यादि । प्रस्तावित स्थल में बहिस्थ समस्त उपादान व्यर्थ हुआ जाता है। क्योंकि अंतः षट्कोण का अभाव और वचनांतर भी दिखाई देताहै । कुलसम्भव में भी कहाहै त्रिकोण त्रिकोण,नवकोण इत्यादि। पद्ममें त्रिकोण विन्यस्त करके पुनर्वार त्रिकोण अंकित करना चाहिये । पुनर्वार नवकोण पद्म इत्यादि लिखकर तिस में शिवा का स्थापन करै । इसी कारण इस स्थान में षट्कोण शक्त्यात्मक समझना चाहिये यदि यह है, तो दो त्रिकोण के अन्तर्गत भैरवीचक्र की समान नवकोण मतान्तर हुआ जाता है । किन्तु यह नहीं है क्योंकि इस प्रकार होने से पूजा के अन्त में महाविरोध उप-स्थित होता है । यथा-कुलसम्भव में कहा है, बुद्धिमान् साधक वहिः षट्कोण को

न च वाच्यं नवयोनेर्वाह्यकोणाष्टकस्यैकैककोणपदशक्तिरिति । तत्रोपचारपीठानुपपत्तेः समग्रचक्र पूजाभावाच्च । तस्मात् नवयोन्यात्मकमिति भावः वस्तुतस्तुस्वतन्त्रादितंत्रभेदात् षट्कोणांतर्गतत्रिकोणात्मकमपि यन्त्रान्तरं भवति । यतः षट्कोणशब्दस्यपारिभाषिके शक्तिरन्यत्र लक्षणा । नहि कोऽपि दृष्टपरिकल्पनां विहाय अदृष्टं कल्पयति यत् तु कालीतन्त्रे षट्कोणमुक्तं तत् तु तन्मते वे द्वव्यम् । अन्यत्र कल्पने मानाभावात् । न चैकदैवतमन्त्रे यन्त्रद्वयकल्पने विरोध इति वाच्यम् ।

तारातन्त्रे-

एकदैवतमन्त्रस्य विविधयन्त्रदर्शनात् । एतत् तु तस्याः पूजायामग्रे लिखिष्यामः ।

अथ स्वर्णादिसिंहासने पुरतो यथोक्तयन्त्रं संस्थाप्य तदुपरि पूजयेत् यथा-ह्रीं आधारशक्तये नमः ओं प्रकृत्यै नमः । ओं कूर्माय नमः । ओं अनंताय नमः । लं पृथिव्यै नमः । ओं सुधाम्बुधये । ओं मणिद्वीपाय । ओं चिन्तामणि गृहाय । ओं श्मशानाय । ओं पारिजाताय । ओं रत्नवेदिकायै । ओं मणिपीठाय । दिक्षु-ओं नमो देवेभ्यः परितः-ओं वहुमांसास्थिमोदमानाशिवाभ्यः । ओं शवमुण्डेभ्यः । पूर्वादिचतुर्दिक्षु-ओं धर्माय ओं ज्ञानाय ओं वैराग्याय ओं ऐश्वर्याय । वह्न्यादि दिक्षु-ओं अधर्माय ओं अज्ञानाय ओं अवैराग्याय ओं अनैश्वर्याय । मध्ये-ओं अनंताय ओं पद्माय अं अर्कमण्डलाय उं सोममण्डलाय मं वह्निमण्डलाय सं सत्वाय रं रजसे तं तमसे ओं आत्मने अं अंतरात्मने पं परमात्मने ह्रीं ज्ञानात्मने । पत्रे दले पूर्वादितः

काली, कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला, विरोधिनी और विप्रचित्ता को न्यस्त करके अपर त्रिकोण में उग्रा, उग्रप्रभा और दीप्ता को एवं अन्यतर त्रिकोण में नीला, घना, वलाका और अपर त्रिकोण में मात्रा, मुद्रा और मिता को विन्यस्त करे । तो कहा जायगा कि षट् कोण के आवरणांत में अपर त्रिकोण तीन आवरणमात्र हैं । जो हो, यहाँ नव योन्यात्मक समझना चाहिये । वस्तुगत्या, स्वतंत्रादि तंत्रभेद में इस प्रकार कहा है षट् कोण के अन्तर्गत त्रिकोणात्मक यंत्रान्तर भी होसकता है । क्योंकि षट्कोण शब्द का अर्थ अपरिभाषिक-अर्थ शक्ति है । अन्यत्र लक्षणा समझनी चाहिये । कोई व्यक्ति

ओं इच्छायै ओं ज्ञानायै ओं क्रियायै ओं कामिन्यै ओं कामदायै ओं रत्यै ओं रतिप्रियायै ओं आनन्दायै । कर्णिकायां-ओं मनोन्मन्यै । मध्ये-ऐं परायै ऐं अपरायै ऐं परापरायै हसौंः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः इति पीठपूजां कुर्य्यात्। नमोऽन्तेन सर्वत्र। ततः कलसस्थापनं कुर्य्यात्। तत्र लक्षणमाह तन्त्रान्तरे

कलाकलां गृहीत्वा तु देवानां विश्वकर्मणा। निर्मितोऽयं सुरैर्यस्मात् कलसस्तेन उच्यते ॥

पद्मपादाचार्य्यास्तु कला सेवते इति कलसः।

सौवर्णं राजतं वापि मार्त्तिक्यं वा यथं दितम्। क्षालयेदस्त्रमंत्रेण कुम्भं सम्यक् सुरेश्वरि ! इति स्वतंत्रे।

अथ प्रयोगः स्ववामे विंदुषट्कोणचतुरस्रं कृत्वा सामान्योदकेनाभ्युदय तत्र आधारशक्तये नमःइति पूजयेत् ततो नम इति क्षालिताधारं तत्र निधाय मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नम इति संपूज्य

भी दृष्टपरिकल्पना त्याग करके अदृष्टकल्पना में प्रवृत्त नहीं होता । कालीतंत्र में जो षट्कोण शब्द लिखागया है, वह उसका ही मत समझना चाहिये। अन्यत्र कल्पना करने से मानाभाव संघटित होता है । एक दैवत मंत्र में दो यंत्र कल्पना करने से विरोध होता है यह भी नहीं कहसकते । क्योंकि तारा तंत्र में एक दैवतयंत्र के अनेक यँत्र लिखेगये हैं, यह विषय उसकी पूजा में पीछे लिखा जायगा ॥

अनन्तर सुवर्णादि सिंहासन के पुराभाग में यथाशक्ति यंत्र स्थापन करके उसके ऊपर पूजा करनी चाहिये। यथा—ह्रीं आधार शक्ति को नमस्कार है। ओं प्रकृति को नमस्कार है ओं कूर्मको नमस्कारहै इत्यादि विधानसे पीठपूजा करनी चाहिये। सर्वत्र ही नमस्कारशब्दप्रयोग करना चाहिये। फिर कलस स्थापन करै। तंत्रान्तर में उसका लक्षण निर्देश कियाहै यथा--विश्वकर्मा देवता को कला ग्रहण करके यह निर्माण किया है इसीलिये इसका नाम कलस हुआ है। पद्मपादाचार्य के मत में कला सेवन करती है, इस अर्थ में कलश है। सुवर्ण, चाँदी अथवा मृतिका का निर्मित कलस यथोक्त विधान सेग्रहण करके "हे सुरेश्वरि ! अस्त्र मंत्र में प्रक्षालित करै ॥

प्रयोग यथा—अपने वाम भाग में विन्दु षट्कोण चतुरस्र (चारों ओर लिखकर सामान्य जल द्वारा अभ्युक्षित पूर्वक उसमें आधार शक्तिको नमस्कार है इस प्रकार

फड़िति चालितघटं रक्तवस्त्रमाल्यादिभिरलंकृतं ओं इति देवीबुद्ध्या मण्डलोपरि निधाय अर्कमंडलाय द्वादशकलात्मने नम इति संपूज्य मूलमुच्चरन् कारणेन तं संपूज्य द्रव्यैः उं सोममंडलाय षोड़शकलात्मने नम इति दत्वा फडिति दर्भैर्द्रव्यं सन्ताड्य हुं इत्यवगुण्ठ्य मूलेन वीक्ष्य नमः इत्यभ्युक्षणं कृत्वा मूलेन गन्धमादाय ओमिति मंत्रेण कुम्भे पुष्पं दत्वा शापमोचनं कुर्य्यात्। तदुक्तं स्वतंत्रे—

ततश्च कारणं द्रव्यं समानीय घटेस्थितम्। वेष्टितं रक्तवस्त्रेण रक्तमाल्येन भूषितम्॥वामभागे महेशानि! मंडलं चतुरस्रकम्। ततः संस्थापयेद्भक्त्या देवीबुद्ध्या वरानने॥
मंडले कलसे द्रव्ये वन्ह्यर्कशशिमंडलम्॥ पूजयेदित्यर्थः।

भावचूड़ामणौ—

स्ववामभागे षट्कोण तन्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रकम्। लिखित्वा तत्र कुम्भं वै सौवर्णं राजतञ्च वा॥ ताम्रं भूमिमयं वापि यद्वा लौहविवर्जितम्

कहकर पूजा करै। अनन्तर नमः शब्द प्रयोग सहित लक्षित आधार को तिस में स्थापन करके "मं" इत्यादि मंत्र से विशेष प्रकार पूजा करनी चाहिये। इसके उपरांत "फट्" शब्द से प्रक्षालित घट को रक्त वस्त्र और मालादि द्वारा अलंकृत करके ओं इति मंत्र से देवी बुद्धिमें मंडल के ऊपर स्थापन और "अर्कमण्डलाय" इत्यादि मंत्र से विशिष्ट विधान द्वारा पूजा करै, फिर मूलोच्चारण सहित कारण की सहायता से पूजा करके "उं" इत्यादि मंत्र से दान, फट् शब्द से दर्भ द्वारा द्रव्यसँताडन, हुं शब्द से अवगुण्ठन (परदा) मूल मँत्र से वीक्षण "नमः" शब्द से अभ्युक्षण, और मूल की सहायता से गँध ग्रहण पूर्वक ओं इति मँत्र से कुम्भ में पुष्प दान करने के पीछे शाप मोचन करै स्वतँत्र में कहा है, यथा—अनन्तर कारण और द्रव्य आनयन पूर्वक घट को रक्तवस्त्र में वेष्ठित और रक्त माल्य में भूषित करके बामभाग के चतुरस्र मण्डल में देवी बुद्धिसे भक्ति सहित स्थापन करना चाहिये। मण्डल कलस और द्रव्य इन सब में अग्नि सूर्य और चन्द्र मण्डल की पूजा करै॥

भावचूडामणि में कहा है, अपने वामभाग में षट्कोण में और तिस के मध्य ब्रह्मरन्ध्र लिखकर उसमें सुवर्णमय, रजतमय, ताम्रमय अथवा मृत्तिकामय कुम्भ (घट)

तन्त्रान्तरे—

आधारे स्थापयेन्मन्त्री सौवर्णं वाथ राजतम् । कांस्यजं मृण्मयं वापि घटमव्रणशालिनम् ॥ सौवर्णं भोगदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदं स्मृतम् । कांस्यं कान्तिकरञ्चैव मृण्मयं पुष्टिदं भवेत् ॥

अथ काव्यशापविमोचनं कुर्यात् तदुक्तम्—

कुमारीतन्त्रे—

अन्यच्च शृणु देवेशि ! यथा पानादिकर्माणि । दोषा न जायते देवि ! तान् वै मन्त्रान् शृणुष्व मे ॥ एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् । कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥ सूर्य्यमण्डलसम्भूते ! वरुणमंडलसम्भवे ! अमावीजमये देवि ! शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ॥ देवानां प्रणवो वीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि । तेन सत्येन देवेशि! ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ॥ एवं मन्त्रत्रयेणैव अभिमन्त्र्य सुरां शुभाम् । प्रदद्यात् कालिकायै च ततो नैवेद्यमुत्सृजेत् ॥

स्थापन करै । लोह कुंभ का त्याग करना चाहिये । तंत्रान्तर में कहा है, साधक आधार में सुवर्ण रजत, (चांदी) कांस्य (कांसी) मृत्तिका इन सबके अन्यतर निर्मित व्रणहीन कलसस्थापन करै । सुवर्ण कुम्भस्थापन में भोग लाभ होता है । रजतकुम्भ से मोक्ष होती है । कांसी के कुम्भ से कांति लाभ होती है । और मृत्तिका कुम्भ से पुष्टि विहित होती है इसके उपरान्त शुक्र शापविमोचन करना चाहिये । कुमारीतत्र में कहा है यथा–हे देवेशि ! इस समय जिस में पानादि करके दोषोत्पत्ति नहीं हो सकी वही सब मंत्र कहता हूं श्रवण करो । परब्रह्म अद्वितीय स्वरूप और स्थूल सूक्ष्ममय हैं । उनका किसी काल में नाश वा ध्वन्स नहीं होता । मैं उनकी सहायता से ही तुम्हारी कच जनित (कच को मारने) की ब्रह्महत्या दूर करूंगा । हे देवि ? तुमें सूर्य्य मण्डल से उत्पन्न और वरुण मण्डल से संभूत हुई हो । तुम्हीं अमा वीजमयी हो । शुक्र शाप से विमुक्त होओ । प्रणव यदि देवतागणों का ब्रह्मानन्दमय वीज है तो उसी सत्य वल से ब्रह्महत्या दूर होवे । इस प्रकार मंत्रत्रय की सहायता से सुरा का अभिमंत्रण करके वह देवी कालिका को प्रदर्शन करै । फिर नैवेद्य भोजन करना चाहिये । द्रव्य के ऊपर इस प्रकार मंत्रत्रय जप करै । अनन्तर ओं रां इत्यादि ब्रह्मशाप, विमो-

इति मन्त्रत्रयं द्रव्योपरि त्रिर्जपेत्। आं रां रीं रूं रैं रौं रः ब्रह्मशापविमोचनं द्रव्योपरि दशधा जपेत्। ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः सुराकृष्णशापं विमोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा इति कृष्णशापविमोचनं दशधा जपेत्।

यथोत्तरतन्त्रे—

हंसः शुचि सद्वसुरन्तरिक्षं सद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् नृषद्वर दृशत् सद्व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्। इति ऋचा वारत्रयं द्रव्यमभिमन्त्र्य तदुपरि आनन्दभैरवीं ध्यायेत्।

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्। अष्टादशभुजैर्युक्तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥ अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम्। वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम्॥ कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम्। पाशांकुशधरं देवं गदामूसलधारिणम्॥ खड्गखेटकपट्टीशं मुद्गरं शूलदन्तकम्। विचित्रखेटकं दण्डं वरदाभयपाणिनम्॥ लोहितं देवदेवेशं भावयेत् साधकोत्तमः॥

एवं ध्यात्वा हस क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवाय वषट् इत्यानन्दभैरवं त्रिः संपूज्य आनन्दभैरवीं ध्यायेत् यथा—

भावयेच्च सुधां देवीं चन्द्रकान्त्याननप्रभाम्। हेमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम्॥ अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम्। प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीम्॥

चन मंत्र द्रव्य के ऊपर दशवार जपना चाहिये। तदुपरांत 'ह्रीं श्रीं" इत्यादि कृष्ण शाप विमोचन मंत्र दशबार जप करै। जैसा कि उत्तर तंत्र में कहा है 'हसः शुचि" इत्यादि ऋचाद्वारा तीनबार द्रव्य का अभिमंत्रण करके उसके उपर आनंद और भैरव का ध्यानकरै। यथा जो करोड सूर्यकी समान प्रभायुक्त और करोड चंद्रकी समान अतिशय शीतल हैं जो अष्टादश (अठारह) भुजायुक्त, पंचवक्त्र और त्रिलोचन हैं, जो अमृतसागर में विराजमान और ब्रह्मरूप पद्म के ऊपर अवस्थिति करते हैं, जो वृषभवाहन, नीलकंठ और सब प्रकार के भूषणों से भूषित हैं, जो कपाल और खट्वाँग धारण एवं घण्टा और डमरू बजाते हैं, जो पाश अंकुश' गदा, मूसल, खड्ग, खेटक, पट्टिश, मुद्गर, शूल, विचित्रखेटक, दण्ड, वर, अभय यह सब धारण करते हैं, उन्ही लोहित वर्ण देवदेवेशकी भावना करै। इस प्रकार ध्यान करके तीनबार ह स इत्यादि मंगलोच्चारण सहित आनन्द भैरव की भली भाँति पूजा करै। फिर आनन्द

एवं ध्यात्वा ह स च म ल व र षीं सुधादेव्यै वौषट् इति आनंद भैरवीं संपूज्य द्रव्योपरि त्रिकोणचक्रं विलिख्य तत्र त्रिपंक्तिक्रमेण आदि १६ कादि १६ थादि १६ हं लं चं मध्यलसितं विलिख्य शिव-शक्त्योः समायोगाद्द्रव्यमध्ये अमृतत्वं विचिन्त्य धेनुमुद्रया अमृ-तीकृत्य वं इति वरुणवीजं मूलमन्त्रं चाष्टधा तदुपरि जप्त्वा देवता-मयं भावयेदिति द्रव्यशुद्धिः। तदुक्तं स्वतंत्रे –

ततश्च भावयेद्द्रव्ये मध्येऽलक्तनिभं प्रिये!। अकथादिभिस्त्रि-पंक्त्या तु हलक्षं मध्यमण्डितम् ॥ पूर्वोक्तयोनिमुद्रायां शिवशक्त्योः समागमम्। अमृतं चिंतयेद्द्रव्यमष्टधाप्यमृतं जपेत् ॥ अष्टधा मूल-मन्त्रञ्च जपेद्धृत्वा घटं ततः। एतत्तु कारणं देवि! सुरसङ्घनिषेवितम् ॥ अतएव तस्य नाम सुरेति भुवनत्रये। अस्य गन्धः केशवस्तु तेन गंधेन कौलिकः। सुरया पूजयेत् देवीं दक्षिणां कालिकां शुभाम्। ततः शंखं वीरपात्रं स्थापयेन्मध्यभागतः ॥ श्रीविद्योक्तक्रमेणैव ततः पूजां समारभेत् ॥

भैरवका ध्यान करना चाहिये। यथा-सुधा देवी की भावना करे उसके आनन मुख) की प्रभा करोड़ २ चंद्रमाकी समान है। उसका वर्ण हेम और कुन्द की समान धवल भ वसम्पन्न है। वह पञ्चवक्त्रा, त्रिलोचना, अष्टादशभुजा युक्त, सर्वानन्द करने में उद्यत, हास्यमुखी विशालाक्षी और देव देवेशकी सम्मुखी है। इस प्रकार ध्यान और 'ह, स' आदि मत्र मे विशेष प्रकार से पूजा करके द्रव्य के ऊपर त्रिकोण चक्र अंकित और उसमें त्रिपंक्ति क्रमसे 'अ' से विसर्ग पर्यंत सोलह स्वर, क स त पर्यंत १६ और थ, से स पर्यन्त सोलह व्यंजन वर्ण स्थापन पूर्वक उसमें 'हं लं, और क्षं लिखना चाहये फिर शिव और शक्ति के समायोग द्रव्यमें अमृतत्व की चिंताकर धेनुमुद्रा द्वारा अमृती करणानन्तर 'वं, इति वरुण बीजके सहित मूलमंत्र आठवार उसके ऊपर जपकर देवता की भावना करे। इसका नाम ही द्रव्य शुद्धि है। स्वतंत्र में यही कहा है। यथा-

हे प्रिये! अनन्तर द्रव्य में अलक्त (ल.ख) की समान प्रभायुक्त त्रिपंक्ति क्रम में 'अ, क, और थादि द्वारा अलंकृत मध्य मंडित "ह, ल, क्ष की भावना करे और पूर्वोक्त योनिमुद्रा में शिव और शक्ति के समागम और द्रव्यको अमृतरूप में चिन्ता करके आठवार उसी अमृतका जप करना चाहिये। संगही संग आठवार मूलमंत्रका जपकरै हेदेवि! संपूर्ण देवतागण इसही कारण इसकी सेवा करते हैं इसीलिये इसका नाम तीनों भुवनों में सुरा कहकर विख्यात हुआ है। स्वयं केशव इसकी गंध है अनन्तर मध्य भाग में शंख और वीरपात्र स्थापन करके श्री विद्या कथित क्रमानुसार पूजा करनी

समयाचारेऽपि—

सामान्यार्घ्यं ततः कृत्वा पयसा साधकोत्तमः । तज्जलैर्मण्डलं कृत्वा पात्राणि स्थापयेदथ ॥

कुमारीतन्त्रेऽपि—

ततोऽर्घ्यं कारयेन्मन्त्री तया नार्य्या सुवेशया । अर्घ्यं व्यमर्घ्य पात्रे निःक्षिपेद्यत्नतः सुधीः । कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं स्वयम्भू कुसुमं तथा । नाधर्मो जायते देवि ! महामंत्रस्य साधने ॥

मुंडमालायाञ्च—

रक्तचन्दनविल्वादिजवाकुसुम वर्वरैः । अर्घ्यं दत्वा महेशानि ! सर्वकामार्थसिद्धये ॥ सुरया चार्घ्यदानेन योगिनीनां भवेत् प्रियः । महायोगी भवेद्देवि ! पीठप्रक्षालितैर्जलैः ॥ स्वयम्भू कुसुमे दत्ते भवेत् षट्कर्म भाजनः।सुशीतलजलैर्वापि कस्तूरीकुंकुमान्वितैः। कुण्डगोलोत्थबीजैर्वा सर्वासिद्धीश्वरो भवेत् ॥

जवादिना कृतार्घ्ये तु पूर्वशोधितद्रव्यं किञ्चित् क्षिपेत् ॥

तदुक्तं श्रीक्रमे—

अर्घ्यविधौ – पूर्वन्तु शोधितं द्रव्यं गुसे नैव तु संक्षिपेत् ।

अथवा ताराप्रकरणे च —

शंखस्थितं तोयपूर्णं जवापुष्पञ्च वर्वरम् । चंदनं चार्ककुसुमं शुद्धाञ्चैवापराजितांम् ॥ आदानञ्च विशेषेण नित्यपूजाक्रमः स्मृतः ॥

अथात्मयन्त्रयोर्मध्ये –

चाहिये । समयाचार में भी कहा है. अनन्तर जल द्वारा सामान्य अर्घ्य प्रदान करके साधकोत्तम उस जलमें मंडल विधान पूर्वक सपूणपात्र स्थापन करै कुमारीतंत्र में भी कहा है । अनन्तर साधक उस सुन्दर वेशधारिणी रमणी द्वारा अर्घ्य विहित करके यत्न पूर्वक अर्घ्यपात्र में अर्घ्य स्थापन करै । हे देवि महा मंत्र का साधन करने से कभी अधर्म संघटित नहीं होता मुण्डमाला में भी कहा है, हे महेशानी ! रक्तचँदन, विल्व, और जवादि कुसुम का अर्घ्य दान करने से सब प्रकार की कामना और अभीष्ट सिद्ध होता है । सुरा अर्घ्य स्वरूपदान करने से साधक योगिनी गणों का प्रिय होता है । हे देवि ! पीठ प्रक्षालित जल में महायोगी होसकता है । स्वयम्भू कुसुमदान करने से षट्कर्म भाजन होता है । कस्तूरी और कुंकुमांकित सुशीतल जल और कुंड गोल

ईंकारगर्भत्रिकोणकवृत्तषट्कोणचतुरस्रं विलिख्य चतुरस्रे पूं पूर्णशैलाय नमः । उं उड्डियमानपीठाय नमः जां जालन्धरपीठाय नमः कां कामरूपपीठाय नमः इति संपूज्य षट्कोणे षडङ्गानि मूलखण्डत्रयेण त्रिकोणाग्रं दक्षोत्तरं संपूज्य मध्ये आधारशक्तिं संपूज्य त्रिकोणवृत्तषट्कोणभूषिताधारं तत्र संस्थाप्य नम इति सामान्यार्घ्योदकेनाभ्युक्ष्य तत्र वह्नेर्दशकलाः पूजयेत् । यं धूमार्चिषे नमः । वं उमायै नमः । लं ज्वालिन्यै नमः । वं ज्वालिन्यै नमः । शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः । षं सुश्रियै नमः । सं स्वरूपायै नमः । हं कपिलायै नमः । लं हव्यवहायै नमः । क्षं कव्यवहायै नमः इति संपूज्य मं वन्हिमण्डलायै दशकलात्मने अर्घ्यपात्रासनाय नमः । इति संपूज्य षट्कोण षडङ्गमध्ये व्यस्तमूलेन देवीम् इष्ट्वा कपालादिपात्रं फडितिक्षालितं तत्राधारोपरि संस्थाप्य सूर्य्यमण्डलं तत्र यजेद् यथा कं भं तपिन्यै खं बं तापिन्यै गं फं धूम्रायै घं पं मरीच्यै ङं नं ज्वालिन्यै चं धं रुच्यै छं दं सुषुम्नायै जं थं भोगदायै झं तं विश्वायै ञं णं बोधिन्यै टं ढं धारिण्यै ठं डं क्षमायै नमोऽन्तेन संपूज्य अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने अर्घ्य

समुद्धृत वीज प्रदान करने से सर्वसिद्धीश्वरत्व लाभ होता है । जवादि कुसुम से अर्घ्य विधान करके पूर्वशोधित द्रव्य किंचित् निक्षेप करै । श्रीक्रम में अर्घ्यविधि में यही कहा है । यथा, पूर्वशोधित द्रव्य गुप्तानुसारही निक्षेप करै ॥ अथवा तारा प्रकरण में कहा है । यथा-शँखस्थित जलपूर्ण जवा पुष्प, बर्वर चन्दन, अर्ककुसुम, विशुद्ध अपराजिता [विष्णुकाँता] यह सम्पूर्ण द्रव्य नित्य पूजा में प्रदान करै ॥

अनन्तर आत्मयंत्र में ईंकार गर्भित त्रिकोणक वृत्त षट्कोण और चतुष्कोण लिख कर उस चतुष्कोण में "पूँ पूर्ण शैलाय, इत्यादि कहकर विशिष्ट विधान से पूजाकरनी चाहिये । फिर मूलखंडत्रयानुसार षडँग त्रिकोणाग्र और मध्य में आधारशक्ति की पूजा करके उसमें त्रिकोणवृत्त और षट्कोण भूषित आधार स्थापनानन्तर "नमः" शब्द प्रयोग सहित सामान्य अर्ध्य सलिल से अभ्युक्षण करके उसमें अग्निके दश कला की पूजा करै । यथा-"यंधूमार्चिषे, इत्यादि फिर षट्कोण में षडँग और मध्य में देवीकी पूजाकरके " फट् " शब्द से प्रक्षालित कपालादि पात्र उस आधार के ऊपर स्थापन पूर्वक उसमें सूर्यमण्डलकी पूजा करै । यथा-" कं भं तपिन्यै,, इत्यादि विधान से पूजा करके पात्र में त्रिकोणवृत्त और षट्कोण लिखकर समस्त और व्यस्त मंत्र से

पात्राय नमः । इतीष्ट्वा त्रिकोणवृत्तषट्कोणं पात्रमध्ये विलिख्य समस्तव्यस्तमन्त्रेण त्रिकोणं संपूज्य वमिति वरुणबीजं मूलमंत्र विलोम मातृकाञ्च पठित्वा घटस्थकारणामृतेन त्रिभागमध्यं संपूर्य्य शेषं जलेन पूरयेत् । ततो दूर्वाक्षतरक्तचन्दनजवार्क श्वेतापराजिताकरवीर विल्ववर्वरीकुन्दसुगन्धिद्रव्याणि शुद्धि मीनमुद्राकुण्डगोलादिकञ्च संशोध्य तत्र निःक्षिप्य सोममंडलं पूजयेद्यथा—अं अमृतायै नमः आं मानदायै नमः इं पुषायै नमः ईं तुष्ट्यै नम उं पुष्ट्यै नमः ऊं रत्यै नमः ऋं धृत्यै नमः ॠं शशिन्यै नमः लृं चन्द्रिकायै नमः लॄं कान्त्यै नमः एं ज्योत्स्नायै नमः ऐं श्रियै नमः ओं प्रीत्यै नमः औं अङ्गदायै नमः अं पूर्णायै नमः अः पूर्णामृतायै नमः उं सोममंडलाय षोड़शकलात्मने अर्घ्यपात्रामृताय नमः इति संपूज्य पूर्ववद्यन्त्रं कारणैः लिखित्वा त्रिकोणत्रिरेखायां अं १६ कं १६ थं १६ मध्ये हं लं क्षं विलिख्य मूल खण्डत्रयेण त्रिकोणमिष्ट्वा षट्कोणे षड़ङ्गानि संपूज्य ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

इत्येनयांकुशमुद्रया सूर्य्यमडलात्तीर्थमावाह्य आनन्दभैरवभैरव्यौ पूर्वोक्तक्रमेण संपूज्य पूर्वादिक्रमेण पञ्चरत्नं यजेद्यथा—ग्लुं

त्रिकोण की पूजा एवं वरुणबीज, मूलमंत्र और विलोम-मातृकापाठ करके घटस्थ कारणामृत द्वारा त्रिभाग्य अर्घ्य संपूरण और अवशिष्ट जल द्वारा पूर्ण करना चाहिये अनन्तर दूर्वा, अक्षत रक्तचंदन जवा, अर्क पुष्प, श्वेतअपराजिता, करवीर, विल्व, वर्वरी, कुन्द और संपूर्ण सुगंधि द्रव्यशुद्धि और मीनमुद्रा संशोधन और उस में निक्षेप करके सोम मण्डल की पूजा करनी चाहिये । यथा—"अं अमृताय,, इत्यादि अनन्तर पूर्वकी समान कारण में यंत्र लिखकर त्रिकोण त्रिरेखा में यथाक्रम से अं १६, कं १६ और थं १६ और मध्य में ह ल क्ष स्थापित करके तीन मूल खंड में त्रिकोण की पूजा करनी चाहिये । अनन्तर षडंग पूजा करके गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु और कावेरी इनके जल में सन्निधि कर अंकुश मुद्रा की सहायता से सूर्यमंडल से तीर्थ आवाहन और पूर्वोक्त विधान से आनंद भैरव और भैरवी की

गगनमंडलेभ्यः स्लुं स्वर्गरत्नेभ्यः प्लुं पातालरत्नेभ्यः म्लुं मर्त्यरत्नेभ्यः न्लुं नागरत्नेभ्यः इति नमोऽन्तेन पूजयेत् । अथैषां भेदोऽपि लिख्यते ।

तदुक्तं यामले–

मांसन्तु त्रिविधं प्रोक्तं जलभूचरखेचरम् । गोधा चैवाश्वमहिषवराहाजमृगोद्भवम् ॥ महामांसाष्टकं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारणम् ॥

मांसाभावे तदनुकल्पं निक्षिपेत् । तदुक्तं समयाचारे–

लवणार्द्रकपिण्याकगोधूममांसपञ्चमम् । लशुनञ्च महादेवि ! मांसप्रतिनिधौ स्मृतम् ॥ मत्स्यन्तु त्रिविधं प्रोक्तं उत्तमाधममध्यमम् । उत्तमं त्रिविधं देवि ! शालपाठीनरोहितैः ॥ प्रवीणं कण्टकैर्हीनं तैलाक्तं स्वादुसंयुतम् । देव्याः प्रीतिकरंचैव मध्यमं स्याच्चतुर्विधम् ॥ क्षुद्राणि तानि सर्वाणि अधमान्याहुरुत्तमाः ॥

मुद्रा द्विविधा यथा कुलार्णवे

व्रैहेयं मण्डलाकारं चन्द्रविम्बनिभं शुभम् । चारुपक्कं मनोहारि

पूजाकर पूर्वादि क्रम से पंचरत्न का यजन करै । यथा–"ग्लु" इत्यादि । अब इसका भेद लिखते हैं ।

यथा यामलमें कहा है यथा–जलचर,भूचर और खेचर भेदसे मांस तीन प्रकारका है। गोधा, अश्व, महिष, बराह, अज, मृग, गो, नर यह आठ महा माँस ही देवता को प्रसन्न करते हैं । ऐसा कहा है । मांस के अभाव में उनका (उसकी सदृश) अनुकल्प निक्षेप करै । समयाचार में यह कहा है । यथा–लवण, आर्द्रक, (अदरख) पिन्याक, गोधूम, मांस, लहसन यह कई द्रव्य मांस के परिवर्तन में प्रदान कियेजाते हैं । मत्स्य त्रिविध कहे हैं । यथा–उत्तम, अधम और मध्यम । उत्तम अन्य तीन प्रकार है । यथा शालीन, पाठीन और रोहित । इनमें जो प्रवीण, कंटकरहित तैलाक्त और स्वादु है वही देवी का प्रीतिजनक है मध्यम भी चार प्रकार का है और संपूर्ण क्षुद्र जातीय मत्स्य अधमश्रेणी में परिगणित हैं ॥

मुद्रा दो प्रकार की हैं । यथा—कुलार्णवमें कहा है । जो व्रीहि (जौ,से उत्पन्न हुई हैं और जो मण्डलाकार और चन्द्र बिम्बकी समान चारुकर शोभित मनोहारिणी और

शर्कराद्यैः प्रपूरितम् ॥ पूजाकाले देवताया मुद्रैषा परिकीर्त्तिता ॥

यामलेऽपि–

भृष्टधान्यादिकं यद्यच्चर्वणीयं च चर्वयेत् । तेषां संज्ञा कृता मुद्रा महामोद-वर्द्धिनी ॥

कुलकुसुमभेदं त्वग्रे लिखिष्यामः । अथैषां शुद्धिर्लिख्यते । तदुक्तं भैरवतन्त्रे–

ओं प्रतद्विष्णुस्तरते वीर्य्येण मृगोनभीमः कुचरेगिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वा ॥

अनया मांसमभिमन्त्र्य ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकामिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

इत्यनया मत्स्यं संशोध्य । ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदं इति ऋचा मुद्रामभिमन्त्र्य ।

ओं विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंषतु । आसिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ गर्भं धेहि सिनीवालि ! गर्भं धेहि सरस्वति ! गर्भं ते आश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥

प्रुं क्लुं म्लुं क्लुं स्वाहा अमृते अमृतोद्भवे ! अमृतवर्षिणि ! अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा । इति कुण्डोद्भवादिकमभिमंत्र्य सर्वं

शर्करादि परिपूरित है. देवता के पूजा काल में यही मुद्रा कही गई है । यामल में भी कहा है । भृष्ट धान्यादि जो कुछ चर्वणीय है, उसका नाम मुद्रा रक्खा गया है। क्योंकि तिसके द्वारा महामोद बर्द्धित होता है इसके उपरांत कुछ कुसुमभेद लिखा जायगा, इस समय उसकी शुद्धि लिखीजाती है । भैरवतंत्र में कहा है "ओं प्रतद्विष्णु' इत्यादि कहकर मांस का अभिमंत्रण करके "त्र्यम्बकं यजामहे,, इत्यादि पदोच्चारण सहित मत्स्य का संशोधन करै । फिर 'ओं तद्विष्णोः,, इत्यादि कहकर मुद्राका और " ओं विष्णुर्योनि ,, इत्यादि के प्रयोग सहित कुण्डोद्भवादि का अभिमंत्रण करके सबका अवगुण्ठन (परदा) और धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण-

हुमित्यवगुण्ठ्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य तालत्रयं दिग्बन्धनं च कृत्वा सर्वेषामुपरि मूलमन्त्रं सप्तधा जपेत् । इति मांसादि शोधनम् ।

ततः ऐं ह्रीं सौं ब्रह्मरससम्भूतमशेषरससम्भवम् । आपूरितं महापात्रं पीयूषरससंयुतम् ॥ अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि । स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेहि कुलरूपिणि । अकुलस्थामृताकारे शुद्ध-ज्ञानकरे धरे ॥ अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि । तद्रूपेणैकरस्यञ्च कृत्वा ह्येतत्स्वरूपिणी ॥ भूत्वा परामृताकारं मयि चित्स्फुरणं कुरु ॥

एभिर्मन्त्रैरर्घ्यमभिमन्त्र्य मध्ये कामकलां विलिख्य तत्र इष्ट-देवतामावाह्य तालत्रयं दशदिग्बंधनं च कृत्वा हुमित्यवगुण्ठनमुद्रया अवगुण्ठ्य वमिति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य योनिमुद्रां प्रदर्श्य हंसौं नम इतोऽर्च्य्वा शंखमुद्रां प्रदर्श्य षडङ्गेन सकलीकृत्य मत्स्यमुद्रया आच्छाद्य मूलमन्त्रं तदुपरि दशधा जप्त्वा देवतारूपमर्घ्यं भावयेत् ततः—

पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा धूपदीपौ प्रदर्शयेत् ।

इति संक्षिप्तार्घ्यसाधनम् ।

सम्पूर्णप्रकारस्तु मत्कृतायां तत्त्वानन्दतरङ्गिण्याम् अनुसन्धेयः । पूजासमाप्तिं यावत् तावदर्घ्यं न चालयेत् ॥

नन्तर तीनताल प्रदान सहित दिग्बंधन और फिर सब के ऊपर सातबार मूलमन्त्र का जप करना चाहिये । इति मांसादि शोधनम् ॥

अनन्तर " ऐं ह्रीं ,, इत्यादि मन्त्र परम्परा से अर्घ्य का अभिमन्त्रण और मध्य में कामकला लिख; उसमें इष्ट देवता का आवाहन और तीन ताल सहित दश दिग्बंधन कर के अवगुण्ठन और धेनुमुद्रा में अमृतीकरण करै । फिर योनिमुद्रा प्रदर्शन सहित " हंसौनमः ,, कह पूजा कर, शंखमुद्रा प्रदर्शन और षडङ्ग की सहायता से सफली-करण करै । फिर मत्स्यमुद्रा से आच्छादन और तिसके ऊपर दशबार मूलमंत्र जपकर देवता रूप में अर्घ्य की भावना करनी चाहिये अनन्तर तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करके धूप और दीप प्रदर्शन करै । इसका नाम संक्षिप्त अर्घ्यसाधन है । सब प्रकार तत्वा-नन्द तरंगिणी में अनुसंधान करै ।

अवगुण्ठन मुद्रा का प्रकार यथा—ज्ञानार्णवे-सव्य हाथ की मुट्ठी बांधकर तर्जनी को लम्ब भाव में अधोमुख कर भ्रामित (घुमाना) करने से अवगुण्ठन मुद्रा

अथ अवगुण्ठनमुद्रा यथाज्ञानार्णवे—

सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी। अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता सती ॥ तदुक्तं तत्रैव—

मध्यमे गुटिकाकारे तर्जन्युपरि संस्थिते । अनामिकामध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके ॥ सर्वा एकत्र संयोज्य अंगुष्टपरिपीड़िताः । योनिमुद्रा समाख्याता त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।

शंखमुद्रा यथा तन्त्रान्तरे।

वाममुष्ट्यन्तरेऽङ्गुष्ठं नियोज्य सरलांगुलीः । दक्षिणस्य करस्यैव वामांगुष्ठेन संस्पृशेत् ॥ शंखमुद्रेयमाख्याता मन्त्रविद्भिरनुत्तमा। देवताङ्गे षडङ्गञ्च सकलीकरणं भवेत् । दक्षपाणि पृष्ठदेशे वामपाणितलं क्षिपेत् । अंगुष्ठौ चालयेत् सम्यङ्मुद्रेयं मत्स्यरूपिणी ॥ ततो देव्या अर्घ्यं गृहीत्वा ॥

घटश्रीपात्रयोर्मध्ये पात्रे च स्थापयेत्ततः ।

घटसमीपे गुरुपात्रं ततो भोगपात्रं ततः शक्तिपात्रं योगिनी पात्रं वीरपात्रं वलिपात्रं पाद्याचमनीयपात्राणि सामान्यार्घ्यैः व्युत्क्रमेण स्थापयेत् । ततः शुद्धिसहितकारणेन तत्त्वमुद्रया श्रीगुरुपादुकां स्मरन् तत्पात्रामृतेन श्रीअमुकानन्दनाथ गुरुपादुकां तर्पयामि, नमः इति त्रिःसकृद्वा मूर्ध्नि सन्तर्प्य एवं परमगुरु-परापरगुरु परमेष्टिगुरूनपि

होती है। उसी ज्ञानार्णव में कहा है, दोनों मध्यमा को गुटिकाकार करके दोनों तर्जनी के ऊपर स्थापित और दोनों कनिष्ठा को अनामिका के मध्यगत करके फिर सब को एकत्र संयोजित कर अंगुष्ठ द्वारा परिपीड़ित करै । इसका ही नाम योनिमुद्रा है यह योनिमुद्रा त्रैलोक्योत्पत्ति की जननी स्वरूप है। शंखमुद्रा यथा-अंगुष्ठ को वाममुष्टि के अन्तर में प्रविष्ट और दक्षिण हस्त की सब अंगुलियों को सरल करके वामहस्त के अंगुष्ठ द्वारा स्पर्शकरै! मंत्रविद्गण इसकोही शंखमुद्रा कहतेहैं दक्षिण हस्तके पृष्ठभागमें वाम हस्तकी हथेली न्यस्त कर दोनों अंगुष्ठकी चालनाकरै। इसका नाम मत्स्यमुद्रा है।

अनन्तर देवीकी आज्ञा ग्रहण करके घट और श्रीपात्र दोनों में समस्त पात्र स्थापन करै। यथा-घटके समीप में गुरुपात्र फिर भोगपात्र फिर शक्तिपात्र, योगिनीपात्र, वीरपात्र' बलिपात्र, पाद्य और आचमनीय सब पात्र, और सामान्य अर्घ्य विपरीत क्रम में स्थापन करै। अनन्तर शुद्धि के सहित कारण और तत्वमुद्रा द्वारा श्री गुरु की पादुका स्मरण करके उस पात्र के अमृत द्वारा "श्रीअमुकानन्द" इत्यादि कहकर तीन बार व एकबार मस्तक में सन्तर्पण पूर्वक परम गुरु परापर गुरु और परमेष्ठी गुरु इनका भी विशेष प्रकार से तर्पण करे। अनन्तर यथाविधि मन्त्रोच्चारण सहित

सन्तर्पयेत् । ततः श्री पात्रान् मूर्ध्नि श्रीआनन्दभैरवं तर्पयामि नमः इति मन्त्रेण त्रिः सन्तर्प्य ततो देवीं सायुधां सवाहनां सपरिवारां हृदि सन्तर्पयेत् ॥

अथ तत्वमुद्रा यथा । स्वतन्त्रे-

अंगुष्ठानामिकायोगाद्वामहस्तस्य पार्वति । तर्पयेत् कालिकां देवीं सायुधां सपरीकराम् ॥

अथ तत्वशुद्धिं कुर्यात् । तदुक्तं श्रुतौ-

ओं प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ १ ॥ ओं पृथिव्यपतेजोवाय्वाकाशानि मे शुद्धयन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ २ ॥ ओं प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनः श्रोत्राणि मे इत्यादि ॥ ३ ॥ ओं त्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवचांसि मे इत्यादि ॥ ४ ॥ ओं पाणिपादपायूपस्थशब्दा मे इत्यादि ॥ ५ ॥ ओं स्पर्शरूपगन्धाकाशादि मे इत्यादि ॥ ६ ॥ ओं वायुतेज सलिलभूम्यात्मानोमे शुद्धयंतांज्योतिरहं विरजा विपाप्माभूयासं स्वाहा ॥ ७ ॥ इति सप्तभि ऋग्भिर्विमृश्य कारणेन करतलं सम्मार्ज्य दक्षहस्ते त्रिकोणं लिखित्वा कलायसदृशीं शुद्धिं दक्षिणवामभुजसंमुखमध्येषु निधाय वामहस्तांगुष्ठमध्यमानामायोगैरेकां गृहीत्वा मन्त्रान्ते ह्रीं श्रीं आत्मतत्त्वेन स्थूलदेहं शोधयामि । स्वाहा। अनेन अधःस्थां शुद्धिं स्वीकृत्य ह्रीं श्रीं विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहंशोधयामि

श्री आनन्द भैरवका तर्पण करके फिर तीनबार हृदय में आयुध वाहन और परिवारके सहित देवीके तर्पण में प्रवृत्त होना चाहिये ।

तत्वमुद्रा; यथा—स्वतंत्र में कहा है, वामहस्तका अंगुष्ठ और अनामिका दोनों में देवी कालिका का आयुध और परिवारके सहित तर्पण करै । फिर तत्वशुद्धि करनी चाहिये । श्रुति में कहाहै, यथा-'ओं प्राणापान,, इत्यादि सात प्रकार ऋक् द्वारा विमर्षण (विचार) कारण द्वारा करतल संमार्जन और दक्षिण हस्त में त्रिकोण लिख यथोक्त विधान से तत्वशुद्धि करै । अनन्तर ऋक् वा स्वदैवत मंत्रद्वारा श्रीपात्र से विन्दु स्वीकार करके श्री पात्रस्थ अमृत द्वारा पूजाकी उपकरण अभ्युक्षित करने से संपूर्ण ब्रह्ममय होता है । तदनन्तर सिंहासन के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर

स्वाहा। अनेन दक्षिणस्थां स्वीकृत्य ह्रीं श्रीं शिवतत्त्वेन परदेहं शोधयामि स्वाहा। अनेन उत्तरस्थां स्वीकृत्य ह्रीं श्रीं सर्वतत्त्वेन तनुत्रयाश्रयं जीवं शोधयामि स्वाहा। अनेन वामदक्षिणमध्यस्थां स्वीकृत्य वस्त्रेण हस्तौ विशोध्य हस्ताभ्यां सर्वाङ्गं मार्जयेदिति तत्त्वशुद्धिः। विस्तृतिस्तु मत्कृततत्त्वानन्दतरङ्गिण्यामनुसन्धेया।

ततः श्रीपात्राद्बिन्दुस्वीकारम् आर्द्रं ज्वलतीति ऋग्भिः स्वदैवत मंत्रेण वा कृत्वा श्रीपात्रामृतेन पूजोपकरणाभ्युक्षणात् सर्वं ब्रह्ममयं भवेदिति। ततः सिंहासनस्य पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरेषु त्रिकोणवृत्तं विलिख्य ऐं ह्रीं ह्रूं मण्डलाय नमः। इति मण्डलान् संपूज्य पूर्वे वां वटुकाय नमः। इति गन्धादिभिरिष्ट्वा अर्घ्यपूर्णसलिलमांसमनिमुद्रापुष्पयुतं वलिमुपस्कृत्य बलिपात्रामृतेन वामांगुष्ठानामाभ्याम् उत्सृजेत् अनेन—ऐह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ! कपिलजटाभारभास्कर। त्रिनेत्र! ज्वालामुख! सर्वविघ्नान् नाशय २ सर्वोपचारसहितवलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा एषवलिर्वटुकाय नमः। दक्षिणे यं योगिनीभ्यो नमः इति योगिनीः समभ्यर्च्य दक्षानामांगुष्ठाभ्यां पूर्ववद्बलिम् अनेन दद्यात्।

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा पाताले वा पवनसलिलयोर्यत्र कुत्रस्थिता वा। क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु कृतपदा धूपदीपादिकेन प्रीताः देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्यान्॥

की ओर गोलाकार त्रिकोण लिख समस्त मंडल की पूजा कर पूर्व भाग में गंधादि द्वारा वटुक की पूजा करनी चाहिये। पूजाके अन्त में अर्घ्य पूर्ण जल, मांस, मीन मुद्रा और पुष्पयुक्त वलि प्रस्तुत करके वलिपात्रस्थ अमृतके सहित वाम हस्त के अंगुष्ठ और अनामिका द्वारा उत्सर्जन (छोड़ना) करै। इस का मंत्र यह है, "ऐह्येहि देवीपुत्र" इत्यादि अनन्तर योगिनी गणोंकी अर्चना करके दक्षिण हस्तकी अनामिका और अंगुष्ठद्वारा पूर्ववत् वलि उत्सृष्टकरे।। तिस समय यह मंत्र कहना चाहिये। यथा—ब्रह्मांड के ऊर्द्ध में, स्वर्ग वा गगनतलमें, भूतल अथवा निस्तलमें, अथवा अतलमें, अनिल (वायु) में अथवा सलिल में, क्षेत्र में अथवा पीठ और उपपीठादि में अथवा जहां अवस्थित हों, धूपदीपादि के सहित यह पवित्र बलिविधान करता हूं, देवी के प्रति प्रीतिवशतः वही वीरेन्द्र बंदनीय योगिनीगण मेरी रक्षा

सर्वयोगिनीः हुं फट् स्वाहा एषवलिर्योगिनीभ्यो नमः पश्चिमे क्षां क्षेत्रपालमभ्यर्च्य वाममुष्टिकृतदीर्घया तर्जन्या वलिं दद्यात् अनेन क्षां क्षीं क्षूँ क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपाल धूपदीप सहितं वलिं गृह्ण गृह्ण गृह्ण स्वाहा एष वलिः क्षेत्रपालायनमः। उत्तरे गां गणेशमभ्यर्च्य दण्डाकारसर्वांगुलि मध्यवृद्धयोगैर्वलिंदद्यात्। गां गीं गूं गणपतये विरो धिसर्वजनमव संमरय स्वाहा। एष वलिर्गणपतये नमः। अथ स्ववामे पूर्ववत् मण्डलं कृत्वा ऐं ह्रीं व्यापकमण्डलाय नमः इति संपूज्य तत्र साधारणवलिं संस्थाप्य मूलेन अभिमन्त्र्य गन्धपुष्पधूपादीपादिना तं संपूज्य ओं ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यः हुं फट् नमः एष वलिः सर्वभूतेभ्यो नमः । इति तत्त्वमुद्रया उत्सृजेत् । सशक्तश्चेत् सर्व-भूताय वलिमेकं दद्यात्। ततः पूर्ववत् षडङ्गन्यासं कृत्वा कामकलां विभाव्य तरुणदिवाकरारुणकुसुमाञ्जलिं कूर्ममुद्रया गृहीत्वा मूला-धारात् कुण्डलिनीं ब्रह्मपथे पराशिवान्तं ध्यात्वा हृदयाष्टदलपीठे समानीय मूलेन मूर्तिं कल्पयेत्। तदुक्तं तन्त्रान्तरे।

देवीं सुषुम्नामार्गेण आनीय ब्रह्मरन्ध्रकम् । वामनासापुटे धृत्वा निर्माल्यं स्वाञ्जलिस्थितम्।पुष्पमारोप्य तत्पुष्पं प्रतिमादौ निधापयेत्।

करे। इस प्रकार योगिनीगणों को वलिप्रदान पूर्वक पश्चिम में क्षेत्रपाल की पूजा करके वाममुष्टिकृत दीर्घ तर्जनी द्वारा उसके उद्देश्य में वलिप्रदान करै। अनन्तर गणेश की अर्चना करके सब अंगुलियों को दण्डाकार कर वृद्ध और मध्यम योग में उसके उद्देश में बलिप्रदान करनी चाहिये। फिर अपने वाम भाग में पूर्ववत् मण्डलरचना और उसकी पूजा करके उसमें साधारण वलिस्थापन, मूलमन्त्र में अभिमंत्रण, गंध, पुष्प, और दीपादि द्वारा अर्चना करके तत्वमुद्रा द्वारा उत्सर्जन करै समर्थ होने पर सर्वभूत को एक वलि प्रदान कर । अनन्तर पूर्व की समान षडङ्ग न्यास, कामकला विभावन, तरुण दिवाकर की समान अरुण वर्ण कुसुमाञ्जलि कूर्म मुद्रा द्वारा ग्रहणपूर्वक कुण्डलिनी का मूलाधार से परम शिव पर्यन्त ब्रह्म पथ में ध्यान और हृदयाष्टदल पीठ में समानयन करके मूलमन्त्र द्वारा तदीय मूर्त्ति कल्पना करै। तंत्रान्तर में कहा है । यथा—देवी को सुषुम्ना मार्ग एवं ब्रह्मरन्ध्र में आनयन और वामनासापुट में ध्यान करके अपनी अंजलिस्थ पुष्प आरोपण और वही पुष्प प्रतिमादि में स्थापन करै । भैरवतंत्र में भी कहा है, यथा—अनन्तर पूर्वोक्तरूप में

भैरवतन्त्रे च–

ततः पूर्वोक्तरूपां तां ध्यायेच्चैव हि दक्षिणाम् । योगिनीं चक्रसंहितां महाकालसमन्विताम् ॥

कालीतन्त्रेऽपि–

ततो हृदयपद्मान्तः स्फुरन्तीं परमां कलाम् । यन्त्रमध्ये समावाह्य न्यासजालं प्रविन्यसेत् ॥

कुमारीकल्पेऽपि–

ततो हृदयपद्मांतः स्फुरंतीं विद्युताकृतिम् । सुषुम्नावर्त्मना नीत्वा शिरःस्थाने महेश्वरीम् ॥ ततो वै हृदयासन्ने पुष्पांतरे समाह्वयेत् । नासया वा महादेवि वायुबीजेन मंत्रवित् ॥ देवेशीति च मंत्रेण विंदुमावाहयत्सुधीः ॥

अथ पूर्वोक्तरूपं ध्यात्वा दीपाद्दीपांतरमिति च परशिवे संयोज्य यमिति वायुबीजमुच्चरन् वामनासापुटपथेन देवीं कुसुमाञ्जलावानीय मंत्रमध्ये समावाहयेत् अनेन मंत्रेण ॥

देवेशि भक्तिसुलभे ! परिवारसमन्विते । यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥

दे इति यन्त्रमध्ये देवीं समावाह्य महाकालसहित श्रीदक्षिणकालिके ! इहागच्छ इहागच्छ इहतिष्ठ इहतिष्ठ इहसन्निहिता भव

देवी दक्षिणा को योगिनीचक्र के सहित और महाकाल की समभिव्याहारिणी (कहने वाली) चिन्ता करनी चाहिये । कालीतंत्र में भी कहा है, अनन्तर हृदयपद्म के अभ्यन्तर (भीतर) में दीप्यमान परमाकला को यन्त्र में आवाहन करके न्यास जल में न्यस्त करै । कुमारीकल्प में भी कहा है, अनंतर हृदय पद्म के अन्तर में स्फुरमाण और सौदामिनी के समान आकारशोभना महेश्वरी को सुषुम्नवर्त्म द्वारा शिरस्थानमें लेजाकर हृदय के आसन्न पुष्पान्तर में आवाहन करै । अनन्तर पूर्वोक्त प्रकार जप और ध्यान करके दीप से दीपान्तर की समान परम शिव में संयोजित कर वायु बीज उच्चारण सहित वाम नासा पुट द्वारा देवी को कुसुमाञ्जलि में आनयन और मंत्र में आवाहन करै । तिस समय इस प्रकार मन्त्र कहना चाहिये । तुम्हीं देवतागणों की ईश्वरी और सब की शक्ति स्वरूप हो । तुमको सहज में ही प्राप्त हुआ जाता है । मैं जबतक तुम्हारी पूजा करूँ, तबतक तुम सपरिवार में सुस्थिर होकर स्थिति करो । इस प्रकार यन्त्र में देवी का सम्यग् प्रकार आवाहन करके फिर श्री दक्षिणा कालिका

इह मन्निरुद्धा भूत्वा पूजां गृहाण । इत्यावाह्य पूर्ववज्जीवन्यासं लेलिहामुद्रया कुशविष्टरेण वा कृत्वा हुं इत्यवगुण्ठ्य षडङ्गेन सकलीकृत्य परमीकरणं कृत्वा छोटिकाभिः दशदिग्बंधनं विधाय अमृतीकरणं च कृत्वा कृतांजलिर्देवीनामसम्बोधनांते ओं स्वागतं कुशलमिदमासनमिहास्यतामिति वदेत् ।

अथ आवाहनादिमुद्रा यथा । दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

ऊर्ध्वाञ्जलिमधः कुर्य्यादियमावाहनी भवेत् । इयन्तु विपरीता स्यात्तदा वै स्थापनी भवेत् ॥ ऊर्द्ध्वांगुलौ मुष्टियोगा तदेयं सन्निधापनी । अन्तरांगुष्ठयुगला तदेयं सन्निरोधनी ॥

अथ लेलिहामुद्रा यथा—

तर्जनीमध्यमानामासमं कुर्य्यादधोमुखम् । अनामायां क्षिपेद्वृत्वा मृदु कृत्वा कनिष्ठिकाम् ॥ लेलिहानामसुद्रेयं जीवन्यासे प्रकीर्त्तिता । अञ्जलिं चार्घ्यवत् कृत्वा परमीकरणं भवेत् ॥

ततः खड्गमुण्डवराभययोर्नादर्शयित्वा प्रतिचक्रे रश्मिवृन्ददेवतामावाहयेत् ।

महाकाल के सहित–इस स्थान में अधिष्ठान करो, सन्निहित होओ, सन्निरुद्ध होओ, मेरी पूजा ग्रहण करो, इत्यादि कहकर आवाहन और पूर्ववत् लेलिहामुद्रा वा कुश विष्टर द्वारा जीव न्यासकर यथाक्रम से अवगुँठन, षडङ्ग द्वारा सकलीकरण और परमीकरण एवं छोटिका द्वारा दशदिग्बन्धन और अमृतीकरण समाधान करने के अन्त में हाथ जोड़कर देवी के नाम संबोधनांत में "ओंस्वागत" इत्यादि कहे ।

आवाहनादि मुद्रा यथा—दक्षिणामूर्त्ति संहिता–में कहा है, ऊर्द्ध अंजुलिको अधः करने से आवाहनी मुद्रा होती है । इसके विपरीत करनेसेही स्थापनी मुद्रा होती है । दोनों हाथ की मुट्ठी बांधकर दोनों अंगूठों को ऊंचा करने से सन्निधापिनी मुद्रा होती है । दोनों हाथके दोनों अंगूठे अन्तःप्रविष्ट करने से सन्निरोधिनी मुद्रा होती है तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को समभाव में अधोमुख करके अनामिका में वृद्धांगुलि निक्षेप और कनिष्ट अंगुलिको सरल भावमें स्थापन करे । यह मुद्रा जीवन्यास में प्रयोग करनी चाहिये । अंजुलीको अर्घ्यवत् करने से परमीकरण होता है । अनंतर खड्ग, मुण्ड, वर अभय और योनिमुद्रा प्रदर्शन करके प्रतिचक्र में रश्मिवृंद देवता का आवाहन करै । स्वतंत्र में कहा है यथा देवी का ध्यान और सम्यग्प्रकार आवाहन

तदुक्तं स्वतन्त्रे—

ध्यात्वा देवीं समावाह्य योनिमुद्रान्तु दर्शयेत्। खड्गमुण्डवराभीतिपरां योनिन्तु दर्शयेत्। ततश्च प्रतिचक्रेषु देवीमावाहयेत् सदा ॥

अथ खड्गादिमुद्रा यथा—

कनिष्ठानामिके बध्वा स्वांगुष्ठेनैव दक्षतः । शेषांगुलिस्तु प्रसृते संपृष्टे खड्गमुद्रिका ॥ अन्तरांगुष्ठमुष्टिञ्च कृत्वा वामकरस्य च। मध्यमायां दक्षिणस्य तयालम्ब्य प्रयत्नतः। मध्यमेनाथ तर्जन्या अंगुष्ठाभ्यां विमृष्य च। दक्षिणं योजयेत् पाणिं वाममुष्टी च साधकः॥ दर्शयेद्दक्षिणे भागे मुण्डमुद्रेयमुच्यते। वरदाभयमुद्राञ्च वरदाभयवत् करे ॥ तर्जन्यनामिके मध्ये कनिष्ठादिक्रमेण तु। करयोर्योजयित्वैव कनिष्ठामूलदेशतः ॥ अंगुष्ठाग्रन्तु निःक्षिप्य महायोनिः प्रकीर्त्तिता ॥

अथ रश्मिवृन्ददेवता यथा । कालिकोपनिषदि—

ओं काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी। विप्रचित्ता उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता भीला घना वलाका च । मात्रा मुद्रा मिता चैव दशपञ्चमकोणगा ॥ इति ।

करके योनिमुद्रा प्रदर्शन करावै। तिस काल खमुद्रा, बरमुद्रा और अभयमुद्रा प्रदर्शन करके पीछे प्रतिचक्र में देवी का आवाहन करना चाहिये ॥

खड्गादि मुद्रा यथा–दक्षिण हाथ के अंगूठे से वामहस्त की कनिष्ठा और अनामिका को बांध तर्जनी और मध्यमा को परस्पर संश्लिष्ट कर प्रसारित करने से खड्गमुद्रा होती है। वामहस्त की मुट्ठी बांध और अंगूठे को तिस में प्रवेशित कर दक्षिण हस्त की मध्यमाको यत्न सहित आलम्बित और मध्यमा के सहित तर्जनी व अंगुष्ठाग्र में संयोजित और वाममुट्ठी में दक्षिण हाथ बांधकर दक्षिण भाग में प्रदर्शन करै। इसकाही नाम मुण्डमुद्रा है। दक्षिण हस्त की सब अंगुलियों को अधोमुख में प्रसारित करने पर बरमुद्रा होती है। वामहस्तकी सब अंगुलियों को अर्द्धमुख करके प्रसारित करने पर अभयमुद्रा होती है। दोनों हाथ की तर्जनी, अनामिका मध्यमा और कनिष्ठा को परस्पर संयोजित करके दोनों कनिष्ठा के मूल देश में अंगुष्ठाग्र निक्षेप करने से महायोनिमुद्रा होती है ॥

रश्मिवृन्द देवता। यथा—कालिकोपनिषद् में कहा है, काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विप्रचित्ता, उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, भीला, घना, वलाका, मात्रा, मुद्रा, अमिता, यह पंचदश [पंद्रह] रश्मिदेवता हैं। इनका ध्यान यथा-कालीतंत्रे-यह सभी

आसां ध्यानम् यथा कालीतन्त्रे—

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषणाः। तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यश्च संचिताः ॥

इति पूर्वादिपञ्चदशकोणे ध्यात्वा आवाहयेत्। तदुक्त फेत्कारिण्याम्—

ततः पूर्वादिकोणेषु वामावर्त्तेन विन्यसेत्।
ततः पूर्वास्यस्तदले ब्राह्म्यादिकं ध्यात्वा आवाहयेत्।

तद्यथा कुलसम्भवे—

महीमण्डलतश्चापि ब्राह्मी नारायणी तथा । माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता। वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च ॥

आसां ध्यानं यथा—

ब्रह्माणीं हंससंरूढां स्वर्णवर्णां चतुर्भुजाम् । चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्राञ्च ब्रह्मकूर्चं च पङ्कजम् ॥ दण्डपद्माक्षसूत्रंच दधतीं चारुहासिनीम्। जटाजूटधरां देवीं भावयेत् साधकोत्तमः॥ नारायणीं महादीप्तां श्यामां गरुड़वाहिनीम्। नानालङ्कारसंयुक्तां चारुकेशां चतुर्भुजाम् ॥ घण्टां शंखं कपालं च चक्रं सन्दधतीं पराम्। मधुमत्तमदोल्लोलदृष्टि सर्वांग

श्यामवर्ण, सभी असिहस्त, सभी मुण्डमालाविभूषित और सभी वामहस्त द्वारा तर्जनी धारण किये हैं, यह कहकर पूर्वादि पंचदश कोणमें ध्यान करके आवाहन करे। फेत्कारिणी में भी कहा है, अनंतर पूर्वादि कोण में वामावर्त्त क्रमसे विन्यास करै। फिर ब्राह्मी इत्यादि का ध्यान करके आवाहन करना चाहिये। यथा कुलसंभव में कहा है, बाहिरी मण्डल में ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, बाराही और नारसिंही की पूजा करै। इनका ध्यान। यथा, ब्रह्माणी हंसपर सवार होती है। वह श्वेतवर्ण, चतुर्भुजा, चतुर्वक्त्रा, त्रिनेत्रा, ब्रह्मकूर्च [पात्रविशेष] पंकज [कमल] दण्ड और अक्षसूत्र धारण करती है। साधक इसी चारुहासिनी जटाजूटधारिणी ब्रह्माणी को चिंता करै। नारायणी अत्यंत दीप्तिशालिनी, श्यामवर्ण गरुडवाहिनी, विविध अलंकारधारिणी और सुन्दर केशपाशशोभिनी है उसके चार हस्त हैं। उनमें घंटा, शंख, कपाल और चक्र बिराजमान रहता है। उसकी दृष्टि मधुमत्त मदलोला [मदसे चंचल] और सर्वांग सौंदर्य में पूर्ण हैं। माहेश्वरी वृषभ [बैल] पर आरोहण करती है। वह शुभा त्रिनयना, एवं उस के हाथ में वर, अभय, शूल, कपाल, डमरू और टंक [शस्त्र विशेष] शोभा पाता है शरीर सर्वा-

सुन्दरीम् ॥ माहेश्वरीं वृषारूढ़ां शुभ्रां त्रिनयनान्विताम् । कपालं डमरुं चैव वरदाभयशूलकम् ॥ टङ्कंच दधतीं देवीं नानाभरणभूषिताम् ॥

चामुण्डामट्टहासां प्रकटितदशनां भीमवक्त्रां त्रिनेत्रां नीलाम्भोजप्रभाभां प्रमुदितवपुषां नारमुण्डालिमालाम् । खड्गं शूलं कपालं नरशिरघटितं खेटकं धारयन्तीं प्रेतारूढ़ां प्रमत्तां मधुमदमुदितां भावयेच्चण्डरूपाम् ॥

कौमारीं कुंकुमप्रभां त्रिनेत्रां शिखिसंस्थिताम् । चतुर्भुजां शक्ति पाशमंकुशाभयधारिणीम् ॥ नानालङ्कारसंयुक्तां प्रमत्तां परिचिन्तयेत् । अपराजितांच पीताभामक्षसूत्रवरप्रदाम् । कपालं मातुलाङ्गच दधतीं परिचिन्तयेत् ॥ वाराहीं धूम्रवर्णांच वराहवदनां शुभाम् । फलकखड्ग-मूसलहलवेदभुजैर्युताम् । नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ॥

अत्र काम्या पूर्वा दिक् न त्वन्या विशेषवचनात् । यत्र रवेरुदयः किंवा पूज्य पूजकयोरन्तरा इति । आगमे सर्वदेवपूजने पूज्य-पूजकयोरन्तर एव पूर्वा दिक् ।

तदुक्तं राघवभट्टेन—

यत्रैव भानुस्तु वियत्युदेति प्राचीति तां वेदविदो वदन्ति । अथान्तरा पूजकपूज्ययोश्च सदागमज्ञाः प्रवदन्ति तान्तु ॥ अन्यच्च

लंकार से भूषित है । चामुण्डा दांत निकालकर अट्टहास करती है । वह भीमवक्त्रा त्रिनेत्रा नीलोत्पलकी समान प्रभा प्रमुदित शरीर, और नृमुण्ड (नरमुण्ड) मालासे विभूषित है । उसके हाथ में खड्ग, शूल, नरकपाल, और खेटक (आकाश में चरने वाले ग्रह) शोभायमान हैं वह मधुमद में प्रमुदित और प्रमत्त होकर प्रेत के ऊपर आरूढ होती है । उसका रूप अत्यन्त भयंकर है । साधक उसकी उक्त रूप में भावना करै । कौमारी की प्रभा- कुंकुम की समान है । उसके तीन नेत्र, शिखी (मोर) वाहन चार भुजा, हाथों में शक्ति, पाश, अंकुश और अभय, एवं कलेवर विविध अलंकार में विभूषित है । अमृतपान करके वह अत्यन्त मत्त भावापन्न हुई है । साधक इस रूपमें उसकी चिन्ता करै । अपराजिता पीतवर्ण, अक्षसूत्र और वरप्रदा, कपाल एवं मातुलाङ्ग धारिणी है । इस रूप में उसकी चिन्ता करै । वाराही धूम्र वर्ण, वराह की समान बदनयुक्त और चार भुजा में फलक, खड्ग, मूसल और तूण धारण करती है । नारसिंही नृसिंह की समान शरीरधारिणी है ।

पूर्वदिशाही पूजादि में कमनीय है, अन्य दिशा नहीं । इस विषय में विशेष वचन हैं जिस दिशा में सूर्य का उदय होता है, अथवा पूजक का अन्तरा अर्थात् व्यवधान है,

देवसाधकयोरन्तः पूर्वाशा दिगिहोच्यते ॥ अपि च । पूज्यपूजकयो-रन्तः पूर्वाशैव निगद्यते ॥

तन्त्रान्तरेऽपि—

होतुः पूर्वं पर्वभागं प्रदिष्टं सव्यं भागं दक्षिणन्त्वागमज्ञैः। दक्षं विन्द्यादुत्तरं भागमग्र्यं प्रज्ञावद्भिः पश्चिमं भागमुक्तम् ॥

अग्र्यमिति संमुखमित्यर्थः ॥ यत्तु ।

पुरन्दरमुखो मंत्री पूजयेत् त्रिपुरां यदि । देवीपश्चात्तदा प्राची प्रतीची त्रिपुरेश्वरः ॥

इति गुप्तार्णववचनम्, तत्त्रिपुराविषय बोद्धव्यम्। देवीमात्रवि-षयकल्पने अन्यथा भवेत्। अथ मूलमन्त्रांते। श्री महाकालसहितां श्री दक्षिणकालिकां तर्पयामीति त्रिःसन्तर्प्य सायुधां सपरिवारांच तर्पयेत्। ततोऽष्टादशोपचारैःषोड़शोपचारैर्दशोपचारैः पंचोपचारैर्वा देवीं पूजयेत्।

तदुक्तं स्वतन्त्रे—

आवाहयेत् प्रतिदले मूलदेवीं च। तर्पयेत्। तर्पयेत् कालिकां

उसको ही पूर्वदिशा कहते हैं आगम में कहा है संपूर्ण देवता की पूजा में पूज्य और पूजक के अन्तर को ही पूर्वदिशा कहते हैं राघव भट्ट ने इसी प्रकार कहा है। यथा- जिस ओर आकाश में सूर्य उदय हों, वेदविद्गण उसको ही पूर्वदिक् शब्द में निर्देश करते हैं। आगमज्ञ व्यक्तिगण पूज्य और पूजक के अन्तर को ही पूर्वदिशा कहते हैं। अन्यत्र भी कहा है, यथा-देवता और साधक इन दोनों के अन्तर को ही पूर्वदिशा कहतेहैं। फिर भी कहा है,पूज्य और पूजकके अंतरको ही पूर्वदिशा कहतेहैं। तत्रांतरमें भी लिखा है, होता के पूर्व को पूर्वभाग, सव्य को दक्षिण भाग, दक्षिण को उत्तर भाग और संमुख को पश्चिम भाग कहते हैं। प्राज्ञवित् और आगमवित् व्यक्ति गणों का इसी प्रकार मत है। तो जो गुप्तार्णवमें लिखाहै कि पुरंदर मुखमें विराजमान होकर त्रिपुरादेवी की पूजाकरै, उसको त्रिपुरा विषयक समझना चाहिये। अनंतर मूलमंत्रकेतमें श्री महाकाल सहित श्रीदक्षिणा कालिका का तर्पण करता हूं यह कह तीन वार तर्पण करके आयुध और परिवार के सहित पुनर्वार तर्पण करना चाहिये। अनंतर अष्टादश [अठारह) वा षोडश [सोलह] या दश वा पंच विध उपचार से देवीकी पूजा करै। स्वतंत्र में इसीप्रकार कहा है, यथा—प्रतिदल में आवाहन करके मूल देवी का भी तर्पण करै।

देवीं सायुधां सपरीकराम् । पाद्यादिभिर्मूलदेवीं संपूज्य तर्पयेत् पुनः ॥

अथोपचारा यथा । तदुक्तं फेत्कारिण्याम्-

आसनावाहने चार्घ्यं पाद्यमाचमनं तथा ॥ स्नानं वासोपवीतञ्च भूषणानि च सर्वशः । गन्धपुष्पं तथा धूपदीपावन्नञ्च तर्पणम् । माल्यानुलेपनञ्चैव नमस्कारविसर्जने । अष्टादशोपचारैस्तु मन्त्री पूजां समाचरेत् ॥

मन्त्ररत्नावल्यान्तु—

पाद्यार्घ्याचमनीयञ्च स्नानं वसनभूषणम् । गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याचमनं ततः ॥ ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणञ्च नमस्क्रिया प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोड़श । अन्यच्च—अर्घ्यं पाद्यं निवेद्याथ तथैवाचमनीयकम् ॥ मधुपर्काचमनञ्चैव तथा गन्धप्रसूनके ॥ धूपदीपौ च नैवेद्यं दशोपचारकं स्मृतम् । गन्धादिका नैवेद्यान्ता पूजा पञ्चोपचारिका ॥

अथ पूजायां विधयो यथा। कालीकल्पे—

श्रीपदं पूर्वमुद्धृत्य पादुकापदमुद्धरेत् । पूजयामि ततः पश्चात् पूजयेदङ्गदेवताः ॥ काल्यादयः पूजनीयाः क्रमेण परमेश्वरि ! । स्वाहा होमे तर्पणे च तर्पयामीति संस्मरेत् ॥ देवीदक्षिणे महाकालं

देवी कालिका का और परिकर सहित तर्पण एवं पाद्यादि द्वारा मूल देवी की पूजा करके पुनर्वार तर्पण करना चाहिये ॥

सर्व उपचार । यथा—फेत्कारिणी तंत्र में कहा है । आसन, आवाहन, अर्घ्य,, पाद्य, आचमन, स्नान, वाद्य, उपवीत, समस्त भूषण, गंध, पुष्प, धूप, दीप, अन्न, तर्पण, माल्यानुलेपन, नमस्कार, विसर्जन, इन अठारह उपचार से पूजा करै। मंत्ररत्नावली में कहा है, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, आभूषण, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, अर्चना, स्तोत्र, तर्पण, नमस्कार यह षोडश उपचार पूजाके समय प्रयोग करै। अन्यत्र भी कहा है। अर्घ्य और पाद्य निवेदन करके फिर आचमन मधुपर्क आचमनीय,, गंध, पुष्प, धूप, दीप, और नैवेद्य निवेदन करै। इनकाही नाम दश विध उपचार है गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इन कई द्रव्यको एकत्र में पंच उपचार कहते हैं।

पूजयेत् यथा । कुमारीकल्पे-देव्यास्तु दक्षिणे भागे महाकालं समर्चयेत् ॥

कालीकल्पेऽपि-

महाकालं यजेद् यत्नात् पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत् ।

अथ मन्त्रो यथा-ओं ह्रौं यां रां लां वां क्रौं महाकालभैरव ! सर्वविघ्नान् नाशय २ ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा अनेन पाद्यादिभिराराध्य त्रिस्तर्पयित्वा मूलदेवीं पूजयेत् । तथा मूलान्ते च ततः पाद्यं महाकालसहित श्रीदक्षिणकालिकायै नम इति पादयोः पाद्यं दद्यात् । केषाञ्चिन्मते तु । महाकालसहितपदसम्बलितदेवीनामप्रयोगो न भवतीति साम्प्रदायिकाः । अथ अर्घ्यं शिरसि दद्यात् । एवम् आचमनीयं मधुपर्कं च । वमिति वरुणबीजान्ते मुखपङ्कजे दद्यात् । स्नानीयं नम इति स्नानीयं दत्वा शुद्धदुकूलेनाङ्गं प्रोन्मार्ज्य विचित्र पट्टवस्त्रकस्तूरीकुंकुमचन्दनसिन्दूरकज्जलमुकुटकुण्डलताटङ्कहार—त्रयशङ्खकङ्कणाङ्गदग्रीवाभूषणकांचीनूपुररत्नांगुरीयकाद्याभरणानि विविधपुष्पादिरचितमाल्यादीनि निवेद्य केवलं पुनराचमनीयं दद्यात् । तदुक्तम्-

---

पूजा का निषेध । यथा-कालीकल्प में कहा है, प्रथम श्रीपद उद्धार करके फिर पादुकापद उद्धृत करै । अनंतर 'पूजयामि' पद प्रयोग करना चाहिये फिर संपूर्ण अंग देवताओं की पूजा करके यथाक्रमसे कल्पादि की पूजा करनी चाहिये ! देवीके दक्षिणमें महाकालकी पूजाकरनी चाहिये । यथा कुमारीकल्पमें कहा है, देवीके दक्षिण भाग में महाकाल की पूजा करै । कालीकल्पमें भी कहाहै, यत्न सहित महाकालकी पूजा करके फिर देवीकी अर्चना में प्रवृत्त होवे ॥

पूजा का मंत्र । यथा—'ओं ह्रौं" इत्यादि । इस मंत्र से पाद्यादि द्वारा आराधना करके तीनबार तर्पण सहित मूलदेवीकी पूजा करै । मूलमंत्रसे पूजाकर तदीय पदमें पाद्य निवेदन करै । किसी किसी के मतसे महाकाल सहित पदसंयुक्त देवी के नाम का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है । अनन्तर मस्तक में अर्घ्यदान-करै । इस प्रकार वरुणबीज सहित मुखकमल में आचमनीय, और मधुपर्क प्रदान करना चाहिये ! अनन्तर स्नानीय दान और विशुद्ध दुकूल (डुपट्टा) में अंग ढककर विचित्र पट्टु वस्त्र, कस्तूरी कुंकुम, चंदन, सिंदूर, कज्जल (मुकुट) कुण्डल, ताटंक, तीन हार शंख, कंकण, अंगद, ग्रीवाभूषण, काञ्ची, नूपुर, और रत्नांगुरीय इत्यादि समस्त

पाद्यञ्च पादयोर्दद्यात् नासामन्त्रेण मन्त्रवित् । शिरोमन्त्रेण देवेशि ! अर्घ्यं दद्याच्छिरोपरि ॥ आचमनं मधुपर्कंच स्वधामन्त्रेण देशिकः । स्नानं गन्धं हृदा दद्यात् पुष्पाणि वौषडित्यपि ॥ ततो निवेदयामीति दद्यात् सर्वं महेश्वरि ! ।

स्वधामन्त्रेण वरुणमन्त्रेण इत्यर्थः ।
स्वधेत्याचमनीयंच त्रिवारं मुखपङ्कजे ॥

तन्त्रान्तरे च -

नमः स्वाहा स्वधा चैव वौषडिति यथाक्रमम् ।

स्वाहा सन्निधिपाठाच्च आचमनीयं स्वधेति वकारमध्यपाठो युक्त एव भवति तत्र समीचीनम् । अत्रागमे प्रायः सङ्केतेनैव मन्त्रोद्धारः क्रियते एकमन्त्रोद्धारेऽपि कुत्रापि तत्तदक्षरेण कुत्रापि पर्य्यायशब्देन.पि तत्तन्मन्त्रोद्धारो दृष्ट इति उकारमध्यपाठो युक्तः न तु वकारमध्यः अन्यथा राघवभट्टधृतवचनविरोधापत्तेः तद्यथा –

मधुपर्कं मुखे दद्यात् जलमन्त्रेण देशिकः । किंच वारुणेन

आभरण और विविध पत्रादि रचित माल्यादि निवेदन पूर्वक-केवल पुनर्वार आचमनीय प्रदान करें जैसा कहा है । यथा--नासान्त के समय पाद युगल में पाद्य निवेदन करके शिरोमंत्र से शिर के ऊपर अर्घ्य, स्वधामंत्र से आचमन और मधुपर्क, गन्ध, हृन्मंत्र से स्नान, और वौषट् इत्यादि मंत्र से समस्त पुष्प निवेदन करें ॥

यहां स्वधामंत्र शब्द से वरुणमंत्र समझना चाहिये । क्योंकि तंत्रान्तर में कहा है स्वधामंत्र से तीनवार मुखपंकज में आचमनीय प्रदान करें । फिर कहा है नमः स्वाहा स्वधा और वौषट् यथाक्रम से इत्यादि । इस स्थान में स्वधा, यह वकार मध्यपाठ-किसी क्रम से ठीक नहीं है । इस आगम प्राय संकेत में मंत्रोद्धार किया गया है । एकविध मंत्र के उद्धार में भी कहीं उसी उस मंत्र द्वारा, और पर्य्याय शब्द द्वारा भी तत्तत् मंत्र का उद्धार किया गया है । यह देखा जाता है सुतरां उकार मध्य पाठ ही युक्त हैं, वकार मध्यपाठ संगत नहीं है । अन्यथा राघवभट्टधृत वचन के साथ विरोध संघटित होता है । यथा—जलमंत्र से मुख में मधुपर्क प्रदान करें । किंच वारुण मन्त्र से मुखपद्म में मधुपर्क इत्यादि । यह बचन मधुपर्क विषयक है, इस प्रकार नहीं कहसकते । क्योंकि मधुपर्क और आचमन दोनों के एक मन्त्र योग में प्रदान

तु मन्त्रेण मधुपर्कं मुखाम्बुजे ॥ इति न च वाच्यं मधुपर्कविषयमेवेदं वचनमिति ।

मधुपर्काचमनयोरेकमन्त्रेण दानात् सुधेति पाठो युक्तः एवेति निश्चितम् । ततो मध्यमानामिकांगुष्ठे गन्धं नम इति गन्धम् अंगुष्ठ-तर्जनीभ्यां पुष्पाणि वौषडिति पुष्पैः संपूज्य साक्षतं स्वयम्भू कुसुमा-दिकञ्च वौषडिति मन्त्रेण दत्वा धूपपात्रं फडिति संप्रोक्ष्य नम इति इष्ट्वा पुरतो निधाय वामतर्जन्यां संस्पृशन् धूपं निवेदयामीति श्री-पात्रामृतेन उत्सृज्य गजध्वनि मन्त्रमातः स्वाहेति घण्टां संपूज्य वाम-हस्तेन तां वादयन् मध्यमानामिकांगुष्ठैर्धूपंदत्वा देवतागायत्रीं मूल-मंन्त्रंच जप्त्वा त्रिधा उत्तोलनं कृत्वा देवीं धूपयेत् । अथ सम्मुखे दीपभाजनं संस्थाप्य पूर्ववत् प्रोक्षणपूजने कृत्वा वाममध्यमया दीप-पात्रं स्पृशन् दीपं निवेदयामीति निवेद्य घण्टां पूर्ववत् वादयन् मध्य-मानामिकामध्ये दीपपात्रमंगुष्ठाग्रेण धृत्वा दर्शयेत् । ततो मधुद्रव्यं सम्मुखे कृत्वा ओं कालि ! कालि ! महाकालि ! हूं हूं अमृतमासवं विधिवत् कुरु कुरु स्वाहा इति मन्त्रेण सप्तधा अभिमन्त्र्य च ग्रास-मुद्रया पात्रमादाय दक्षिणपाणिना शुध्यादिकं गृहीत्वा कराभ्यां संयो-

---

घशतः स्वधा के परिवर्त्त में 'स्वधा' यह पाठही युक्तियुक्त होता है। यही स्थिर किया सिद्धान्त है ॥

अनन्तर यथोक्त मंत्रोच्चारण सहित गंध और पुष्प द्वारा पूजा करके वौषट् मन्त्रसे अक्षत सहित स्वयम्भू कुसुमदान फट्मन्त्र से धूपपात्र प्रोक्षण, पूजन सम्मुख में स्थापन और वाम तर्जनी द्वारा स्पर्श करना चाहिये। फिर घंटा की पूजा और बामहस्त द्वारा उसका वादन, मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ द्वारा धूपदान, देवता, गायत्री और मूलमन्त्र जप और तीनबार उत्तोलन करके देवी को धूपित करै । अनन्तर सन्मुख में दीपपात्र स्थापन एवं पूर्ववत् प्रोक्षण और पूजन निष्पादन करके बामहस्त की मध्यमा द्वारा दीपपात्र स्पर्श, दीपनिवेदन, पूर्ववत् घंटावादन, एवं पूर्ववत् मध्यमा और अनामिका के मध्य में अंगुष्ठाग्र द्वारा दीपपात्र धारण करके प्रदर्शन कर तदुपरांत मधु द्रव्य सम्मुख करके 'ओं कालिकालि' इत्यादि मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करने के पीछे ग्रासमुद्रा द्वारा पात्रग्रहण, दक्षिणहस्त द्वारा शुध्यादिसंग्रह और दोनों हाथों से मिलाकर मूलमन्त्र के अंत में शुध्यादि सहित आसव निवेदन

ज्य मूलमन्त्रान्ते शुद्ध्यादिसहितमासवं निवेदयामीति दद्यात्। ततो नैवेद्यं स्वर्णादिपात्रे कृत्वा त्रिकोणमण्डलोपरि पुरतः संस्थाप्य हुमिस्यवगुण्ठ्य यामिति वायुबीजेन संशोध्य रमिति वह्निबीजेन संदह्य वमिति वरुणबीजेन धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य तदुपरि मूलं सप्तधा प्रजप्य वामांगुष्ठेन नैवेद्यपात्रं स्पृशन् नैवेद्यं निवेदयामीति दक्षिणहस्ते तत्त्वमुद्रया उत्सृजेत्। ततो जलगण्डूषं दत्त्वा प्राणादिपञ्चमुद्रां दर्शयन् वामहस्ते ग्रासमुद्रां दर्शयेत्। ततः पुनराचमनीयं दत्त्वा कर्पूरादियुक्तताम्बूलं वामांगुष्ठेन धृत्वा ताम्बूलं निवेदयामीति दद्यात्। सर्वमर्घ्यजलेन उत्सृजेत्। ततस्तन्त्रमुद्रया अर्घ्यामृतेन देवीं त्रिः संतर्प्य योनिमुद्रां दर्शयेत्॥

तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

मध्यमानामिकाभ्यान्तु अंगुष्ठाग्रेण पार्वति!। दद्याच्च विमलं गन्धं मूलमन्त्रेण देशिकः॥ अंगुष्ठतर्जनीभ्यान्तु चक्रे पुष्पं निवेदयेत्। यथा गन्धं तथा देवि! धूपं दद्याद्विचक्षणः॥ मध्यमानामिकाभ्यान्तु मध्यपर्वणि देशिकः। अंगुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा दीपं निवेदयेत्॥

करना चाहिये। अनन्तर सुवर्णादिपात्र में नैवेद्य करके त्रिकोणमण्डल के ऊपर सम्मुख स्थापन, कूर्चमंत्र से अवगुण्ठन वायुबीज की सहायता से संशोधन वन्हि बीज द्वारा संदहन, वरुणबीज की सहायता से धेनुमुद्रा योग में अमृतीकरण, उसके ऊपर सातवार मूलमन्त्र जप, और वाम अंगुष्ठ से पात्र को स्पर्श कर तत्व मुद्रा द्वारा उत्सर्जन करे। फिर जलगण्डूष प्राणादि पंचमुद्रा प्रदर्शन करने के पीछे वाम हस्त में ग्रासमुद्रा दिखानी चाहिये तदनन्तर पुनर्वार आचमनीय प्रदान करके बायें हाथ के अंगूठे से कर्पूरादि युक्त ताम्बूल ग्रहण कर उसको निवेदन और समस्त अर्घ्यजल के सहित उत्सर्जन करे। अनंतर तत्वमुद्रा सहित अर्घ्यामृत द्वारा देवीको तीनवार तृप्त करके योनिमुद्रा दिखावे। तंत्रांतर में कहा है यथा—मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठाग्र द्वारा मूलमंत्र की सहायता से विमलगंध दान करना चाहिये। अंगुष्ठ और तर्जनी द्वारा चक्र में पुष्प निवेदन एवं गंध और धूपदान करे। मध्यमा, अनामिका, और अंगुष्ठाग्र द्वारा मध्यपर्व में दीपधारण करके निवेदन और मूलमंत्र से तीनवार गायत्रीको उत्तोलन करके तत्वादमुद्रा प्रदर्शन करने के पीछे नैवेद्य निवेदन करे। शारदा टीके में कहा है, धूपभाजन मंत्र में प्रोक्षण, हृन्मंत्र में

उत्तोलनं त्रिधा कृत्वा गायत्र्या मूलयोगतः । तन्त्राख्यमुद्रया देवि ! नैवेद्यंच निवेदयेत् ॥

मूलेन आचमनं ताम्बूलं तेन मुद्रया ददात् ।

शारदाटीकायाञ्च—

धूपभाजनमंत्रेण प्रोद्याभ्यर्च्य हृदात्मना । मन्त्रेण पूजितां घण्टां वादयन् गुग्गुलं दहेत् ॥

अन्यत्रापि—

गजध्वनि ततो मन्त्र मातः स्वाहेत्युदीर्य्य च । अभ्यर्च्य वादयन् घण्टां सधूपैर्धूपयेत्ततः ॥

तन्त्रांतरे च—

ततः समर्पयेत् धूपं घण्टावादनसंयुतम् । एवं दीपदाने घंटा वादनमिति साम्प्रदायिकाः ॥

अथ गन्धादिनिवेदनस्थानम् यथा यामले—

निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पच भूषणम् । दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो न तु वामतः ॥ वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे । नैवेद्यं दक्षिणे चापि पुरतो न तु पृष्ठतः ॥

दीपमिति घृतयुक्तश्चेत् दक्षिणे तैलयुक्तं चेद्वामे इति साम्प्रदायिकाः । एवं सिता वर्त्तिश्चेत् दक्षिणतः रक्ताचेद्वामतः संमुखे तु न नियमः । नैवेद्यमिति सिद्धान्नं चेत् देवतावामे आमान्नं चेद्दक्षिण इत्यपि बोद्धव्यम् ।

अभ्यर्चन (पूजा) और 'फट्' की सहायता से पूजित घंटा बजाकर गुग्गुल जलाना चाहिये । तन्त्रांतर में कहा है, अनंतर घंटा बजाने के संग धूप निवेदन करै । साम्प्रदायिक गणोंने दीपदान में भी इसीप्रकार घंटा बजाने की विधि निर्देश की है । गंधादि निवेदन के स्थान यथा—यामल में कहा है । पुरोभाग में गंध, पुष्प और भूषण, दक्षिण में दीप, वाम में धूप और दक्षिण में नैवेद्य प्रदान करै । दीप कभी सम्मुख वा वाम में न दे । और नैवेद्य भी कभी सम्मुख वा पीछे से निवेदन न करै । सम्प्रदायिक मतसे घृतयुक्त प्रदीप दक्षिण में और तैलयुक्त दीप वाम में निवेदन करै । इसप्रकार श्वेतवर्त्ति (सफेदवत्ती) दक्षिण में और रक्तवर्त्ती वाम में प्रदान करनी चाहिये । सम्मुख नहीं नैवेद्य सिद्धान्न होने से देवता के वाम में और आसन न होने से दक्षिण में, यह समझना चाहिये ।

अथ पुष्पनियमो यथा मुण्डमालायाम्—

पुष्पाण्यपि तथा दद्यात् रक्तकृष्णसितानि च । श्वेतं रक्तं जवा-पुष्पं करवीरं तथा प्रिये ? ॥ टगरं मल्लिका जाती मालती यूथिका तथा। धुस्तूराशोकवकुलं श्वेतकृष्णापराजिता ॥ बकपुष्पं बिल्वपत्रं चम्पकं नागकेशरम् । मल्लिका झिण्टिका कांची रक्तं यत् परिकीर्त्तितम् ॥ अर्कपुष्पं जवापुष्पं वर्वरंच प्रियं भवेत् । अष्टम्यांच विशेषेण तुष्टा भवति पार्वती ॥ पद्मपुष्पेण रक्तेन सन्तुष्टाः सर्वदेवताः। कृष्णं वा यदि वा रक्तं कालिका वरदा भवेत् ॥ श्मशानधुस्तुरेणैव तुष्टा स्वप्नावती परा । अन्यपुष्पैश्च विविधैः सन्तुष्टा देवि ! पार्वती ॥ आमलक्यास्तु पत्रेण तुष्टा भवति पार्वती । अष्टम्यांच चतुर्दश्यां नाना पुष्पैः समर्चयेत् ॥ श्मशाने रात्रिशेषे वा शनिभौमदिने तथा ।

मत्स्यसूक्ते—

सुगन्धिश्वेतलोहितकुसुमैरर्चयेद्बुधः ॥ बिल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसीवार्जितैः शुभैः । ओड्रपुष्पैर्विशेषेण वज्रपुष्पेण मिश्रितम् ॥ सर्वं पुष्पं प्रदातव्यं भक्तियुक्तेन चेतसा । देवानामित्युपलक्षणं देवीनामिति बोद्धव्यम् ॥

पुष्प नियम । यथा—मुण्डमालातंत्र में कहा है, रक्त, कृष्ण और श्वेत वर्ण समस्त पुष्प प्रदर्शन करै । श्वेत और रक्त भेद में द्विविध जवा और द्विविध करवीर, टगर (सुहागा) मल्लिका, जाती (चमेली) मालती, यूथी, धुस्तर, अशोक, बकुल शुक्ल और कृष्ण भेद से दो प्रकार की अपराजिता (विष्णुकान्ता) बक पुष्प, विल्वपत्र, चंपक, नागकेशर, मल्लिका पीलीकटसरैया कांची (तरी चोंटली) और अर्क पुष्प (आकका फूल) यह सब देवीको प्रिय हैं । विशेष करके अष्टमी में यह सब प्रदान करने से पार्वती तुष्ट होती हैं रक्तवर्ण पद्म पुष्प प्रदान करने से संपूर्ण देवता संतुष्ट होते हैं । कृष्ण वा रक्तवर्ण जो कोई पुष्पप्रदान किया जाय उससे कालिका वरप्रदान करती है । स्वप्नावती श्मशान धुस्तूर (श्मशान का धतूरा) से ही संतुष्ट होती है । अन्यान्य विहित पुष्प और आमलकी के पत्र प्रदान करने से, पार्वती प्रसन्न होती हैं । अष्टमी और चतुर्दशी में शनि और मंगलवार में श्मशान में वा रात्रि के शेष में, विविध पुष्प दान सहित अर्चना करै । मत्स्यसूक्त में कहा है, सुन्दर गंधयुक्त श्वेत और

तदुक्तं तन्त्रांतरे—

देवीपूजा सदा कार्य्या जलजैः स्थलजैरपि । विहितैर्वा निषिद्धैर्वा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ पूजनीया सदा भक्त्या नृणां शीघ्रफलाप्तये ॥

अथ पुष्पदानविधानम् यथा तदुक्तं शारदाटीकायांम्—

पुष्पं वा यदि वा पत्रं फलं नेष्टमधोमुखम् । दुःखदं तत्समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम् ॥ अधोमुखं फलं नेष्टं पुष्पांजलिविधौ न तत् ।

अथ नैवेद्यं यथा । तदुक्तं मत्स्यसूक्ते—

पायसं कृषरं दद्यात् शर्करागुड़संयुतम् । गव्यं मुखे मधुपयस्तथान्यानि निवेदयेत् ॥ शालमत्स्यञ्च पाठीनं गोधामांसमनुत्तमम् । अन्नञ्च मधुना युक्तं यत्नाद्दद्याच्च मन्त्रवित् ॥

कृषरं तिलतण्डुलमित्यर्थः । पाठीनं वोयालाख्यमत्स्यमित्यर्थः ।

अन्यत्रापि—

कन्दुपक्वं स्नेहपक्वं घृतसंयुक्तपायसम् । मनः प्रियंच नैवेद्यं दद्याद्देव्यै पुनः पुनः ॥

लोहित, वर्ण कुसुम (पुष्प) विल्व, मरुवक विशेषतः ओड़ पुष्प (गुडहर पुष्प) और वज्र पुष्प मिश्रित समस्त पुष्प भक्तियुक्त चित्त से प्रदान करै, तुलसी प्रदान न करै । तन्त्रान्तर में कहा है विहित हों अथवा निषिद्ध हों, जलज और स्थलज पुष्पों के द्वारा भक्तियुक्त चित्त से सर्वदा देवी की पूजा करने से शीघ्रफल लाभ होगा ।

पुष्प विधान । यथा—शारदा टीका में कहा है पुष्प वा फल अथवा पत्र अधोमुख होकर न दे, इस से दुःख उपस्थित होता है । जिस रूप में वह सब उत्पन्न हुए हैं उसी भाव में अर्पण करें । पुष्पांजलि प्रदान करने के समय अधोमुख होकर फलदान की विधि विहित नहीं है । अब नैवेद्य दान की विधि लिखी जाती है मत्स्यसूक्त में कहा है पायस (खीर) शर्करा गुड़ समेत कृषर गव्य दुग्ध (गायका दुग्ध) मधु और अन्यान्य समस्तद्रव्य निवेदनकरे । मंत्रवित् साधक यत्नपूर्वक शालमत्स्य पाठीन, गोधामांसऔर मधुयुक्तअन्न प्रदानकरै । इसस्थलमें कृषर शब्दमें तिल, तंडुलहों । पाठीनशब्दमेंबोदालमत्स्य समझना चाहिये । अन्यत्र भी कहा है । यथा—कन्दपक्व, स्नेहपक्व, घृतसम्पृक्त पायस और इच्छानुसार मन को प्रियनैवेद्य बारम्बार प्रदान करै कन्दपक्व शब्द में भ्रष्ट

कन्दुपक्कं भृष्टतण्डुलपृथुकादिकम् स्नेहपक्वं लड्डुकादि ॥

कुमारीकल्पेऽपि—

ताम्बूलं च सकर्पूरं नारिकेलं सशर्करम् । पायसं सघृतंचैव आर्द्रकं सगुडं तथा ॥ सतण्डुलं तिलं चैव दधि चैवं सशर्करम् । जम्बीरं पनसं चैव आम्रातक फलं तथा । कदलीं तिन्तिड़ीं चैव श्रीफलं फलमुत्तमम् । करंजं वकुलंचैव तालं खर्जूरमेव च ॥ अन्यानि च सुगन्धीनि स्वादूनि च फलानि च ॥

मुण्डमालायामपि—

दधि क्षीरं गुड़श्चान्नं पायसं शर्करान्वितम् । पायसं क्षौद्र-मांसंच नारिकेलं समोदकम् । शशकं मेषकं चैव आर्द्रकंच सश-र्करम् । शालमत्स्यंच पाठीनं शकुलं गडकं तथा ॥ मद्गुरं चेलिषं दद्यात् मांसं माहिषमेव च । पक्षिमांसं वरारोहे ! डिम्बं नानासमुद्भवम् ॥ कृष्णच्छागं महामांसं गोधिकां हरिणीं तथा । जलजे मत्स्यमांसे च गण्डकीमांस मेव च ॥ नानाव्यञ्जनदुग्धानि व्यञ्जनानि बहूनि च ॥

नैवेद्यपात्रं यथा । यामले—

तैजसेषु च पात्रेषु सौवर्णे राजते तथा । ताम्रे वा प्रस्तरे वापि

तण्डुल पृथूकादि जानना स्नेह पक्व शब्द में लड्डूकादि । कुमारीकल्प में भी कहा है । यथा कर्पूर सहित ताम्बूल शर्करा के संग नारिकेल [नारियल] घृत सहित खीर गुड सहित अदरख तण्डुल सहित तिल शर्करा सहित दधि, जम्बीर, (नींबू) पनस [कटहर] आम्रतक (अम्बाडा) कदली तिन्तिडी (विपाबिल) श्रीफल,ी करञ्ज, बकुल, ताल, खजूर एवं अन्यान्य सुस्वाद और सुगन्धित सम्पूर्ण फल प्रदान करै । मुण्डमाला में कहा है दधि, दुध, गुड सहित पायस, क्षौद्रमांस, नारिकेल, मोदक अन्न, खरगोश, मेष (भेड) शर्करा सहित अदरख, शाल, पाठीनमत्स्य, शकुल, गडक मद्गुर, इलिष, भैंसे का मांस, पक्षीमांस, नानासम्भूत, डिम्ब कालाबकरा, महामांस, गोधिका हरिणी मांस, गण्डकी मांस एवं अनेक व्यञ्जन और दूध प्रदान करै । नैवेद्य पात्र यथा–यामले विविध तैजस पात्र में अथवा सुवर्ण के पात्र में वा चांदी के पात्रमें या तांबे के पात्र में किंवा पत्थर और पद्मपत्र में अथवा यज्ञदारुमय पात्र में नैवेद्य कल्पना करै । हे महेश्वरि ! इन सबका अभाव होने से स्वहस्तगठित उपयुक्त ऊर्ध्व-

पद्मपत्रेऽथवा पुनः। यज्ञदारुमये वापि नैवेद्यं कल्पयेत् बुधः । सर्वभावे तु माहेशि ! स्वहस्तघटितं यदि ॥ यद्योग्यमर्घ्यपात्रे तु तद्विधाय निवेदयेत् । अन्यैस्तोयैर्यदुत्सृष्टमर्घ्यपात्र स्थितंच यत् ॥ न गृह्णाति महादेवी दत्तं विधिशतैरपि ।

अथ कृताञ्जलिः ! श्रीदक्षिणकालिके ! आवरणं ते पूजयामीति आज्ञां गृहीत्वा अग्नीशासुरवायव्यसंमुखे दिक्षु च देव्याःषडङ्गे वा षडङ्गदेवतां ध्यात्वा न्यासोक्तमन्त्रेण यजेत् ।

तदुक्तम् कुलार्णवे-

अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्ष्वङ्गपूजनम् । इति ।

तन्त्रान्तरे च-

इष्ट्वा हृदयमाग्नेय्यामैशान्यान्तु शिरो यजेत् । नैर्ऋत्यांच शिखा पूज्या वायव्यां कवचं यजेत् ॥ अभ्यर्च्य पुरतो नित्यं दिक्षु वास्त्रम-थार्चयेत् । अपिच । वन्ह्यादिदिक्षु वा पूज्यातस्तदङ्गेषु च क्रमात् ॥

ध्यानं यथा-

तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः । वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवस्त्रियः ॥ अथ गुरुपंक्तित्रयं पूजयेत् ।

पात्र में नैवेद्य निवेदन करै । इनके विना अन्य पात्र में शतशतविधि अनुसार प्रदान करने से महादेवी उसको ग्रहण नहीं करती । अनन्तर हाथ जोड़कर " श्री दक्षिणकालिके " इत्यादि कह, आज्ञाग्रहण कर अग्निकोण, वायुकोण, नैर्ऋतकोण और ईशानकोण के सम्मुख एवं दिक्समूह अथवा देवी के षडङ्ग में षडङ्ग देवता का ध्यान करता हुआ न्यासोक्त मंत्र से पूजा करै । कुलार्णव में कहा है यथा-अग्निकोणादि चतुष्कोण मध्यभाग और दिशाओं में अङ्ग पूजा करनी चाहिये। तन्त्रांतर में भी कहा है अग्निकोण में हृदय की पूजा करके ईशानकोण में मस्तक, नैर्ऋतकोण में शिखा और वायुकोण में कवच की पूजा करनी चाहिये । पूजा के अन्त में सम्मुख सब ओर अस्त्रकी पूजा करनी चाहिये । फिर कहा है, अग्नि इत्यादि दिशाओं में उन उन सब अङ्गों सहित यथाक्रम से देवी की पूजा करै । ध्यान यथा-तुषार इत्यादि । अनन्तर तीन गुरु पंक्तियों की पूजा करनी होती है । शारदा टीका में कहा है यथा-वायुकोण से ईशानकोण पर्य्यन्त गुरुपंक्ति की पूजा करै । इसमें असमर्थ होने से गुरु चतुष्टय

तदुक्तं शारदाटीकायाम्—

वायव्यादीशपर्य्यन्तं गुरुपंक्तिं समर्चयेत् । तदशक्तौ गुरुचतुष्टयं तदशक्तौ गुरुत्रयम् ॥

तद्दैवतं ऋषिमात्रं वा । अथ गुरुपंक्तिर्यथा । तदुक्तं भावचूड़ामणौ—

भैरव उवाच—

मातर्देवि ! महामाये ! बन्धमोक्षप्रवर्तिनि ! । इदानीं श्रोतुमिच्छामि गुरुक्रममनुत्तमम् ॥

देव्युवाच—

गुरुक्रमस्तु बहुधा मन्त्रविस्तारगौरवात् । कालीनामप्यनादित्वात् तत् कथं कथयामि ते ॥ न ज्ञात्वा गुरुकुलं ह्येव नष्टमार्गो भविष्यसि । नष्टमार्गो नात्र विद्ये न तादृक् फलगोचरम् ॥ गुरूणां शिष्यभूतानां नास्ति चेत् सन्ततिक्रमः। मन्त्रतन्त्राश्च विद्याश्च निष्फला नात्र संशयः॥ विंशतिं पुरुषान् वापि नवसप्तत्रयोऽपि वा । अज्ञात्वा गुरुवंशानां शिष्यश्च नष्टसन्ततिः ॥ स्ववंशादधिकं ज्ञेयं गुरुवंशं महाशुभम् । जनकादधिको ज्ञेयो मन्त्रदश्च महेश्वर ! ॥ तस्मात् सर्वत्र देवेश ! संक्षेपात् शृणु तान् गुरून् । आदौ सर्वत्र देवेश ! मन्त्रदः परमोगुरुः ॥

और इसमें भी असमर्थ होने से गुरुत्रय अथवा तद्दैवत ऋषिमात्र की पूजा करनी चाहिये।

अब गुरुपंक्ति लिखी जाती है। भाव चूड़ामणि में कहा है, यथा—भैरव ने कहा है हे मातः देवि महामाये ! तुम बन्धन और मुक्ति की हेतु हो अब गुरुक्रम श्रवण करने की मेरी इच्छा है देवी ने कहा भगवती काली अनादि हैं। उनके मन्त्र भी अनेकप्रकार हैं इसलिये गुरुक्रम भी अनेक विधि में विच्छिन्न है अतएव किसप्रकार उसका वर्णन करूँ? हे देव ! कुलगुरु को न जानने से नष्टमार्ग होना होता है। नष्टमार्ग की विद्या साधन में किसी प्रकार का फल उत्पन्न नहीं होता। गुरु के वंश को अपने वंश की अपेक्षा भी श्रेष्ठ जानना चाहिये । हे महेश्वर! जो मन्त्र देता है उसको पिता की अपेक्षा भी अधिक जानना चाहिये। अतएव हे देवेश ! संक्षेप से गुरु गणों का विषय श्रवण करो। प्रथम सर्वत्र मंत्रदाता गुरु ही सब से श्रेष्ठ हैं । तुम परापर गुरु और

परापरगुरुस्त्वं हि परमेष्टिरहं ततः । सर्वतन्त्रेषु विद्यासु स्वयं प्रकृतिरूपिणी ॥ ततः पुरुषरूपश्च ततः स्वगुरुसन्ततिः । तत्रैव हि मदंशाश्चमद्भक्ताश्च विशेषतः ॥ शैवमन्त्रेषु पुरतः सर्वत्रसिद्धिदायिकः । दिव्यौघा गुरवो देव ! सिद्धौघा गुरवस्तथा ॥ मानवौघाः समासेन कथयामि तवाग्रतः । तत्रादौ कालिका देवी तस्याः शृणु गुरुक्रमम् ॥ महादेवी महादेवस्त्रिपुरा चैव भैरवः । दिव्यौघाः गुरवः प्रोक्ताः सिद्धौघान् कथयामिते ॥ ब्रह्मानन्दः पूर्णदे...श्चलश्चित्तश्च लाचनः । कुमारः क्रोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनाः ॥ माया मायावती चैव मानवौघान् शृणु प्रिये ! ॥ विमनः कुशलश्चैव भीमः शूरः सुधाकरः । मीनो गोरक्षकश्चैव भोजदेवः प्रजापतिः ॥ मूलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरहुताशनौ । समरानन्दसन्तोषौ कालिकागुरवः स्मृताः ॥

अथ देवीं प्रति भैरववाक्यम्—

तदुक्तं तन्त्रार्णवे—

दिव्या वसन्ति ये नित्यं सिद्धिभूमाविहापि च ॥ मानवौघा मानवेषु मम रूपधराः सदा । आनन्दनाथशब्दान्ता गुरवः सर्वसिद्धिदाः ॥ स्त्रियोऽपि गुरुरूपाश्च अम्बान्ताः परिकीर्त्तिताः । मानवौघान्तिके देवि ! स्वगुरुं परि..जयेत् ॥

मैं परमेष्ठी गुरु हूं सम्पूर्ण तंत्र और विद्या में हूं मैं ही स्वयम् प्रकृति और तिसके पीछे अपने गुरु की सन्तति हूं उसमें भी विशेष करके मदीय भक्तगण मेरे अंश स्वरूप हैं ॥ हे देव ! दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ भेदसे गुरु तीन प्रकार के हैं संक्षेपसे तुम्हारे निकट इनका वृत्तान्त कहती हूं । तिनमें देवी कालिका प्रथम है । तिनका गुरुक्रम श्रवण करो । महादेवी और महादेव एवं त्रिपुरा और भैरव यह दिव्यौघ गुरु हैं । सिद्धौघ गुरु का वृत्तान्त कहती हूं, श्रवण करो । ब्रह्मानन्द, पूर्णदेव, चलचित्त, लोचन, कुमार, क्रोधन, वरद, स्मरदीपन, माया, मायावती, यह मानवौघगुरु हैं और विमल, कुशल, भीम, शूर, सुधाकर, मीन, गोरक्षक भोजदेव, प्रजापति, मूलदेव, रन्तिदेव विघ्नेश्वर, हुताशन, समरानन्द, सन्तोष यह कालिका गुरु हैं ॥

देवी के प्रति भैरववाक्य । यथा—तन्त्रार्णवे–जो मेरा रूप धारणपूर्वक मनुष्यगण सिद्ध भूमि में और इस लोक में बास करते हैं वह दिव्यस्वरूप गुरुगण मानवौघ नाम से परिगणित हैं उनको आनन्दनाथ कहते हैं वह सर्वविध सिद्धि विधान करते हैं । इनमें गुरुरूपिणी स्त्रियों को अम्बा शब्द से निर्देश करते हैं । हे देवि ! मानवौघ

अथवा प्रातकृत्येषु यत्सामान्यगुरुकुलमुक्तं तदेवार्चयेत् ।

तद्यथा भावचूड़ामणौ-

अथवा सर्वशास्त्रेषु गुरवः पूर्वसूचिताः ।

कुलचूड़ामणौ च-

एकचित्तमना भूत्वा शृणु वत्स ! समाहितः । येषु येषु च मंत्रेषु ये ये ऋषिगणा स्मृताः ॥ ते ते पूज्याः सपर्य्यादौ संक्षेपाद्गदितं मया अज्ञात्वा गुरुकुलं वा गुरुत्रितयमर्चयेत् ॥ चतुष्टयं वा सङ्कोचो न च कार्य्यस्ततः परम् । गुरुःपर गुरुश्चैव परापरगुरुस्तथा ॥ परमेष्टि गुरुश्चैव कथिता गुरवस्तव । गुरुपूजां विना वत्स ! यदि पूजां समाचरेत् ॥ निष्फला मम सा पूजा ज्ञातव्या साधकोत्तमैः । निर्गुणं तत्तदेव स्यात् सगुणं कुलपूजनम् ॥ कुलावलोकनं चेत् स्यात् कुतः प्रोक्षणमार्जनम् । क्व च स्थानं क्व वा शुद्धिः क्व च न्यासविशोधनम् ॥ दीक्षाप्रभुः कुलीनः स्यात् कुलात्मा वटुकेश्वरः । स्वगेहे गुरुमानीय कुलरूपं गुरुं स्मरेत् ॥ गुरुक्रमञ्च कथितं गोपनीयं प्रय नतः ॥ न देयं यत्र कुत्रापि योगभ्रष्टे च शिष्यके । वैष्णवे शाक्तितन्त्रे वा गाणपत्येऽथवा पुनः ।

गुरु के अन्तिक में अपने गुरु की पूजा करे । अथवा प्रातकृत्य में जिन सामान्य कुल-गुरु का उल्लेख है, तिनको अर्चना करनी चाहिये । भाव चूडामणि में कहा है । यथा—अथवा सम्पूर्ण शास्त्र में ही गुरुगण पूर्व सूचित हुए ह । कुलचूडामणि में कहा है, हे वत्स ! एक चित्त, एक मन और सावधान होकर श्रवण करो । जिस जिस मन्त्र के जो जो ऋषि हैं, पूजा के प्रथम ही उनकी पूजा करनी चाहिये । कुलगुरु के न जानने से गुरु त्रितिय वा चतुष्टय की पूजा करे । इसमें किसी प्रकार का सकोच न करे । गुरु, परमगुरु, और परापर गुरु इन सबका वृत्तान्त तुम्हारे निकट वर्णन किया । हे वत्स ! गुरु की पूजा न करके जो पूजा करी जाती है उस दोष की शान्ति के लिये कुलपूजा करे । जिस स्थान में जो निगुण है, इस प्रकार पूजा करने स वह सगुण होती है । यदि कुल की दृष्टिपात हो, तो प्रोक्षण और मार्जन का फिर क्या प्रयोजन है ? इसके अतिरिक्त स्थानशुद्धि और न्यास शोधन की भी क्या आवश्यकता है ? कुलीन ही दीक्षा का प्रभु और कुलात्मा ही साक्षात् बटुकेश्वर है । इसकारण गृह में गुरु को लाकर कुलगुरु रूप से भावना करै । तुम्हारे निकट गुरुक्रम का वर्णन किया । अत्यन्त यत्न सहित इसको गुप्त रक्खै । जिस किसी को प्रदान न करै । वैष्णव

निजं गुरुं परं ध्यात्वा ततो गुरुचतुष्टयम् ॥ पूजयित्वा यजेद्देवं न च संकोचमाचरेत् ॥

श्रीमहादेव्यम्बायाः श्री पादुकां पूजयामि नम इति संपूज्य गुरुपात्रामृतेन त्रिः सकृद्वा तर्पयेत् । एवं महादेवानन्दनाथ गुरुपादुकां पूजयामि नम इति संपूज्य पूर्ववत् पूजयेत् । एवं क्रमेण गुरुपंक्तित्रयं संपूज्य मानवौघान्त स्वगुरुं गुरोर्गुरुं तद्गुरुं च पूजयेत् तर्पयेच्च । ततो रश्मिवृन्ददेवताः पूजयेत् यथा बाह्ये त्रिकोणस्य सम्मुखे ओं कालिकायाः श्रीपादुकां पूजयामि नमः । इति पाद्यादिभिः संपूज्य योगिनीपात्रामृतेन तत्त्वमुद्रया तर्पयेत् । एवं देव्या वामे ओं कपालिनीं दक्षे कुल्लां तदन्तास्त्रिकोणे ॐ कुरुकुल्लां ॐ विरोधिनीं ॐ विप्रचित्ताम् । तस्यान्तस्त्रिकोणे ॐ उग्रां ॐ उग्रप्रभां ओं दीप्तां तदन्तस्त्रिकोणे ओं मात्रां ओं मुद्रां ओं मितां पाद्यादिना त्रिः संपूज्य पूर्ववत्तर्पयेत् । ततोऽष्टदलपद्मे पूर्वादिक्रमेणाष्टशक्तिः पूजयेत् । यथा ओं आं ब्रह्माण्याः श्रीपादुकां पूजयामि नम इति पाद्यादिभिः संपूज्य तर्पयेत् । अग्नौ ओं ईं नारायणीं दक्षिणे ओं ऊं माहेश्वरीं नैऋत्यां ओं ॠं चामुण्डां वारुणे ओं लृं कौमारीं वायौ ओं ऐं अपराजिताम् उत्तरे ओं औं वाराहीम् ईशे अं अः नारसिंहीम् पूर्ववत् संपूज्य तर्पयेच्च

शक्तितन्त्र अथवा गाणपत्य में अपने गुरुका ध्यान करके फिर गुरु चतुष्टय की पूजा करके देवयजन में प्रवृत्त होना चाहिये । किसी प्रकार भी संकोच न करै नमस्कार करनेके पीछे श्रीमहादेवी अम्बाकी श्रीपादुका पूजकर गुरुपात्रस्थित अमृत से तीनवार वा एकवार तर्पण करै इसप्रकार महादेवानन्द नाथ गुरुकी पादुकामें नमस्कारपूर्वक पूजा करके पूर्ववत् देवपूजा और तर्पण करना चाहिये । इस प्रकार क्रमानुसार विधिसे गुरु पंक्तित्रयकी पूजा करके, मान वौघान्त स्वगुरु, गुरुके गुरु और तिसकेगुरु पूजा करनी चाहिए । पूर्ववत् तर्पण भी करै । फिर रश्मिवृन्द देवताओं की पूजा में प्रवृत्त होना चाहिये । यथा-बाह्य में त्रिकोण के सम्मुख ओंकार उच्चारण करके काली की श्रीपादुको पूजता हूं नमस्कार' कह इसप्रकार पाद्यादि द्वारा पूजाकर तत्वमुद्रा की सहायतासे योगनी पात्रस्थ अमृत द्वारा तर्पण करै इस प्रकार देवी के वाम में कपालिनी, दक्षिण में कुल्ला, तदन्तर्वर्त्ती त्रिकोण में कुरुकुल्ला, विरोधिनी और विप्रचित्ता, तिसके अन्तस्थ त्रिकोण में उग्रा उग्रप्रभा और दीप्ता तिस के अन्तस्थ त्रिकोण में मात्रा मुद्रा और मिता, इन सब देवियों की पाद्यादि सहित ओंकार समुच्चारण करने के पीछे पूर्ववत् तर्पण में प्रवृत्त होना चाहिये । अनन्तर अष्टदल पद्म में पूर्वादि क्रम से अष्टशक्ति की पूजा करै । यथा—'ओं आं ब्रह्माणी इत्यादि' श्रुति में भी कहा है-दो तीन,

तदुक्तं अतो द्वितीयचतुःषट्‌काष्टादशद्वादशचतुर्दशषोड़शस्वरभेदेन प्रथममेव प्रणवेण आवाहनञ्च तेनैव पूजनं विदुः।

कुमारीकल्पेऽपि—

ब्रह्माद्याः पूजयेत् पत्रे पत्राग्रे भैरवान् यजेत्। लोकपालांस्तथा बाह्ये तदस्त्राणि च तद्बहिः॥

अथ भैरवाः। यथा ज्ञानार्णवे—

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधश्चोन्मत्तभैरवः। कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्टमः स्मृतः॥

एषां मंत्रो यथा—

ह्रस्वार्णा विन्दुसंयुक्ता वाङ्मायापूर्वभूषिता। इति।

अत्र प्रयोगः। पूर्वादिवामावर्त्तेन ऐं ह्रीं अं असिताङ्गभैरवं श्री पादुकां पूजयामि नमः ऐं ह्रीं इं रुरुभैरवं ऐं ह्रीं उं चण्डभैरवं ऐं ह्रीं ऋं क्रोधभैरव ऐं ह्रीं लृं उन्मत्तभैरवं ऐं ह्रीं एं कपालिभैरव ऐं ह्रीं ओं भीषणभैरवं ऐं ह्रीं अं संहारभैरवं पूजयेत्तर्पयेच्च। ततो भूपुरे इन्द्रादि लोकपालान् यथा पूर्वादितः नां इन्द्र श्रीपादुकां एवं वां वन्हि यां यम क्षां निऋति वां वरुण यां वायु शां कुवेर हां ईशाननिऋति वरुणयोर्मध्ये ह्रीं अनन्त इन्द्रेशानयोर्मध्ये आं ब्रह्मणः श्रीपादुकामित्यादि। तद्बहिः तदस्त्राणि पूजयेत्तर्पयेच्च। तथा वं वज्र श्रीपादुकाम् एवं शं शक्ति। दं दण्ड। खं खड्ग। पां पाश। अं अंकुश। गं गदा।

चार, छै, आठ, दश बारह, चौदह वा सालह स्वर—भेद से प्रथम ही प्रणव द्वारा आवाहन और पूजा करनी चाहिये। कुमारीकल्प में भी कहा है, पत्र में ब्रह्मादि की-पत्र के अग्र में भैरवादि की. बाहर समस्त लोकपालों की और उसके बाहर उन के सब अस्त्रा की पूजा करनी चाहिये॥

अब भैरव गणों का वृत्तान्त लिखा जाता है। ज्ञानार्णव में कहा है, असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध उत्तम, कपाली, भीषण, और संहार, यह आठ भैरव हैं, इनका मंत्र यथा प्रथम वाग् वीज अर्थात् 'ऐं' और माया वीज अर्थात् "ह्रीं" प्रयोग करके फिर विन्दु अर्थात् अनुस्वार युक्त ह्रस्व वर्ण अर्थात् अ ई, इत्यादि संयुक्त करै, प्रयोग यथा-पूर्वादि वामावर्त्त में "ऐं ह्रीं अं" इत्यादि विधान से समस्त भैरव की पूजा और तर्पण करके भूपुर में इन्द्रादि समस्त लोकपालों की पूजा करै। यथा-'नां इन्द्र श्रीपादुका इत्यादि"। अनन्तर उनके सब अस्त्रों की पूजा करै। यथा— 'वं वज्र श्री पादुकां

शूं शूल । पं पद्म । चं चक्र श्रीपादुकामित्यादि अथैवं क्रमेण सर्वावृति देवतानुलेपनगन्धपुष्पधूपदीपद्रव्यादिभिः संपूज्य त्रिः सकृद्वा पूजयेत् तर्पयेच्च ।

तदुक्तं कुलार्णवे—

त्रिवारं तर्पयेद्वापि सकृद्वापि यथेच्छया ।

कालीतन्त्रे—

सर्वासामपि दातव्या बलिपूजा तथैव च ।

अनुलेपनकं गन्धं धूपदीपौ च पालकम् । त्रिस्त्रिः पूजा प्रकर्त्तव्या सर्वासामपि साधकैः ॥

अतएव सर्वासां बलीनां शक्तीनां पूजने त्रिवारमवश्यमेव दर्शयेत् । ततो देव्या अस्त्रं पूजयेत् यथा । देवीवामोद्र्ध्वे हस्ते खं खड्गम् अधो मुं मुंडं दक्षोद्र्ध्वे अं अभयम् अधोवं वरं पूजयेत्तर्पयेच । ततः षडङ्गं विन्यस्य पूर्ववद्देवीं ध्यात्वा गन्धपुष्पाक्षतकुसुमधूपदीपं दत्त्वा पूर्ववद्घण्टां वादयन् धूपं दीपं दर्शयेत् । ततः पानीयादिद्रव्यं दत्त्वा पूर्वन्नैवेद्या-दिकं निवेद्य त्रिस्तर्पयेत् । योन्यादिमुद्रां दर्शयेत् ततः पुष्पाञ्जलि-त्रयेण पञ्चभिर्वा देवीं सायुधसपरिवारमहाकालसहितश्रीपादुकां पूजयामि नम इति संपूज्य त्रिस्तर्पयेदिति ।

इत्यादि" । अनन्तर इस प्रकार क्रमानुसार अनुलेपन, गन्ध, पुष्प, धूप दीप और द्रव्यादि द्वारा सब आवृति देवताओं की पूजा करके तीन वार वा एक वार पूजा और तर्पण करै । कुलार्णव में इसी प्रकार कहा है । यथा—तीन वार वा एक वार जैसी इच्छा हो तर्पण करे । कालीतंत्र में कहा है सब को बलि, पूजा, अनुलेपन, गन्ध, धूप और दीप प्रदान एवं तीन तीन बार पूजा करे । अनन्तर देवी अस्त्र की पूजा करनी चाहिये । यथा—देवी के वाम और ऊर्ध्व हस्त में 'खं' होने से खड्ग की, अधोभाग 'मुं' होनेसे मुण्डकी, दक्षिणहस्त के ऊर्ध्व में 'अं' होने से अभय की और अधोभागमें में 'वं होने से वरकी पूजा और तर्पण करै । फिर षडङ्गविन्यास करके पूर्वकी समान देवी का ध्यान, गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुसुम, धूप और दीपदान एवं पूर्ववत् घण्टा वजाकर धूप, दीप दिखानी चाहिये । अनंतर पानी आदि द्रव्यदान करके पूर्ववत् नैवेद्य इत्यादि निवेदन और तीनवार तर्पण करे तिस काल में योन्यादि मुद्रा दिखानी चाहिये । अनन्तर तीन वा पांचवार पुष्पाञ्जलि दे देवीकी यथोक्त विधान से पूजाकर तीनवार तर्पण करै कालीतंत्र में भी कहा है, इस प्रकार पूजा करके मूलमंत्र से यथा विधि देवीके उद्देश से यथा शक्ति नैवेद्यादि वारम्वार निवेदन करे । अनन्तर दशवार

कालीतन्त्रेऽपि—

एवं पूजां पुरा कृत्वा मूलेनैव यथाविधि । नैवेद्यादीन् यथाशक्त्या दद्याद्देव्यै पुनः पुनः ॥ ततो वै दशवारन्तु दीपं दत्वा च साधकः । पुष्पादिकं पुनर्दद्यान्मूलेनैव यथाविधि ॥

कुमारीकल्पेऽपि—

ततो नीराजनं कुर्यात् दशवारं प्रदीपकैः ।

अस्यार्थः आरात्रिकविधिना दीपान् प्रज्वाल्य देवतामस्तकान्तं नीत्वा परिभ्राम्य नीराजनं कुर्यादित्थं दशधा । आरात्रिकविधानन्तु श्रीतत्त्व चिन्तामणावनुसन्धेयम् । अथ पञ्चमाद्यैर्देवीं परितोषयेत् । तदुक्तम् ।

पूजयेच्च महादेवीं सुरामांसझषादिभिः । अन्नैर्नानाविधैश्चापि तोषयेत् साधकोत्तमः ॥

अथ मुण्डमालातन्त्रे-सुरादानप्रशंसा ।

सुरादानेन देवेशि ! महायोगीश्वरो भवेत् । सुरा तु त्रिविधा देवि ! स्फाटिकी डाकिनी तथा ॥ काञ्जिकी स्फाटिकीदाने धनवृद्धि-रनुत्तमा । डाकिनीदानमात्रेण वैश्यः सर्वो भवेत् ध्रुवम् ॥ काञ्जिकी-सुरया देवि ! योऽर्चयेत् परमेश्वरीम् । गुटिकाञ्जनसम्भारि मारणो-च्चाटनादिभिः ॥ महासिद्धीश्वरो भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि । अर्घ्ये दत्ते महेशानि ! महासिद्धिरनुत्तमा ॥

अथोत्तरे त्रिकोणमालिख्य मांसतिलरक्तपुष्पभक्तानि एकीकृत्य तत्र संस्थाप्य ओं ह्रीं श्रीं दक्षिणायै कालिकायै स्वाहा एष बलिर्नम

दीपदान करके मूलमन्त्रानुसार ही यथाविधि पुष्पादि प्रदान करे । कुमारीकल्प में भी कहा है, अनन्तर प्रदीप द्वारा नीराजन करना चाहिये । तदनन्तर पञ्च मकारादि द्वारा देवी का परितोष करे । जैसा कहा है । यथा—हे देवि ! महादेवि पार्वती की मद्यमांस औरमत्स्यादि अनेक प्रकार अन्न द्वारा पूजा और उनको संतुष्ट करके इत्यादि । मुण्डमाला तन्त्र में सुरा दान की प्रशंसा करी है । यथा—हे देवेशि ! सुरा-दान करने से महायोगीश्वर होताहै । हे देवि ! सुरा तीन प्रकारकी है यथा स्फाटिकी, डाकिनी और काञ्जिकी स्फाटिकी सुरा दान करने से अनुत्तम धन वृद्धि और डाकिनी सुरा दान करने से समस्त वशीभूत होते हैं जो व्यक्ति काञ्जिकी सुरा द्वारा परमेश्वरी की पूजा करता है, वह महासिद्धीश्वर होकर अयुतकल्प तक स्वर्ग में वास करता है हे महेशानि ! अर्घ्यदान करने से अनुत्तम महासिद्धि लाभ होती है । अनन्तर उत्तर में त्रिकोण लिखकर मांस, तिल, रक्तपुष्प, भक्त यह सब एकत्र करके उस में स्थापन और यथोक्त मन्त्र से उत्सर्जन पूर्वक नैर्ऋत कोण में धारण करे।

इति उत्सृज्य नैर्ऋत्यां धारयेत् ॥

तदुक्तम् । पूजान्ते भोजनादौ वा बलिंदद्याच्च साधकः । इति । बलिमुत्थाप्य नैवेद्यं नैर्ऋत्यां दिशि धारयेत् ॥

ततः प्राणायामादिकं कृत्वा काम कलां विभाव्य शिरसि गुरुं ध्यात्वा हृदि देवीं भावयन् मनसा अष्टोत्तरसहस्रं रहस्यमालया वर्णमालया करमालया वा प्रजप्य पुनः प्राणायामं विधाय अर्घ्यजलं पुष्पादिकं गृहीत्वा ।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवी ! त्वत्प्रसादात् सुरेश्वरी ॥

इत्यनेन तेजोमयं जपफलं देव्या दक्षहस्ते समर्पयेत् ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे-

ततः सावहितो मन्त्री गुरुं नत्वा शिरःस्थितम् । देवीं ध्यात्वा चाष्टोत्तरसहस्रं प्रजपेन्मनुम् ॥ तेजोमयं जपफलं देव्या हस्ते समर्पयेत् । गुह्यातिगुह्यगोप्त्रि त्वमिति मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥

अथ रहस्यमाला। यथा तदुक्तं कालीतंत्रे-

दन्ताक्षमालया देवि ! राजदन्तेन मेरुणा । प्रजपेदित्यर्थः ।

जैसा कहा है पूजा के शेष में वा भोजन के आदि में महेश्वरी को बलि प्रदान करनी चाहिये । अनन्तर उत्कृष्ट बलि उत्थापित करके नैर्ऋत दिशा में नैवेद्य धारण करै । तदनन्तर प्राणायामादि करके कामकला विभावन शिर में गुरु का ध्यान, हृदय में देवी की चिन्ता रहस्यमाल वा करमाला, अथवा वर्णमाला द्वारा मन मन में अष्टोत्तर सहस्र जप और पुनर्वार प्राणायाम सहित अर्घ्य जल और पुष्पादि ग्रहण पूर्वक तेजोमय जप फल, देवी के दक्षिण हाथ में समर्पण करे । समर्पण करने के समय इस प्रकार कहना चाहिये । हे देवि ! तुम गुह्यातिगुह्य गोप्ता हो । मेरा किया हुआ यह जप ग्रहण करो । इसके प्रभाव से मुझको सिद्धि प्राप्त हो कालीतन्त्र में भी कहा है अनन्तर साधक सावधान होकर मस्तक में गुरु को नमस्कार और देवी का ध्यान करके अष्टोत्तर सहस्रवार मन्त्र जप और तेजोमय जप फल देवी के दक्षिण हाथ में समर्पण करै । तिसकाल गुह्याति गुह्य गोप्ता इत्यादि मंत्र कहना चाहिये ।

अब रहस्यमाला का वृत्तान्त लिखते हैं । कालीतंत्र में कहा है, दन्त और अक्षमाला राजदन्त और मेरु द्वारा उपकरै दंतमाला अत्यंत दुर्लभ है । इसके द्वारा कालिका का

तस्य द्वादशपटलेऽपि—

दंतेन कालिकायास्तु पूर्वोक्ता भुवि दुर्लभा ।

इति मुण्डमालायांच—

नाडीभिर्ग्रथिता माला महासिद्धिप्रदा भवेत् ।

तत्रैव सर्वशक्तैः ।

नवांगुल्यास्थिमाला च ग्रथिता पर्वभेदतः । सर्वसिद्धिप्रदा मोक्षदायिनी वरवर्णिनी ! ॥ नाडीसंग्रथनं कार्य्यं रक्तेन वाससा तथा । सदा गोप्या प्रयत्नेन मातुश्च जारवत् प्रिये ! ॥

अथ वर्णमाला यथा—विशुद्धेश्वर महातन्त्रे ।

मालाविधानं परमं शृणु पार्वति ! तत्त्वतः । येनानुष्ठित मात्रेण मन्त्रः सिध्यन्ति तत्क्षणात् ॥ अनुलोमविलोमेन मन्त्रं जप्त्वा विधानतः । मन्त्रेणान्तरितं वर्णं वर्णेनान्तरितं मनुम् ॥ कुर्य्याद्वर्णमयीं मालां सर्वमन्त्रप्रदीपनीम् । चरम र्णं मेरुरूपं लङ्घयेन्न कदाचन ॥ रहस्यमेतत् परमं मयोक्तं ते यशस्विनी ! । त्वया गुप्ततरं कार्य्यं नाख्येयं यस्य कस्य चित् ॥

मतान्तरमुक्तं यामले यथा—

सविन्दुवर्णं मुच्चार्य्य पश्चात् मन्त्रजपेत् सुधीः । क्षमेरुकं जल्पयित्वा जपेत्तन्नातिलङ्घयेत् ॥ अनुलोमविलोमस्थक्लृप्तया वर्णमालया

जप करै । मुण्डमाला में कहा है, नाड़ी द्वारा ग्रथित माला महासिद्धि विधान करती है । उसमें ही लिखा है हे वरवर्णिनि ! नवांगुलि परमित अस्थिमाला सर्व्वसिद्धि प्रदान और मोक्ष विधान करती है रक्तवस्त्र द्वारा नाड़ी संग्रथन करना चाहिये । जननी के उपपतिके समान सर्व्वदा यत्नपूर्वक इसको गुप्त रक्खे ।

वर्णमाला यथा—विशुद्धेश्वर महातंत्र में कहाहै, हे पार्व्वती ! यथायथ विधान से मालाविधान श्रवण करो । यह अतीव श्रेष्ठ विषय है । इसके अनुष्ठान मात्र से ही तत्काल सब मंत्र सिद्ध होते हैं । मंत्रदाता के विभेद अनुसार अनुलोम विलोम क्रमसे मंत्रद्वारा वर्णको और वर्ण द्वारा मंत्रको अंतरित करके 'वर्णमयीमाला बनावे । इसके द्वारा सम्पूर्ण मंत्र अनुप्राणित होते हैं । मेरुरूप चरम वर्णका कभी उल्लंघन न करै । हे यशस्विनि ! मैंने तुम्हारे निकट यह परम रहस्य कीर्त्तन किया । तुम इसको अत्यन्त गुप्त रक्खो । जिस किसीको प्रदान न करना यामल में अन्य प्रकार कहा है यथा-सिंदूर सहित वर्णोच्चारण पूर्व्वक फिर मंत्रका जप करे क्षरूपमेरुजल्पन पूर्व्वक जप कर-

जपेन्मेरुं समाश्रित्य लङ्घनं तस्य नाचरेत् ॥ अष्टोत्तरजपादादौ वर्गाष्टकं प्रयोजयेत् ।

अकचटतपयश इत्ययं चाष्टवर्गः ।

मुण्डमालायाञ्च–

मेरुहीना या माला मेरुलङ्घा च या भवेत् । अशुद्धातिप्रकाशाच्च सा माला निष्फला भवेत् ॥

अथ करमाला यथा ।

तदुक्तम्—बृहत्श्रीक्रमे—

तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् स तु पापकृत् । अनायामास्त्रयं पर्व तर्जनीमूलपर्वणि ॥ जपेदित्यर्थः ।

मुण्डमालायाञ्च–

अत्रांगुलिजपं कुर्य्यात् सांगुष्ठांगुलिभिर्जपेत् । अंगुष्ठेन विना कर्म कृतं तदफलं भवेत् ॥ आरभ्यानामिकामध्यात् प्रादक्षिण्यक्रमेण तु । तर्जनीमूलपर्य्यन्तं करमाला विधीयते मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन् अनामामूल पर्वतः । मेरुलङ्घनदोषात्तु अन्यथा जायतेफलम् ॥ मध्यमा त्रितयाग्राह्या अनामामूल मेव च । अनामामध्यपर्वात्र मेरुं कृत्वा न लङ्घयेत् ॥ तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत्तु भ्रमान्नरः । चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

ना चाहिये । उसको उल्लंघन न करै । मेरु अर्थात् सकार आश्रय करके अनुलोम विलोम का क्रमानुसार जप करै उनको उल्लंघन न करै । आदि में अष्टवर्ग अर्थात् अ, क, च, ट, त, प, य, श, प्रयोग करके अष्टोत्तर जप करै । मुण्डमाला में कहा है– मेरुहीनमाला जिस प्रकार अशुद्ध होने से निष्फल होती है, मेरुलंघा माला से भी इसी प्रकार कोई फल लाभ नहीं होता ।

करमाला यथा–बृहत् श्रीक्रम में कहा है, जो व्यक्ति तर्जनी के अग्र में वा मध्य में जप करता है वह पाप करता है । अपने तीन पर्व कनिष्ठा के तीन पर्व मध्यमा के तीन पर्व और तर्जनी का मूल पर्व, यह सब ही जप में प्रसिद्ध हैं । मुण्डमाला में कहा है– अगुली द्वारा जपकरै । अंगुष्ठ द्वारा जप करना चाहिये । अंगुष्ठ के बिना अनुष्ठित कर्म मात्रही निष्फल होता है । अनामिका के मध्यसे आरम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रमसे तर्जनी के मूल पर्यन्त करमाला विहित होती है । अनामा के मूलपर्वमें मेरुकी प्रदक्षिणा करना चाहिये । मेरु के उलंघन करने से उस दोषसे विपरीत फल संघटित होताहै । मध्यमा त्रितय और अनामा का मूलपूर्व ग्रहण करै । अनामा के मध्य पर्व को मेरु करके उलंघन न करै । जो व्यक्ति भ्रम के वश होकर तर्जनी के अग्र और मध्य में जप

हंसपारमेश्वरेऽपि–

पर्वद्वयमनामायाः परिवर्त्तन वै क्रमात् । पर्वत्रयं मध्यमाया स्तर्जन्येकं समाहरेत् शक्तिमाला समाख्याता सर्वतन्त्र प्रदीपिका । नित्यं जपं करे कुर्य्यात् नतु काम्यं कदाचन ॥

मुण्डमालातन्त्रे च–

जपं नित्यं करे कुर्य्यात् न तु काम्यप्रबोधनात् । अयं क्रमो निशायां करणीयः ।

बलिपूजादिकं सर्वं निशायां क्रियते यदि । तत्तदक्षयतां याति कालीविद्याप्रसादतः ॥

कुलचूडामणौ च—

रात्रौ पर्य्यटनं कुर्य्याद् रात्रौ शक्तिप्रपूजनम् । न करोति कथं देवी साधकः कौलिको भवेत् ॥

तदुक्तं कालिकापुराणे—

छागन्तु वामतो दद्यान्महिषं वितरेत् पुः । दक्षिणे वामतो दद्याद् अग्रतो देहशोणितम् ॥ नाभेरधस्ताद्रुधिरं पृष्ठभागस्य वा प्रिये ! । स्वगात्ररुधिरं दद्यान्न कदाचित्तु साधकः ॥ नोष्ठस्य चिबुकस्यापि नेन्द्रियाणां तथैव च । कण्ठाधो नाभितश्चोर्द्ध्वं हृद्भागस्य प्रयत्नतः ॥ पार्श्वयोश्चापि रुधिरं दुर्गायै विनिवेदयेत् । न च रोगादिकादङ्गान्ना-

---

करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल यह चार नष्ट होते हैं । हंसपरमेश्वर में भी कहा है । परिवर्त्तन द्वारा क्रमानुसार पर्वद्वय, मध्यमा के तीन पर्व और तर्जनी का एक पर्व समाहृत करै । इसका नाम सर्वतंत्र प्रदीपिका शक्तिमाला है । करमाला से नित्य जप करै काम्यजप न करै । रात्र में इस प्रकार अनुष्ठान करै । बलि पूजादि संपूर्ण कर्म सर्वदा रात्रि में किये जाते हैं । कालीविद्या के प्रसाद से वह अक्षय होते हैं । कुलचूड़ामणि में कहा हैं, रात्रि में पर्यटन और रात्रि में ही शक्ती की पूजा करै । कालीपुराण में कहा है. बामदिशा में बकरी और भैंसा प्रदान करै. दक्षिण बाम और अग्र में देह का रुधिर प्रदान न करै । हे प्रिय ! नाभि के अधोभाग का और पृष्ठ देश का रुधिर प्रदान करै । अपने गात्र का रुधिर कभी प्रदान न करै; होठ, कमर और इन्द्रियगणों का भी रुधिर प्रदान नहीं करना चाहिये । कण्ठ का अधः और नाभि का ऊर्द्ध हृद्भाग का रुधिर और दोनों पार्श्व का रुधिर यत्न सहित देवी दुर्गा को निवे-

न्यथाताच्च भैरव ! ॥ सौवर्णे राजते पात्रे कांस्याधारे च मानवः । निधाय देव्यै दद्यात्तु तदुक्तं मन्त्रपूर्वकम् ॥ यदूयदू हृदयसं जातं मांसं रक्तविधानतः । तिलमुद्गप्रमाणं वा देव्यै दद्यात्तु भक्तितः ॥ षण्मासाभ्यन्तरे भक्तः काममिष्टमवाप्नुयात् ॥

कुमारीकल्पेऽपि—

नराश्छागास्तथा मेषा महिषाः शशकास्तथा । एतेषाञ्चैव रक्तानि देयानि परमेश्वरि ! ॥

मुण्डमालायाञ्च—

ईषद्रक्तं घृतेनाक्तं निशायां दिवसेऽपि वा बलिं दद्याद्विशेषेण कृष्णपक्षे शुभे दिने ॥ छागे दत्ते भवेद्वाग्मी मत्स्ये दत्ते कविर्ध्रुवम् । महिषे धनवृद्धिः स्यान्मृगे भोगफलं लभेत् ॥ खगे दत्ते समृद्धिः स्याद् गोधिकायां महाफलम् ॥ नरे दत्ते समृद्धिः स्या दिष्ट सिद्धिरनुत्तमा । ललाटहस्तहृदयशिरोभ्रूमध्यदेशतः ॥ स्वदेहरुधिरे दत्ते रुद्रदेह इवापरः । चाण्डालबलिदानेन महासिद्धिः प्रजायते ॥

ईषद्रक्तमिति मत्स्यमांसविशेषणं तत्प्रकरणस्थ लिखित वचनात् । नरबलिस्तु न विप्रेण विधेयः ।

दन करै । रोगादि युक्त अङ्ग का रुधिर कभी प्रदान न करै । स्वर्ण चांदी अथवा कांसी के पात्र में रुधिर स्थापन पूर्वक अभिमन्त्रित करके देवी को दान करै । इस प्रकार रक्तदान करने से भक्त दो महीने में इष्ट कामना लाभ करता है । कुमारीकल्प में भी कहा है । नर, बकरी, भेड़, भैंसा और ख़रगोश इन सबका रक्त प्रदान करै । मुण्डमाला में भी कहा है, दिन में वा रात्रि में विशेष करके कृष्णपक्ष और शुभ दिन में कुछ एक रक्तवर्ण घृताक्त बलिप्रदान करै । बकरी का दान करने से वाग्मी होता है, मत्स्य का दान करने से निश्चय कवि होता है भैंस का दान करने से धनवृद्धि होती है, मृग का दान करने से भोगफल लाभ होता है पक्षी का दान करने से समृद्धि संग्रह होती है । गोधिका दान करने के महाफल लाभ होता है. नरबली का दान करने से समृद्धि और अनुत्तम इष्टसिद्धि प्राप्त होजाती है ॥ ललाट, हस्त, हृदय, मस्तक, भ्रूमध्य इन सब स्थानों से अपने देह का रुधिर प्रदान करने पर द्वितीय रुद्र होता है । चांडाल के बलिप्रदान करने से महासिद्धि संगठित होती है । ऊपर जो कुछ एक रक्तवर्ण कहा गया वह मत्स्यमांस का विशेषण है तत् प्रकरण लिखित वचनानुसार ही वह प्रमाणित होता है । ब्राह्मण को नर बलिदेना निषिद्ध है । यह यामल में कहा है । यथा

तदुक्तं यामले—

राजा नरवलिं दद्यान्न्यान्योऽपि परमेश्वरि ! ।

तत्रापि न तु विप्रेण । ततो वक्ष्यमाणमन्त्रेण देवीं स्तुत्वा प्रदक्षि-प्रदक्षिणत्रयं विधायाष्टप्रणामं कुर्य्यात् ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे—

ततो वै शिरासि पुष्पं दत्वाष्टाङ्गं प्रणम्य च ।

अथ प्रदक्षिणं यथा—

प्रसार्य्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः पुनः । दक्षिणं दर्शयन् पार्श्वं मनसापि च दक्षिणः ॥ त्रिधा च वेष्टयेत् सम्यक् कालिकायाः प्रदक्षि-णम् । सर्वान् कामानवाप्नोति पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥

अष्टाङ्गप्रणामो यथा—

दोर्भ्यां पद्भ्याञ्च पाणिभ्या मुरसा शिरसा दृशा । मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥

अशक्तौ प्रणामः यथा—

बाहुभ्याञ्च सजानुभ्यां शिरसा वचसा धिया । पञ्चाङ्गकः प्रणामः स्यादुदितः परिकीर्त्तितः ॥

ततः सामयिकैः सह पानादिकं कुर्य्यात् । यथा चक्राकारेण पंक्त्या-कारेण वा भिन्नासने साधकैः सह शक्तिभिश्च युग्मायुग्मक्रमेण पश्चा-

---

हे परमेश्वरि राजागण नरवलि प्रदान करैं । और कोई नहीं । इसी से लिखाजाता है, ब्राह्मण के पक्षमें नरवलिदान की विधि सिद्ध नहीं है ॥

अनन्तर वक्ष्यमाण मंत्र से देवी का स्तव और तीन प्रदक्षिणा करके अष्ट प्रणाम करै । जैसा कालीतंत्र में कहा है. अनन्तर मस्तक में पुष्प दान और अष्टाङ्ग, प्रणाम करके इत्यादि । तदनन्तर प्रदक्षिणा करे । यथा-दक्षिण हाथ पसार नम्र शिरा होकर दक्षिण पार्श्व प्रदर्शन पूर्व्वक मन मनमें कालिका देवी को प्रदक्षिणा के क्रम से तीन बार वेष्टन करे । तो सम्पूर्ण कामना की सिद्धि और पीछे मोक्षलाभ होती है । अष्टाङ्ग प्रणाम यथा-दो हाथ दो पैर दो पाणि मस्तक वक्ष,चक्षु,मन और वाक्य इन आठ अङ्गों सेप्रणाम करने को अष्टाङ्ग प्रणाम कहते हैं असमर्थ होने से प्रणाम यथा –दो बाहु और दो जानु, मस्तक वाक्य और बुद्धि इन पांच अङ्गों के द्वारा प्रणाम करने को पञ्चांग प्रणाम कहते हैं ।

अनन्तर सामयिक गणों के सहित पानादि करै । यथा-चक्राकार वा पंक्तिके आकार में भिन्नासन में साधकगणों के सङ्ग युग्म २ शक्ति सहित क्रमानुसार पश्चा-

सनेनोपविश्य सामयिक ललाटे चन्दनाक्षतं दत्त्वा शिवशक्तिबुद्धया पुष्पं दद्यात्। ततो यदि गुरुस्तिष्ठति तत्रादौ गन्धचन्दनपुष्पादिना तं प्रपूज्य तत् पात्रं तस्मै दत्त्वा प्रणमेत्। गुरोरभावे तत् पात्रं जले क्षिपेत्। ततः पात्रं शुद्धि सहितं शक्त्यै दत्त्वा सामयिकेभ्योऽपि ज्येष्ठानुक्रमेण वीरपात्रात् परामृतं शुद्धिसहितं दद्यात्। ततः सामयिकोऽपि भक्त्या हस्ताभ्यां गृहीत्वा मूलमन्त्रं तदुपरि अष्टधा जप्त्वा पूर्ववत् आनन्दभैरवानन्दभैरव्यौ सन्तर्प्य गुरुं देवताश्च तर्पयेत्। ततस्तु शुद्धिं कुर्य्यात्। ततश्चक्रनायकस्तैः सह पात्र वन्दनञ्चरेत्, श्रीमद्भैरवशेखरप्रविलसच्चन्द्रामृतप्लावितं क्षेत्राधीश्वरयोगिनीजनगणैः सिद्धैः समाराधितम्। आनन्दार्णवकं महात्मकमिदं यज्ञत्रिखण्डामृतं वन्दे श्रीप्रथमं कराम्बुजगतं पात्रं विशुद्धिप्रदम्॥

इति अभिवन्द्य वामहस्तेन पात्रमुत्तोल्य वन्दनं कृत्वा गृह्णामीति गुरुशक्तिसाधकाज्ञां गृह्णीयात्। ते च जुषस्व इति ब्रूयुःततो मूलाधारात् कुण्डलिनीमिष्टदेवतास्वरूपां विभाव्य गुरुपादुकां स्मृत्वा शिवोऽहमिति विचिन्त्य हस्याभ्यां पात्रं गृहीत्वा मूलमन्त्रमुच्चरन् कुण्डलिनीमुखे देवतां तर्पयेत्।

सन पर विराजमान होकर ललाट में चन्दन और अक्षत प्रदान पूर्वक शिवशक्ति बुद्धि से पुष्प प्रदान करै। अनन्तर यदि गुरु हों, तो आदि में गन्ध, चन्दन और पुष्पादि द्वारा उनकी पूजा और वह पात्र उन को प्रदान करके प्रणाम करना चाहिये। गुरु का अभाव होने से वह पात्र जल में फेंकदे, फिर शुद्ध सहित पात्र शक्ति को दान करके सामयिकगणों को भी ज्येष्ठानुक्रम द्वारा वीरपात्र से परामृत शुद्धि सहित प्रदान करै। अनन्तर सामयिक भी भक्ति सहित दो हस्तद्वारा ग्रहण और उस के ऊपर अष्टवार मूलमंत्र जपकर पूर्व्व की समान आनन्द भैरव और आनन्द भैरवी दोनों का तर्पण करके गुरु और देवता का तर्पण करै। फिर शुद्धि विधान में प्रवृत्त होना चाहिये। तदनन्तर चक्रनायक उनके सहित पात्रकी वंदना करै। तिसकाल इस प्रकार कहना चाहिये, मैं यह कराम्बुजात विशुद्धिप्रद श्री प्रथम पात्र की वंदना करता हूं। श्रीमद्भैरव के शेखर में भलीभांति से शोभायमान चन्द्र के अमृत में यह पात्र आप्लावित है। क्षेत्र के अधीश्वर योगिनी जनगण और सिद्धगण इसकी आराधना करते हैं यह आनन्द का सागर है। इस प्रकार अभिवंदना करके बामहाथ में पात्र उठाय और वंदना करके "ग्रहण करता हूं" इस प्रकार कह गुरु शक्ति और साधक की आज्ञा ग्रहण करनी चाहिये। वह भी उपयोग करहैं इस प्रकार कहे। अनन्तर मूलाधार से इष्टदेवता स्वरूप कुण्डलिनी की भावना करके गुरु पादुका का

तदुक्तम् उदयाकरपद्धत्याम्–

कृत्वा मन्त्र तनुं स्मरेद् देवीकलां चिन्मयीं पश्चात् पात्रवरं परामृतयुतं दीपैर्युतं प्रोज्जलैः। पुष्पादिष्वभिमन्त्रितं च नियतं सन्मोहकन्चासवं ये संचिन्त्य पिबन्ति यान्ति खलु ते भुक्तिञ्च मुक्तिं पराम्।

तन्त्रान्तरे च–

सिन्दूरतिलकं भाले पाणौ च मदिरारसम् कृत्वा परगुरं ध्यायेत् तथा देवीञ्च चिन्मयीम्॥ इति॥

ततः पात्रमाधारोपरि संस्थाप्य पूर्ववत् पात्रं गृहीत्वा पात्रवन्दनं कुर्य्यात्।

हैमं मीनरसावहं दयितया दत्तञ्च पेयादिभिः किञ्चिच्चञ्चल रक्तपङ्कजदृशा तस्यै समावेदितम्। वामे स्वादुविशुद्धिशुद्धिकरणं पाणा विधायात्मके वन्दे पात्रमहं द्वितीयमधुना नन्दैकसंवर्द्धनम्॥

इत्यादिना पुनस्तेन च क्रमेण परामृतं गृहीत्वा पात्रवन्दनं यथा।

सर्वाम्नायकलाकलाप्रकलितं कौतूहलद्योतनं चन्द्रोपेन्द्रमहेन्द्रशम्भु वरुणब्रह्मादिभिः सेवितम्। ध्यातं देवगणैः परं मुनिगणैर्मोक्षार्थिभिः सर्वदा वन्दे पात्रमहं तृतीय मधुना स्वात्मावबोधक्षमम्॥

स्मरण अपनी शिवरूप में भावना, दोनों हाथों में पात्र ग्रहण और मूलमन्त्र उच्चारण पूर्व्वक कुण्डलिनी के मुख में अर्पण करै। उदयाकर पद्धति में जैसा कहा है, यथा– मन्त्रतनु विधानपूर्वक गुरुपद और चिन्मयी देव कलाका स्मरण करके फिर दीप और कज्जल युक्त परामृत समन्वित पात्रवर और पुष्पादि में अभिमन्त्रित सम्मोहक आसनकी चिन्ता करताहुआ उसका पान करने से निःसन्देह भुक्ति और मुक्ति लाभ होती है। तन्त्रांतर में भी कहा है। भाल में सिन्दूरका तिलक और पाणि में मदिरा रस कर के, परम गुरु और देवी चिन्मयी का ध्यान करै। अनन्तर आधार के ऊपर पात्र स्थापन और पूर्व की समान पात्र ग्रहण करके, पात्र की वंदना करनी चाहिये। तिस काल इस प्रकार करै, मैं अपने वाम पाणि में यह हेममय द्वितीय पात्र विधान पूर्वक वंदना करता हूं। यह मीन रसावह और दयिता कर्त्तृक प्रदत्त है। पेयादि द्वारा उस दयिता के कमल की समान नेत्र कुछ एक चंचल और रक्तवर्ण हुए हैं। मैंने उस को ही यह प्रदान किया। यह जिस प्रकार विशुद्धि और शुद्धि विधान करता है, इसी प्रकार एकमात्र आनन्द भी बढ़ाता है। यह कह इसके द्वारा क्रम से परामृत ग्रहण कर वक्ष्यमान विधान से तीसरे पात्र की वंदना करै। यथा- मैं इस तीसरे पात्र की

इति तृतीयपात्रम् ।

मद्यं मीनरसावहं हरिहरब्रह्मादिभिः पूजितं मुद्रामैथुनधर्मकर्मनिरतं क्षाराम्लतिक्ताश्रयम् । आचार्य्याष्टकसिन्धुभैरवकला मांसेन संशोधितं पायात् पञ्चमकारतत्त्वसहितं पात्रं चतुर्थं नमः ।

इति चतुर्थपात्रम् ।

आधारे भुजगाधिराजवलये पात्रं महीमण्डलं मद्यं सप्तसमुद्रवारिपिषितं चाष्टौ च दिग्दन्तिनः। सोऽहं भैरवमर्चयन् प्रतिदिनं तारागणैरन्वितैः आदित्यःप्रमुखैः सुरासुरगणै राज्ञाकरैः किन्नरैः ॥

इति पञ्चमपात्रम् ।

ततो यावन्न चलते दृष्टि र्यावन्न चलते मनः। तावत् पानं प्रकुर्वीत पशुपानमतः परम् ॥

अथ अस्य प्रमाणं यथा । तदुक्तं रुद्रयामले—

साधकेभ्यश्च शाक्तेभ्यो दद्यान्निर्माल्यचन्दनम् । सामयिकः समं कुर्य्यात् देवि ! पानादि भक्षणम् ॥

अन्यत्रापि—

निवसेच्चक्ररूपेण पंक्त्याकारेण वा यथा । शक्तियुक्तो वसेद्वापि-युग्मायुग्मविधानतः ॥ शिवशक्तिधियासर्वं चक्रमध्ये समर्चयेत् ॥

वन्दना करता हूं । यह सम्पूर्ण वेद और चौसठ कला में परिपुष्ट एवं कौतूहल उद्दीपित करता है । इन्द्र, उपेन्द्र, चन्द्र, शम्भु, वरुण और ब्रह्मादि इसके सेवक हैं देवगण और मोक्षार्थी मुनिगण सदा इसका ध्यान करते हैं । और इस के द्वारा स्वात्म बोध लाभ होता है । अनन्तर चौथेपात्र की वंदना करै यथा-इस पंच मकार में तत्त्व सहित चतुर्थ पात्र और मद्य को नमस्कार है यह सब को पालन करे । हरिहर ब्रह्मादि इस मीनरसावह पात्र और मद्य की पूजा करते हैं । इसमें क्षार, अम्ल और तिक्त तीनही हैं ! फिर पाँचवें पात्र की वंदना करै । यथा—यह आधार अनन्त का कुण्डलन स्वरूप है । यह पात्र उसमें मही मण्डल स्वरूपहै । यह मद्य उसमें सप्त सागर का जल स्वरूप है मैं प्रतिदिन आज्ञाकर और किङ्कर की समान आदित्यप्रमुख सुरासुरगण और तारागणों में स्थित होकर भैरव की पूजा करता हूं । यह कहकर पंचम पात्र पात्र की वंदना करै । अनन्तर जबतक दृष्टि चंचल मन चलायमान न हो तब तक पान करना चाहिये । इसके पीछे पशुपान होता है ।

इसका प्रमाण यथा—रुद्रयामल में कहा है, शाक्त साधकगणों को निर्मल चन्दन दान और सम्भाव में पानादि भक्षण कार्य करै । अन्यत्र भी कहा है चक्राकार वा

तन्त्रान्तरे च—

ततः पुष्पं समादाय गुरोः पात्रे निवेदयेत् । गुरवे च निवेद्याथ भूत्यै दत्त्वा स्वयं हरेत् ॥

भावचूड़ामणौ च—

साक्षाद्यदि गुरुर्नस्या त्तदा तोये विसर्जयेत् ॥

अत्र पात्रपरिमाणं यथा—तदुक्तम् कुलसारे—

नयनाग्निवाणसंख्य कर्षैस्तु परमेश्वरि । हेतुपात्रं प्रकर्त्तव्य मित्युक्तंकुलशासने ॥ इतोऽप्यधिकपात्रन्तु न कर्त्तव्यं हि साधकैः ॥

कर्ष लौकिकमित्यर्थः तदुक्तम् कुलोड्डीसे—

गुञ्जा द्वादशमासः स्या त्तदष्टौ कर्षमुच्यते ॥

अथ उत्तरतन्त्रे—

अनुज्ञां पुरतो लब्ध्वा गृह्णामीति स्वयं वदेत् । जुषस्वेत्यभ्यनुज्ञातो गुरुणा वा कुलीनकैः ॥ गृह्णीयाच्चस्वयं सिद्धो बद्धपद्मासनः सुधीः ॥

कुलार्णवे च—

एकासननिविष्टा ये भुञ्जीरन्नैकभाजने । नैकपात्रे पिबेयुश्च ते यान्ति नरकाधमे ॥

पंक्ति के आकार में शक्तियुक्त होकर, युग्म २ विधानसे उपवेशन और शिवशक्ति बुद्धि से चक्र में सब की भलीभाँति पूजा करै तंत्रान्तर में भी कहा है । अनन्तर पुष्प ग्रहण करके गुरु के पात्र में गुरुको निवेदन करके भूत के उद्देश से दान पूर्वक स्वयं संग्रह करै । भावचूड़ामणि में कहा है, साक्षात् यदि गुरु न हों तो जल में विसर्जन करै । पात्रको परिमाण यथा-कुलसार में कहा है, हे परमेश्वरि ! एकादश कर्ष परिमाण में हेतु पात्र प्रस्तुत करै कुलशासन में भी इसीप्रकार कहा है. साधक कभी इस की अपेक्षा अधिक पात्र प्रस्तुत न करै कुलोड्डीस में कहा है; बारगुञ्जा में एक मास, आठ मास में एक कर्ष ॥

उत्तरतन्त्र में कहा है, प्रथम अनुज्ञा लाभ करके 'स्वयं ग्रहण करता हूं' यह कहना चाहिये । फिर गुरु वा कुलीन गण कर्तृक अनुज्ञात हो पद्मासन बन्धन पूर्वक स्वयं ग्रहण करै, कुलार्णव में कहा है, जो एक आसनपर विराजमान है, वह एक पात्र में भी भोजन और एक पात्र में द्रव्यपान न करने से नरकधाम में गमन करते हैं । यहां- पर एकपात्र शब्द से यही समझना चाहिये कि सब मिलकर एकपात्र में पान करैं,

एकपात्र इति सर्वैर्मिलित्वा एकपात्रेण पिबेत् न तु वारं वारं द्रव्यपाने भिन्नं भिन्नं पात्रं कुर्य्यात् । अनुष्ठानापत्तेः । न कुर्य्यात् पात्रशङ्करमिति वचनविरोधात् । सम्प्रदायविरोधाच्च ।

विना मद्ये न या पूजा विना मांसेन तर्पणम् । विना शक्त्या च यत् पानं तत् सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ स्वशक्तिं वीरशक्तिं वा दीक्षितां गुरुपूजनीम् । पाययित्वा पिबेद्द्रव्य मिति शाक्तस्य निर्णयः ॥ न पद्भ्यां च स्पृशेत् पात्रं न विन्दुं पातयेदधः । नैकहस्तेन दातव्यं न मुद्रावर्जितं पुनः ॥ नार्चयेदेकहस्तेन न पिबदेकपाणिना । अन्योन्य वन्दनं कृत्वा पिबेत्तदमृतं पुनः ॥ सव्येनोद्धृत्य पात्रन्तु मुद्रां कृत्वापसव्यतः । विना सङ्गेन योगेन न कुर्य्याद्द्रव्यसङ्गतिम् ॥ साधारं नोद्धरेत् पात्र माधारे च विनिक्षिपेत् । पात्रं न चालयेत् स्थानात् न कुर्य्यात् पात्रशङ्करम् सशब्दं न पिबेद्द्रव्यं तथैवं तं न पूरयेत् । न स्थूलं नैव सूक्ष्मञ्च पात्रं कुर्य्यात् मनोरमम् ॥ उच्छिष्टं न स्पृशेच्चक्रे-कुलद्रव्याणि सुन्दरि ! । वहिः प्रक्षाल्य च करौ कुलद्रव्याणि दापयेत् निष्ठीवनमधोवायुं चक्रमध्ये विवर्जयेत् । चक्रमध्ये घटे भग्ने पात्रे च पतिते भुवि ॥ दीपनाशे च शान्त्यर्थं श्रीचक्रं कारयेत् सुधीः । स्वपात्र-

---

बारम्बार द्रव्य पान के लिये पृथक् पृथक् पात्र प्रस्तुत न करैं । क्योंकि पात्र सङ्कर करना ठीक नहीं है, इस वचन के संग विरोध और सम्प्रदाय विरोध भी संघटित होता है । मद्य बिना पूजा मांस बिना तर्पण और शक्ति बिना पान सर्वथा निष्फल होता है अपनी शक्ति वा वीर शक्ति अथवा गुरुको पान कराकर स्वयं द्रव्यपान करै । यही शक्ति का निर्णय है । पद द्वारा पात्रस्पर्श वा बूँदें नीचे न गिरावे । एक हाथ से कभी न दे, और मुद्रा के बिना भी प्रदान न करे । एक हाथ से पूजा वा एक हाथ से पान भी नहीं करना चाहिये । परमेश्वर की वन्दना करके पुनर्वार वह अमृत पान करै । सव्य हाथ में पात्र लेकर और अपसव्य हाथ से मुद्रा विधान करके द्रव्यपान करना चाहिये । संग बिना और योग बिना कदापि पान न करै आधार के सहित पात्र न उठावे आधार में ही पात्र निक्षेप करै । स्वस्थानसे पात्रकी चालना और पात्र सङ्कर न करै । शब्दसहित द्रव्यपान वा शब्दसहित उसका पूर्ण न करै । जो बड़ा भी नहो और छोटा भी न हो इस प्रकार मनोहर पात्र निर्माण करै । हे सुंदरि ! उच्छिष्ट हाथ से चक्र मध्यस्थ कुल द्रव्य स्पर्श न करै । बाहिरे हाथ धोकर कुल द्रव्य दान करै । निष्ठीवन और अधोवायु चक्र में इनका व्यवहार न करै । चक्र में घट टूट जाने पर, पात्र

स्थितहेतुंच न दद्याद् भैरवाय च ॥ दत्ते च सिद्धिहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति योगिनी । परिहासं प्रलापं च वितण्डां बहुभाषणम् ॥ औदासीन्यं भयं क्रोधं चक्रमध्ये विवर्जयेत् । नान्योन्यं ताड़येत् पात्रं न पात्रमानयेदधः ॥ गुरुशक्तिसुतानांच गुरुज्येष्ठ कनिष्ठयोः । उच्छिष्ट भक्षयेत् स्त्रीणां नान्योन्योच्छिष्टमर्पयेत् ॥ चक्रमध्ये च नियमं नान्यथा पतनं भवेत् । कनिष्ठानां स्वशिष्याणां दद्याच्चोच्छिष्टमेव हि ॥ दद्यात् स्नेहेन योऽन्येभ्योः स भवेदापदां पदम् ।

अन्यत्रापि—

शक्त्युच्छिष्टं पिवेद्द्रव्यं वीरोच्छिष्टञ्च चर्वणम् पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पुनः पतति भूतले ॥ उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।

ततः शान्तिस्त्रोत्रं पठेत्। तदुक्तं डामरे—

पीत्वा पेयं जनैः सार्द्धं शान्तिस्त्रोत्रं ततः पठेत् । नश्यन्तु प्रेतकुष्माण्डाः नश्यन्तु दूषका नराः ॥ साधकानां शिवाः सन्तु आम्नायपरिपालनाम् । जयन्ति मातरः सर्वाः जयन्ति योगिनीगणाः ॥

गिरजाने पर और दीपक के बुझ जाने पर शान्ति के लिये श्रीचक्र बनाना चाहिये। अपने पात्रस्थ हेतु भैरव को प्रदान न करै। क्योंकि भैरव को प्रदान करनेसे सिद्धि की हानि और योगिनी क्रोधित होती हैं चक्र में यह सब बातें न करै यथा-हास्य, प्रलाप, वितण्डिता बहुत बोलना उदासीनता, भय और क्रोध परस्पर पात्र की ताड़ना और पात्र को अधस्थ न करै। गुरू उनकी शक्ति और कन्या गुरुका ज्येष्ठ और कनिष्ठ भ्राता और स्त्रीगणों की उच्छिष्ट भोजन करै। उनको कभी उच्छिष्ट प्रदान न करै। चक्र में इन सब नियमों का पालन करना चाहिये। पालन न करने से पतन होता है। अपने शिष्य के कनिष्ट होने से उस को उच्छिष्ट प्रदान करै। जो व्यक्ति स्नेह के वश होकर अन्य को प्रदान करता है, वह सम्पूर्ण आपदाओं का आस्पद होता है अन्यत्र भी कहा है शक्ति, और वीर का उच्छिष्ट द्रव्य पान चर्वण और भक्षण करै। वारम्बार पान करके पुनर्वार पान करै और पृथिवी में गिरैं फिर उठें और फिर पान करैं इस प्रकार पान करने से फिर जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता।

अनन्तर शान्तिस्तोत्र पाठ करना चाहिये। डामर में कहा है। यथा लोकोंके सहित पेय पानपूर्वक यह कह शान्ति स्तोत्र पाठ करै कि प्रेत और सम्पूर्ण कुष्मांड नष्ट हो दूषक लोक भी विनाश को प्राप्त हों, आम्नाय-पथवर्त्ती साधकगणों की जयहो, योगि-

जयान्ति सिद्धिडाकन्यो जयन्ति गुरुपङ्क्तयः। जयान्ति साधकाः सर्वे विशुद्धाः कौलिकाश्च ये॥ समयाचारसम्पन्ना जयन्ति पूजका नराः। नन्दान्ति चाणिमासिद्धा नन्दन्ति कुलपालकाः॥ इत्याद्या देवताः सन्तु तृप्यन्तु वास्तुदेवताः। चन्द्रसूर्यादयो देवास्तृप्यन्तु मम भक्तितः॥ नक्षत्राणि ग्रहा योगाः करणा राशयश्च ये। सर्व ते सुखिनो यान्तु सर्वा नद्यश्च पक्षिणः॥ पशुरस्तुरगाश्चैव पर्वताः कन्दरा युताः। ऋषयो ब्राह्मणाः सर्वे शान्तिं कुर्वन्तु सर्वदा॥ शुभा मे विदिताः सन्तु मित्रास्तिष्ठन्तु पूजिकः ये ये पापधिया स्वदूषणरताः स्वनिन्दकाः पूजने दैवाचारविमत्तनष्टहृदया भ्रष्टाश्च ये साधकाः। दृष्ट्वा च क्रमपूर्वमन्दहृदया ये कौलिका दूषका स्ते ते यान्तु विनाश मत्र समये श्रीभैरवस्याज्ञया॥ ये द्वेष्टारः साधकानां सदैवाम्नाय दूषकाः डाकिनीनां मुखे यान्तु तृप्तास्तत्पिशितैस्तुताः॥ पशवो नाशमायान्तु मम निन्दाकराश्च ये। द्वेष्टारः साधकानाञ्च ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

ततो यथाविधिना शिवशक्तिसमायोगं कृत्वा देवीपादेषु आत्मानं समर्प्य श्रीपात्रमुत्तोल्य देव्योपरि त्रिधा भ्रामयित्वा मूलमुच्च-

नी गणों की भी जयहो, सिद्धि डाकिनीगणों की भी जय हो, गुरुपंक्तिगणों की भी जय हो सर्वथा शुद्धचित्त साधक और कौलिकगणों की भी जय हो, सदाचार युक्त पूजकगणों की भी जय हो, अणिमा सिद्ध व्यक्तिगण आनन्दमें रहें. कुलपालगण भी आल्हाद में रहें देवतागण अनुकूल हों वास्तुदेवता तृप्त हों सूर्य्य चंद्रादि देवगण भी मेरी भक्ति से तृप्त हों, नक्षत्रगण, ग्रहगण समस्त करण और राशि तृप्त हों सम्पूर्ण नदी, सम्पूर्ण, पक्षी, सम्पूर्ण पशु, संपूर्ण पर्वत सुख विधान करें, ऋषिगण और ब्राह्मणगण सब में सदाशांति संपादन करें, भद्रप्रकृति हैं, वह मुझे विदित हों, जो पूजक हैं वह मेरे मित्रपक्ष में अवस्थित करें, जो पाप बुद्धि आत्मम्भरी, स्वनिन्दक दैवाचार विमत्त और नष्टहृदय हैं, इसके अतिरिक्त जो भ्रष्टाचार युक्तहैं वह साधकगण और जो दूषक हैं वह समस्त कौलिक श्रीभैरव की आज्ञा से इस समय विनाश को प्राप्त हों जो साधक गणों से द्वेष करता है, आम्नाय की निन्दा करता है वह डाकिनीगणों के मुख में जाय। डाकिनीगण उसका मांस भक्षण करके तृप्ति लाभ करें। समस्त पशु नष्ट हों जो मेरी निंदा करें उसका भी विनाश हो और जो साधकगणों से द्वेष करते हैं, वह भी सब श्रीशिव की आज्ञा से नष्ट हों। इस प्रकार शान्ति कवच पाठ करके यथाविधि शिवशक्ति का संयोग विधान और देवी के चरण में आत्माको समर्पण और

रन् श्रीदक्षिणकालिके पराङ्मुखार्घ्यं स्वाहा इति अर्घ्यं दत्त्वा तदुपरि पुनः संस्थाप्य संहारमुद्रया देवीं स्वहृदि समानीय श्रीदक्षिणकालिके पूजितासि क्षमस्वेति विसृज्य ऐशान्यां मण्डलिकां कृत्वा निर्माल्येन निर्माल्यवासिन्यै नमः इति मण्डले त्रिः संपूजयेत् ॥

तदुक्तं कुमारीकल्पे ।

देवताग्रे तु सम्भोगे देवताप्रीणनं भवेत् । संभागन्तु परं कृत्वा देवीं हृदि समानयेत् ॥ कृतकृत्यो भवेन्मन्त्री नात्र कार्य्या विचारणा ॥

अथ आत्मसमर्पणमंत्रो यथा—

इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यवस्थया स्वकायेन मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा । मदीयञ्च सकलं श्रीदक्षिण कालिक चरणे समर्पित मस्तु ॐ तत् सत् ॥

अथ कालीतन्त्रे च—

विसृज्य परया भक्त्या सन्निधापनमुद्रया । उद्वास्य हृदये देवीं तन्मयो भवति ध्रुवम् ॥ पुरश्चरणकालेऽपि पूजा चैषा प्रकीर्त्तिता ।

श्रीपात्र उठाकर देवी के ऊपर तीनवार उसको घुमाय मूलोच्चारण सहित अर्घ्यदान करने के पीछे उसके ऊपर पुनर्वार उसका स्थापन और संहार मुद्रा द्वारा देवी को अपने हृदय में लाकर "श्रीदक्षिण कालिके ! यह मैंने तुम्हारी पूजाकरी, क्षमाकरो" यह कहकर विसर्जन और ईशानकोण में मण्डलिका बनाकर उसमें निर्माल्य द्वारा तीन बार उनकी पूजा करनी चाहिये । जैसा कि कुमारीकल्प में कहा है, देवता के आगे सम्भोग समय देवता की प्रीति सम्पादन करनी चाहिये, इत्यादि ॥

आत्म समर्पणमंत्र यथा–आदि अंत में प्राण बुद्धि देह और धर्माधिकारता जाग्रत् स्वप्न और सुसुति अवस्था में स्वकीय, शरीर, मन, वाक्य, कर्म हस्त पद, उदर और शिश्न इन सब के द्वारा जो विचारा है, वा जो कहा है, वा जो किया है, वह समस्त ब्रह्मार्पण हो, स्वाहा । मैं और मेरा सब कुछ श्रीदक्षिण कालिका के चरण में समर्पणहो ओं तत्सत् कालीतंत्र में भी कहा है, परमभक्ति सहित देवीको विसर्जन पूर्वक सन्निधापनी मुद्रा से हृदय में स्थित कर तन्मय होना चाहिये । पुरश्चरण के समय भी इसी प्रकार पूजा कही गई है, भैरवतन्त्र में भी कहा है अपने हृदय के बहिर्भाग

भैरवतन्त्रेऽपि—

स्वहृदये च वहिर्देवीं समर्प्य विधिवत् पुनः । निर्माल्यं वै शुचौ देशे नैवेद्यं भक्षयेत्ततः ॥

ततः श्रीपात्रामृतं स्वपात्रे कृत्वा स्वीकृत्य भूमौ पात्रं न्युब्जीकृत्य तदुपरि पुष्पं निक्षिप्य पात्रप्रक्षालनं कृत्वा गोपयेत् ।

तदुक्तम् तन्त्रान्तरे—

अर्घ्यादिवन्दनमाचर्य्य अर्घ्यामृतं पिबेत्ततः । न्युब्जीकृत्य स्वयं पात्रं तत्र पुष्पं विनिक्षिपेत् । प्रक्षाल्य गोपयेत् पात्रं तत्त्व चिन्तापरो बुधः ॥

ततस्तदमृतास्निग्धभूमौ मायाबीजं विलिख्य कनिष्ठांगुलिना तिलकं कुर्य्यादनेन ॥

यं यं स्पृशति पादेन यं यं पश्यति चक्षुषा । स एव दासतां याति यदि शक्रसमो भवेत् ॥

ततो यंत्रलेपं मूर्ध्नि कृत्वा नैवेद्यं सर्वदेवाय साधकाय च दत्त्वा शेषं स्वीकृत्य सोऽहमिति भावयेत् । बाह्यतो वैष्णवाचारपरायणो निःशङ्को यथासुखं विहरेत् ॥

तदुक्तं कुलचूडामणौ—

ब्रह्मरन्ध्रे गुह्यस्थाने यंत्रलेपं तु धारयेत् । नास्तिकेभ्यो न पशुभ्यो न मूर्खेभ्यो न वा द्विजे ॥ कुलीनाय च दातव्यं अथवा जलमध्यतः ।

में देवी को पुनर्वार यथाविधि निर्माल्य अर्पण करके, पवित्र प्रदेश में नैवेद्य भक्षण करै । अनन्तर श्रीपात्रस्थ अमृत अपने पात्र में करके स्वीकार सहित भूमि में न्युब्ज भाव से रखकर उसके ऊपर पुष्प निक्षेप और पात्रप्रक्षालन पूर्वक गुप्त रक्खे । तंत्रान्तर में कहा है । यथा—अर्घ्यादि वंदनाचरण करनेके पीछे अर्घ्यामृत पान करै स्वयम् पात्र न्युब्जीकृत करके उसमें निक्षेप करना चाहिये । अनन्तर पात्रप्रक्षालन करके तत्वचिन्तापरायण हो उस को गुप्त रक्खे । तदनन्तर उसी अमृत के संसर्ग से परम शीतल भावापन्न भूमि में मायाबीज लिखकर कनिष्ठ अंगुली से तिलक करै । फिर तिलक करके जिस व्यक्ति को पद द्वारा स्पर्श और जिसके प्रति दृष्टिपात करीजाय, वह व्यक्ति इन्द्र की समान होने पर भी दास होता है । अनन्तर मस्तक में इन्द्रलेप करके सर्वदेव और साधक को नैवेद्यदान और अवशिष्ट अंश स्वयं स्वीकार पूर्वक अपनपे की शक्तिरूप में भावना और बाहर वैष्णवाचार परायण एवं निःशंक होकर यथासुख में विहार करै । कुलचूड़ामणि में कहा है यथा-गुप्त स्थान ब्रह्मरंध्र में लेप

ततः सोऽहमिति ध्यात्वा वैष्णवाचारतत्परः ॥ हरिनाम्ना आतभावो भावाखिलविचेष्टितः । चौरवद्विचरेदेकः सदा संग विवर्जितः ॥

यामलेऽपि—

नैवेद्यं त्रिपुरादेव्या बांछन्ति विबुधाः सदा । तस्माद्देयं सुरश्रेष्ठ ! ब्राह्मणे वैष्णवेऽपि च ॥ मह्यं शुक्राय सूर्य्याय गणेशाय यमाय च । वह्नये वरुणायापि वायवे धनदाय च ॥ ईशानाय महेशानि ! साधकाय प्रदापयेत् ॥

अत्र त्रिपुरापदमुपलक्षणमिति ।

अथ देवीविसर्जनानन्तरं पानादिकं कुर्य्यात्

तदुक्तं कुलार्णवे—

दिव्य देव्यग्रतः पानं वीरमेकांतवासिनम् ।

अन्यत्रापि—

पानन्तु त्रिविधं प्रोक्तं दिव्यवीरपशुक्रमैः ॥ दिव्यं देव्यग्रतो ध्यायेद् वीरं वीरासनास्थितम् । तृतीयन्तु पशोः पानं पाप कृत् शोकमोहकृत् ।

उदयाकरपद्धत्याम्—

असंस्कृतं वृथा पानं संस्कृतं भैरवः स्वयम् । चक्रपूजा विधौ प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरं शुभम् ॥ असंस्कृतं पशोः पानं कलहोद्वेगकारकम् ।

धारण करै । नास्तिक, पशु वा मूर्ख, इनको न दे । कुलीनको ही प्रदान और जलमें निक्षेप करै । फिर अपनपे की शक्तिरूप में चिंता करके वैष्णवाचार की समान परायण और हरिनाम में आविष्टचित्त होकर, समस्त संग छोड़ अकेला चोरकी समान विचरण करै । इसलिये ब्राह्मण, वैष्णव, मुझे, शुक्र, सूर्य्य, गणेश, यम, अग्नि, वरुण, वायु, कुवेर, और साधकको प्रदान करना चाहिये । यहाँ त्रिपुरा शब्द उपलक्षण मात्र है सर्वत्र देवी को ही समझना चाहिये । अनन्तर देवी को विसर्जन करने के पीछे पानादि करै । कुलार्णव में कहा है । यथा–देवी के सम्मुख, दिव्य और वीरपान इत्यादि अन्यत्र भी कहा है, दिव्यवीर और पशुक्रमानुसार पान तीन प्रकार है । तिनमें देवी के सम्मुख जो पान कियाजाता है, उसका नाम दिव्यपान है, वीरासन स्थित पान को वीर कहते हैं । एवं पशुपान पाप, शोक और मोह उत्पादन करता है । उदयाकर पद्धति में कहा है कि असंस्कृत पान वृथापान और संस्कृत पान साक्षात् भैरव स्वरूप है । उसको चक्रपूजाविधि में सर्वसिद्धिकर कहते हैं । असंस्कृत पानही पशुपान है ।

संस्कृतं सिद्धिजनकं प्रायश्चित्तादि दूषणम् ॥ मंत्राणां स्फुरणं तेन महापातकनाशनम् । आयुः श्रीकांतिसौभाग्यं भवेत् संस्कृतपानतः । नष्टैश्वर्य्यं खेचरत्वं पतनं विधिवर्जनात् ।

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरिविरचिते श्यामारहस्ये सपर्य्यापर्य्यायस्तृतीयः परिच्छेदः ॥

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ।

अथ स्तुतिः । यामले—

कर्पूरं मध्यमांत्यस्वरपरिरहितं सेंदुवामाक्षियुक्तं । बीजं ते मातरतस्त्रिपुरहरवधु ! त्रिः कृतं ये जपंति । तेषां गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसंत्येव वाचः । स्वच्छंदं ध्वांतधाराधररुचिरुचिरे सर्वसिद्धिं गतानाम् ॥१॥ ईशानं सेंदुवामश्रवण परिगतं बीजमन्यत्महेशि ! द्वंद्वं ते मंदचेता यदि जपति जनो वारमेकं कदाचित् । जित्वा वाचामधीशं धनदमपि चिरं मोहयन्नम्बुजाक्षीवृंदं चंद्रार्द्धचूडे ! प्रभवति हि महाघोरबालावतंसे ! ॥ २ ॥ ईशो वैश्वानरस्थः शशधरविलसद्वामनेत्रेण युक्तं बीजं ते द्वन्द्वमन्यद्विगलितचिकुरे ! कालिके ! ये जपन्ति । द्वेष्टारं घ्नंति ते च त्रिभुवनमपि ते वश्यभावं नयन्ति सृक्वद्वं-

---

उस से कलह और उद्वेग उत्पन्न होता है । संस्कृत पान सिद्धिदायक है । इस पानसे ही मंत्रादि सब की स्फूर्त्ति होती है और सम्पूर्ण महापातक नष्ट होते हैं। संस्कृत पान करके दान करने से जिस प्रकार आयु, श्री, कांति और सौभाग्य सञ्चय होता है, असंस्कृत पान से इसी प्रकार ऐश्वर्य्य भ्रष्ट और पतन होता है ।

इतिश्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित श्यामारहस्य श्रीपण्डितहरिशङ्करकृत भाषाटीका सहित सपर्य्यपर्य्यायनामक तृतीयपरिच्छेद ॥ ३ ॥

अब देवीकी स्तुति वर्णित होती है । यामल में इस प्रकार स्तव लिखा है। यथा— कर्पूर शब्दका मध्यम अक्षर "पू" और अन्तका अक्षर "र" निकालने से जो 'क' और 'र' अवशिष्ट रहते हैं, इनको स्वरहीन करनेसे "क्र" इस प्रकार पद सिद्ध होता है। इस "क्र" में दीर्घ ईकार और अनुस्वार मिलाने से "क्रीं" यह बीज निकलता है । हे जननि हे ! त्रिपुरहरगृहिणि । यही तुम्हारा बीज है । जो इस बीजको त्रिगुणित करके जप करता है, सब प्रकार की सिद्धि उसके अंकगामिनी होती है और उसके मुखविवर से भी गद्यपद्यमयी वाणी बराबर निकलती रहती है ॥ १ ॥ हकारमें रेफ दीर्घ ईकार और अनुस्वार मिलाने से 'ह्रीं' यह जो पद बनता है, यह तुम्हारा अन्य

द्धास्त्रधाराप्रकटितवदने दक्षिणे ! कालिकेऽति ॥३॥ उर्द्धवं वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं तथाधः सव्ये चाभीर्वरञ्च त्रिजगदघहरे ! दाक्षिणे कालिके च । जप्त्वैतन्नामवर्णं तव मनुविभवं भावयन्त्ये-तदम्ब ! तेषामष्टौ करस्थाः प्रकटितवदने सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य ॥ ४ ॥ वर्गाद्यं वह्नियुक्तं विधुरतिकलितं तत्रयं कूर्चयुग्मं लज्जायुग्मंच पश्चात् स्मितमुखि ! तथाठद्वयं योजयित्वा । मातर्ये येजपंति स्मरहरम-हिले ! भावयंतः स्वरूपं ते लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः कामरूपा भवंति ॥ ५ ॥ प्रत्येकं वा त्रयं वा द्वयमपि च परं बीजमत्यंतगुह्यं त्वन्नाम्ना योजयित्वा सकलमपि सदा भावयंतो जपंति । तेषां नेत्रार विन्दे विहरति कमला वक्त्रशुभ्रांशुविम्बे वाग्देवी छिन्नमुण्डस्रगतिशयल-

एक बीज हैं नितान्त स्वल्पबुद्धि व्यक्तिभी यदि द्विगुणित कर के इस बीजका कदा-चित् एकवार जप करै, तो वह वृहस्पति को भी जय, कुबेर को भी परास्त और कमल समान नेत्रवाली स्त्रियोंको भी मोहित करके सबके ऊपर अपना प्रभुत्व प्रचार करने में समर्थ होता है ॥ २ ॥हे मुक्तकेशि ! हे चन्द्रार्द्धचूडे ! हकार का पिछला अक्षर 'र' दीर्घ ईकार और अनुस्वार मिलाने से उपरोक्त तुम्हारा जो 'ह्रीं' नामक बीज उद्धृत होता है । उसको दुगुना करके जो व्यक्ति जप करता है वह विपक्ष पक्ष का नाश और त्रिभुवन के वशीभूत करने में समर्थ होता है ॥ ३ ॥ तुम दक्षिण अर्थात् सबकेही प्रति अनुग्रहशालिनी हो । और कालिका अर्थात् सबकीही सृष्टि, स्थिति और लय करती हो । तुम्हारे दोनों होठोंसे रुधिर धारा गिरती है । तुम्हारे बाईं ओर के उर्द्धहस्त में कृपाण; अधः स्थित करकमलतल में छिन्नमुण्ड दक्षिण ओर के उर्द्धहस्त में अभय और अधस्थ हस्त में वर विराजमान है । तुम्हीं तीनों जगत् के पापहरण करती हो । तुम्हीं कालकी पत्नी हो तुमको कुछभी असाध्य नहीं है। तुम्हारा वदन सर्वदाही उल्लसित और सर्वदा प्रसन्न भावयुक्त है। जो तुम्हार नाम जपकर तुम्हारे मन्त्र बिभव की भावना करता है, अणिमादिक आठसिद्धि उसके अधिकार में होती हैं ॥४॥ तुम सदाही हास्यमुखी हो। तुम्ही त्रिभुवनकी जननी हो । तुम्हीं स्मरहरा अर्थात् तुम शरण होतेही मनुष्यका दुःखादि हरण करती हो । तुम्हीं महिला अर्थात् सबकी पूज-नीय और सेवनीय हो । जो भक्तिभाव से तुम्हारे स्वरूपकी भावना करके 'क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा, तुम्हारे इस बीज का जप करता है, वह कमलदल की समान लक्ष्मीकी लास्य लीलास्थली और कामरूप होता है ॥ ५ ॥ तुम्हीं स्वप्रकाश स्वरूप हो । जो सर्वदा ध्यान परायण हो तुम्हारे नाम के सहित योजना कर उल्लिखित समस्त बीज में एक, दो, तीन अथवा समस्त बीज का जप करता है, कमला उसके नेत्ररूपी अरविंद में और वाग्देवी उसके वदनरूपी चन्द्रबिम्ब में सर्वदा विहार करती हैं। तुम्हारा कंठ देश मुण्डमाला से अत्यन्त विलसित हुआ है । तुम्हीं दैत्यों का संहार

सत्काण्ठ पीनस्तनाढ्ये दि गतासूनां बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्नितंबां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं त्रिनयनाम्। श्मशानस्थे तल्पे शवहृदि महाकालसुरतप्रसक्तां त्वां ध्यायन् जननि ! जड़चेता अपि कविः ॥ ७ ॥ शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः परं संकीर्णायां प्रकटितचितायां हरवधूम्। प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरि सुरते नातियुवतीं सदा त्वां ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषां परिभवः ॥ ८ ॥ वदामस्ते किंवा जननि ! वयमुच्चैर्जड़धियो न धाता नापीशो हरिरपि न ते वेत्ति परमम्। तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्माकमपि ते तदेतत् क्षन्तव्यं न खलु पशुबोधः समुचितः ॥ ९ ॥ समन्तादापीनस्तनजघनधृग्यौवनवतीरताशक्तो नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनुम्। विवासास्त्वां ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः समस्ताः सिद्धौघाः भुवि चिरतरं जीवति कविः ॥ १० ॥ समाः सुस्थीभूतां जपति विपरीतां यदि सदा

करने के समय प्रलयकालीन महामेघ की समान घोर गंभीर शब्द करती हो ॥ ६ ॥ तुम्हीं सबको जन्म देती हो। समस्त शवके बाहु परम्परा में विरचित कांचीदाम के संसर्ग से तुम्हारे नितम्ब विम्ब अतिशय सुशोभित हुए हैं। तुम्हीं दिग्वसना और त्रिनयना; एवं त्रिभुवनकी विधात्री और महाकाल के सहित प्रकृति पुरुषगत लीला विहार में आसक्त हो। जो व्यक्ति श्मशानस्थित तल्प और शव हृदय में आरोहण करके तुम्हारे इस रूपका ध्यान करता है, वह जडबुद्धि होनेपर भी कवि होता है ॥७॥ भयंकर प्रकृति समस्त शिवागण तुमको चारों ओरसे घेरे रहतेहैं। तिस अवस्थामें शवमुण्ड और अस्थि परम्परामें परिवृत अतिविस्तृत चिता भूमिमें प्रवेश करके संतुष्ट हृदय से विपरीत विहार में प्रवृत होती हो। तुम्हारा यौवन किसी कालमें भी क्षय को प्राप्त नहीं होता। जो व्यक्ति सर्वदा तुम्हारे इस रूप की भावना करता है, उसका किसी काल में किसी देशमें और किसी अवस्थामें भी पराभव नहीं होता॥८॥ हे जननि! जडबुद्धि मैं तुम्हारे विषय में अधिक और क्या कहूं ? मेरी बात दूर रहै स्वयं ब्रह्मा, महादेव और वासुदेवभी तुम्हारे विषयमें विशेष किसी प्रकार अवगत नहींहै।हे तमोरूपिणि ! तथापि तुम्हारी भक्ति मुझ को मुखरित करती है इसीलिये मैं न जानकर भी क्या कहने को था और क्या कहकर तुम्हारा स्तव करता हूं। अतएव मुझ को क्षमा करना चाहिये। कहूं क्या मैं पशु की समान हूं। मेरे प्रति रोष प्रकाश करना उचित नहीं है ॥ ९ ॥ तुम्हारा भक्त यदि रात्रि में पीनश्रोणिपयोधरा नवयौवनशालिनी रमणी के सहित निधुवनलीला रस में आसक्त और विवस्त्र होकर तुम्हारा ध्यान व धारणा के पीछे तुम्हारे मंत्र का जप करता है तो समस्त सिद्धमण्डली उसके वशीभूत होती है और वह [illegible]कवि होकर चिरकाल जीवित रहता है ॥ १० ॥ तुम साक्षात् संहार रूप से

विचिन्त्य त्वां ध्यायन्नतिशयमहाकालसुरताम् । तदा तस्य चोणीतल विहरमाणस्य विदुषः कराम्भोजे वश्याःस्मरहरवधु! महासिद्धिनिवहाः ॥ ११ ॥ प्रसूते संसारं जननि! जगतीं पालयति च समस्तं चित्यादि प्रलयसमये संहरति च । अतस्त्वं धातापि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरपि महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौमि भवतीम् ॥ १२ ॥ अनेके सेवन्ते भवदधिकगीर्वाणनिवहान् विमूढास्ते मातः! किमपि न हि जानन्ति परमम् । समाराध्यामाद्यां हरिहरविरिञ्च्यादिविबुधैः प्रपन्नोऽस्मि स्वैरं रतिरसमहानन्दनिरताम् ॥ १३ ॥ धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि! सकला । स्तुतिः का ते मातस्तव करुणया मामगतिकं प्रसन्ना त्वं भूयाः भवमनु न भूयान्मम जनुः ॥ १४ ॥ श्मशानस्थः सुस्थो

सब को हरण और मायारूप से सब का बंधन करती हो। तुम्हीं महाकाल के सहित विपरीत अर्थात् विशिष्ट विधान से संगता होकर समस्त संसार में अनुकूल विधान से विहार करती हो। जो व्यक्ति स्वस्थचित्त में एक वत्सर सदा विशेष प्रकार से चिंता करके तुम्हारा ध्यान धारण करता है इस पृथ्वी में विहार करते करते ही अणिमादिक समस्त महासिद्धि उस विद्वान् साधक के कर कमल में वश्य होती हैं ॥ ११ ॥ हे जननि ! तुम ने ही इस जगत् को उत्पन्न किया हैं, तुम्हीं इस का पालन करती हो और तुम्हीं इस का प्रलय के समय संहार करती हो। अतएव तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं विष्णु, और तुम्हीं महादेव हो। फलतः सब कुछ तुम्हीं हो। अतएव मैं और तुम्हारा क्या स्तव करूं ? ॥१२॥ हे जननि ! अनेक व्यक्ति तुम को त्यागकर अन्यान्य देवतागणों की उपासना करते हैं, वह नितान्त मोहाच्छन्न हैं इसीलिये तुम जो सबसे श्रेष्ठ हो, इस बात को वह नहीं जानते। जो हो, मैं अपनी इच्छा से एकमात्र तुम्हारी ही शरण हूं। क्यों कि मैं जानता हूं, स्वयं हरि, हर और ब्रह्मादि प्रमुख देवतागण भी केवल तुम्हारी ही आराधना करते हैं और यह भी जानता हूँ कि केवल तुम्हीं रतिरस, परमानंद और समस्त रस की निलय (आकर) स्वरुप हो ॥१३॥ तुम्हीं गिरीशरमणी अर्थात् महादेवकी भार्या हो ॥ अर्थात् तमोगुणके आश्रय महाकालके संग बिहार करती हो। तुम समस्त कल्याणका आलय और स्वरूप हो। तुम्हीं काली अर्थात् सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली हो। तुम्हीं पृथ्वी, तुम्हीं जल, तुम्ही अग्नि, तुम्हीं वायु और तुम्हीं आकाश हो ! इस प्रकार तुम एक होनेपरभी सबकुछ हो। अतएव तुम्हारी स्तुति और क्या करूं ? हे जननि ! मैं सब भांति से गतिहीन हूं। अतएव तुत अपने गुणसे करुणा करके मेरे प्रति प्रसन्न होओ। जिससे कि फिर इस पाप संसारमें मुझे जन्म ग्रहण करना न हो ॥ १४ ॥ जो व्यक्ति श्मशान प्रदेश में अवस्थान पूर्वक मुक्तकेश और

गलितचिकुरो दिक्पटधरः सहस्रं स्वर्काणां निजगलितवीर्य्येण कुसुमम्। जपंस्तत्प्रत्येकं मनुमपि तव ध्याननिरतो महाकालि! स्वैरं स भवति धरित्रीपरिवृढः ॥ १५ ॥ गृहे सम्मार्जन्या परिगलितबीजं हि कुसुमं सुमध्याह्ने नित्यं विरचयति चितायां कुजदिने। समुच्चार्य्य प्रेम्णा मनुमपि सकृत् कालि! सततं गजारूढो याति क्षितिपरिवृढः सत्कविवरः ॥ १६ ॥ स्वपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषो मन्दिरमहो पुरो ध्यायन् ध्यायन् यदि जपति मानस्तव मनुम्। स गन्धर्वश्रेणीपतिरिव कवित्वामृतनदी न दीनः पर्य्यन्ते परमपदलीनः प्रभवति ॥ १७ ॥ त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदनां महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनिरताम्। समासक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतो नरो यो ध्यायेत् त्वां भवजननि! स स्यात् स्मरहरः ॥ १८ ॥ स लोमास्थि स्वैरं पललमपि मार्जारमपि ते परं चोष्ट्रं मैषं नरमहिषयोश्छागमपि वा।

नग्नवेश से अपने विगलित वीर्य के सहित हजार अर्कपुष्प (आक के फूल) प्रदान करनेपर तुम्हारे ध्यान में मग्न हो तुम्हारे प्रत्येक मंत्रका जप करता है वह इच्छा करतेही समस्त पृथ्वी का अद्वितीय अधिपति होता है ॥ १५ ॥ जो व्यक्ति मंगल के दिन श्मशानमें जाकर मध्याह्न समय सम्मार्जनी और विनिर्गलित वीर्य के सहित अखंड चिकुर प्रदान करता है और तिसके संग एकबार प्रेममें भरकर तुम्हारा मंत्र उच्चारण करता है, वह संपूर्ण पृथ्वी का अधिपति और सत् कवि गणों में अग्रणी हो हाथीपर चढकर गमन करता है ॥ १६ ॥ आहा ? तुम्हारे प्रति भक्तिके वश होकर सम्मुख स्व पुष्प में समाकीर्ण काम मंदिरका वारम्वार ध्यान कर यदि तुम्हारे मंत्रका जप किया जाय, तो गंधर्व गणों का आधिपत्य लाभ होता है कवित्वरूप अमृत की नदीरूप में वह आविर्भूत होता है, किसी समय भी उसको दैन्य आक्रमण नहीं करसक्ता, चरम में परम पद प्राप्ति योगसंघटित होता है और वह सदाके लिये सबका प्रभु होसक्ता है ॥ १७ ॥ हे जननि! तुम शवरूप शिव के हृदय और त्रिपञ्चार पीठमें सस्मित वदन से आरोहण करके महाकालके सहित अत्यन्त मदन के रस लावण्यमें निरतहुई हो। जो व्यक्ति रात्रि में स्वयं समासक्त चित्तसे रसानंद होकर तुम्हारा इस प्रकार ध्यान करता हैं वह स्मरहर (महादेव!) होता है ॥ १८ ॥ जो मर्त्यलोक वाली सत् पुरुष पूजाके समय विडाल (बिलाई) ऊंट, मेष, महिष, मनुष्य और छाग इन सबका मांस और लोम सहित अस्थि तुम्हारे उद्देश से प्रदान करता है समस्त अपूर्व सिद्धि प्रतिपद में उसके वशीभूत होती हैं ॥ १९ ॥ हे जननि! जो व्यक्ति दिन में यशो और हवि-

बलिं ते पूजाया मयि विरलवक्ते वितरतां सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति ॥ १९ ॥ वशीमन्त्रं लक्षं प्रजपति हविष्याशनरतो दिवा मातर्युष्मच्चरणयुगलध्याननिरतः । परं नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं जपेल्लक्षं स स्यात् स्मरहरसदृक्षः क्षितितले ॥ २० ॥ इदं स्तोत्रं मातस्तव मनुसमुद्धारणजनुः स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगल पूजाविधियुतम् । निशार्द्धं वा पूजासमयमभि वा यस्तु पठति प्रलापस्तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः ॥ २१ ॥ कुरङ्गाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं वशस्तस्य क्षौणीपतिरपि कुवेरप्रतिनिधिः । रिपुकारागारं कलयति च तं केलिकलया चिरं जीवन्मुक्तः प्रभवति स भक्तः प्रतिजनुः ॥ २२ ॥

इति महाकालविरचितं स्वरूपाख्यं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

अथोत्तरतन्त्रे कवचं लिख्यते —

कैलासशिखरारूढं भैरवं चन्द्रशेखरम् । वक्षःस्थले समासीना भैरवी परिपृच्छति ॥

ष्याशी होकर तुम्हारे चरण युगलका ध्यान धारण सहित एकाग्रचित्त से तुम्हारे मंत्र का लक्षवार जप करता है एवं रात्रि में नग्न और निधुवन विनोद में मग्न भावापन्न हो इस प्रकार लक्षजप करता है, वह पृथ्वीतल में साक्षात् स्मरहर (श्रीमहादेव) की समान होता है ॥ २० ॥ हे जननि ! जो व्यक्ति आधीरात के समय अथवा पूजा कालके समयं तुम्हारे युगल चरणारविन्दोंकी पूजामें आसक्त होकर तुम्हारा, मंत्रोद्धरण जनित यह स्वरूपाख्यस्तव पाठ करता है, उसव्यक्तिका प्रलापभी साक्षात् कवित्वरूप अमृत रसमें परिणत होकर सर्वत्र फैलजाता है ॥ २१ ॥ मृगनयनी स्त्री गणभी प्रेमचंचला होकर उसके अनुगत होती हैं, स्वयं राजा लोग भी उसके वशीभूत होते हैं इस के अतिरिक्त वह कुवेर का भी प्रतिनिधि होता है, उस के समस्त शत्रुगण कारागार में वास करते हैं एवं वह प्रतिनिधि जीवन्मुक्त-और चिरकाल केलि कला संयुक्त होता है । अधिक क्या कहूं, प्रति जन्म में वह व्यक्ति इसी प्रकार होता है ॥ २२ ॥

इति महाकालविरचित स्वरूपाख्यं स्तोत्र समाप्तम् ।

उत्तर तंत्र में भगवती कालिका का कवच लिखा है । यथा चंद्रशेखर भैरव के कैलाश शिखर पर विराजमान थे, तिसी समय भैरवी ने उन के वक्ष स्थल में विराजमान होकर पूछा । भैरवी ने कहा, आप देवतागणों के भी ईश्वर और परमेश्वर हैं आप ही लोकों पर अनुग्रह करते हैं । आप ने प्रथम मेरे प्रति देवीकालिका के कवच की सूचना दी थी, सो किसलिये उस को प्रकाश नहीं किया ? हे कुल भैरव ? यदि

भैरव्युवाच—

देवेश! परमेशान! लोकानुग्रहकारक!। कवचं सूचितं पूर्वं किमर्थं न प्रकाशितम् ॥ यदि मे महती प्रीतिस्तवास्ति कुलभैरव!। कवचं कालिकादेव्याः कथयस्वानुकम्पया ॥

श्रीभैरव उवाच –

अप्रकाश्यमिदं देवि! नरलोके विशेषतः। लक्षवारं वारितासि स्त्रीस्वभावाद्धि पृच्छसि ॥

देव्युवाच—

सेवका बहवो नाथ! कुलधर्मपरायणाः। यतस्ते त्यक्तजीवास्ते शवोपरि चितोपरि ॥ तेषां प्रयोगसिध्यर्थं स्वरक्षार्थं विशेषतः। पृच्छामि बहुशो देव! कथयस्व दयानिधे! ॥

भैरव उवाच—

कथयामि शृणु प्राज्ञे! कालिकाकवचं परम्। गोपनीयं पशोरग्रे स्वयोनिमपरे यथा ॥ सर्वविद्यामहाराज्ञि! सर्वदेवनमस्कृते! ॥

कालिकाकवचस्य भैरव ऋषिरुष्णिक्छन्दः अद्वैतरूपिणी श्री दक्षिणकालिका देवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः क्रीं कीलकं सर्वार्थसाधनपुरः सरमन्त्रसिद्धौ विनियोगः ॥

मेरे प्रति आप की विशेष प्रीति है, तो कृपापूर्वक देवी कालिका के कवच का कीर्त्तन कीजिये।

श्री भैरव ने कहा हे देवि! इस कवच का प्रकाश करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। विशेषतः नरलोक में तो प्रकाश करना ही नहीं चाहिये। इसीलिये मैंने तुम को लाखबार निवारण किया, तौ भी तुम स्त्री स्वभाव के वश होकर फिर वही पूछती हो।

देवी ने कहा हे नाथ! अनेक सेवक हैं, वह समस्त कुलधर्म परायण और सभी जीवन की आशा त्याग शव और चिता के ऊपर अवस्थिति करते हैं, उन के प्रयोग की सिद्धि और विशेष करके उनकी रक्षा के लिये ही मैं बारम्बार जिज्ञासा करती हूं आप भी दया सागर हैं, अतएव कीर्त्तन कीजिये।

भैरव ने कहा हे प्राज्ञे! श्रवण करो, देवि कालिका के कवच का कीर्त्तन करता हूं। पशुगणों के निकट कभी इस को प्रकाश न करै। यह समस्त विद्या का महाराज्ञी स्वरुप है। इस कारण समस्त देवता इस को नमस्कार करते हैं।

सहस्रारे महापद्मे कर्पूरधवलो गुरुः॥ वामोरुस्थितत्तच्छक्तिः सदा सर्वत्र रक्षतु। परमेशः पुरः पातु परापरगुरुस्तथा ॥ परमेष्ठी गुरुः पातु दिव्यसिद्धिश्च मानवः। महादेवी सदा पातु महादेवः सदावतु ॥ त्रिपुरो भैरवः पातु दिव्यरूपधरः सदा। ब्रह्मानन्दः सदा पातु पूर्णदेवः सदावतुः । चलच्चित्तः सदा पातु चेलाञ्चलश्च पातु माम् ॥ कुमारः क्रोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनः। माया मायावती चैव सिद्धौघाः पान्तु सर्वदा ॥ विमलः कुशलश्चैव भीमसेनः सुधाकरः। मीनो गोरक्षकश्चैव भोजदेवः प्रजापतिः॥ कुलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरहुताशनः। सं तोषः समयानन्दः पातु मां मानवास्सदा ॥ सर्वेऽप्यानन्दनाथान्ताः अम्बान्ता मातरः क्रमात्। गणनाथःसदा पातु भैरवः पातु मां सदा॥ वटुको नः सदा पातु दुर्गा मां परिरक्षतु। शिरसा पादपर्य्यन्तं पातु मां घोरदक्षिणा ॥ तथा शिरसि मां काली हृदि मूले च रक्षतु। संपूर्णविद्यया देवी सदा सर्वत्र रक्षतु ॥ क्रीं क्रीं क्रीं वदने पातु हृदि हुं हुं सदावतु। ह्रीं ह्रीं पातु सदाधारे दक्षिणे कालिके हृदि। क्रीं क्रीं क्रीं पातु मे पूर्वे हुं हुं दक्षे सदावतु॥ ह्रीं ह्रीं मां पश्चिमे पातु हुं हुं

कालिकाकवच का ऋषि भैरव, छंद उष्णिक्, देवता अद्वैतरूपिणी श्री दक्षिण कालिका, बीज ह्रीं, शक्ति हुं, कीलक क्रीं और सर्वार्थ साधन के पीछे मन्त्रसिद्धि के लिये इसका विनियोग जानना चाहिये। जो सहस्रार महापद्म में विराजमान हैं, जो कर्पूर की समान धवलवर्ण और शक्ति जिनका वाम ऊरु सर्वदा आश्रय करती है, वही गुरुदेव सर्वदा रक्षा करें परमेश और परापर गुरु, एवं परमेष्ठी गुरु और दिव्य सिद्ध पुरुष पुरोभाग की रक्षा करें। महादेवी सर्वदा पालन और महादेव सर्वदा रक्षा करें। दिव्यरूपधारी त्रिपुर भैरव सर्वदा रक्षा करें । ब्रह्मानन्द सर्वदा रक्षा करें। पूर्णदेव सर्वदा रक्षा करें। चलच्चित्त सर्वदा रक्षा करें। चेलांचल सर्वदा रक्षा करें। कुमार क्रोधन, वरद, स्मरदीपन, माया, मायावती और सिद्धौघ यह मेरी सर्वदा रक्षा करें। विमल, कुशल, भीमसेन, सुधाकर, मीन, गोरक्षक, भोजदेव, प्रजापति, कुलदेव, रन्तिदेव, विघ्नेश्वर, हुताशन, संतोष, यह सब मेरी रक्षा करें। समयानन्दसे आनन्दनाथ पर्यन्त मनुष्यगण और अम्बान्ता मातृगण यथाक्रम से मेरी रक्षा करें। गणनाथ सर्वदा मेरा पालन करें। भैरव सदा मेरी रक्षा करें। वटुक और दुर्गा सर्वदा मेरी रक्षा करें। घोर दक्षिणा मेरे मस्तक से चरणपर्यंत की रक्षा करें। देवीकाली मेरे मस्तक और हृदय की रक्षा करें। देवी सम्पूर्ण विद्या सहित सर्वदा सर्वत्र मेरी रक्षा करें। क्रीं क्रीं क्रीं वदन की रक्षा करें। हुं हुं सर्वदा हृदय की रक्षाकरें। ह्रीं ह्रीं दक्षिणा कालिका आधार के सहित हृदय की रक्षा करे। क्रीं क्रीं मेरे पूर्व दिशा, हुं हुं दक्षिण

पातु सदोत्तरे ॥ पृष्ठे पातु सदा स्वाहा मूला सर्वत्र रक्षतु । षडङ्गे युवती पातु षडङ्गेषु सदैव माम् ॥ मन्त्रराजः सदा पातु ऊर्ध्वाधो दिग्विदिक्स्थितः । चक्रराजे स्थिताश्चापि देवताः परिपान्तु माम् । उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता पातु पूर्वे त्रिकोणके । नीला घना बलाका च तथापरत्रिकोणके ॥ मात्रा मुद्रामिता चैव तथा मध्यत्रिकोणके । काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ॥ बहिः षट्कोणके पान्तु विप्रचित्ता तथा प्रिये ! । सर्वाः श्यामाः खड्गधरा वामहस्तेन तर्जनाः ॥ ब्राह्मी पूर्वदले पातु नारायणी तथाग्निके । माहेश्वरी दक्ष-दले चामुण्डा राक्षसेऽवतु ॥ कौमारी पश्चिमे पातु वायव्ये चापरा-जिता । वाराही चोत्तरे पातु नारसिंही शिवेऽवतु ॥ ऐं ह्रीं असिताङ्गः पूर्वे भैरवः परिरक्षतु । ऐं ह्रीं रुरुश्चाग्निकोणे ऐं ह्रीं चण्डस्तु दक्षिणे ॥ ऐं ह्रीं क्रोधो नैर्ऋतेऽव्यात् ऐं ह्रीं उन्मत्तकस्तथा । पश्चिमे ऐं ह्रीं मां कपाली वायुकोणके ॥ ऐं ह्रीं भीषणाख्यश्च उत्तरेऽवतु भैरवः । ऐ ह्रीं संहार ऐशान्यां मातॄणामङ्कगा शिवाः ॥ ऐ हेतुको वटुकः पूर्वदले पातु सदैव माम् । ऐं त्रिपुरान्तको वटुक आग्नेय्यां सर्वदाऽवतु ॥ ऐं

दिशा, ह्रीं ह्रीं पश्चिम दिशा और हुं हुं मेरे उत्तर दिक् की सर्वदा रक्षा करें । स्वाहा मेरी पीठ और मूला मेरी सर्वत्र युवती मेरी सर्वाङ्ग एवं मंत्रराज मेरे ऊर्द्ध्व नीचे दिशा और विदिशा में अवस्थान करके सर्वदा रक्षा करें । चक्रराज और संपूर्ण देवता भी इसीप्रकार अवस्थिति करके सर्वदा मेरी रक्षा करें । उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता मेरे पूर्व त्रिकोणक, नीला, घना और बलाका मेरे अपर त्रिकोणक, मात्रा, मुद्रा और मिता मेरे मध्य त्रिकोणक काली कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी और विप्रचित्ता मेरे बहिः षट्कोणक की सर्वदा रक्षा करें । यह समस्त श्यामवर्ण एवं सभी खड्ग और तर्जनी धारिणी हैं । ब्राह्मी मेरे पूर्वदल, नारायणी अग्निदल, माहेश्वरी दक्षिणदल, चामुण्डा नैऋतदल, कौमारी पश्चिमदल, अपराजिता वायुदल और वाराही उत्तरदल की सर्वदा रक्षा करें । असिताङ्ग भैरव मेरे पूर्व रुरु अग्निकोण चण्ड दक्षिण, क्रोध नैऋत, उन्मत्त पश्चिम, कपाली वायुकोण भीषण उत्तर संहार ऐशानी, बटुक पूर्वदल, त्रिपुरान्तक वटुक आग्नेय, और बन्हि वेताल दक्षिण दल की सर्वदा रक्षा करें । अग्नि जिह्वा वटुक मेरे नैऋत, कालवटुक पश्चिम, करालवटुक वायव्य, एक वटुक उत्तर और भीम वटुक ऐशान दलकी सर्वदा रक्षा करें । स्वाहान्ता चतुःषष्टिः [६४] मातृगण मेरे ऊपर नीचे सन्मुख और पश्चात् की रक्षा करें । सिंह व्याघ्र मुखी मेरे पूर्वदिक् सर्प सुमुखी मेरे अग्निकोण, मृग, मेषमुखी, मेरे दक्षिण, गजराज मुखी मेरे

वन्हिवेतालो वटुको दक्षिणे मां सदाऽवतु । ऐं अग्निजिह्ववटुकोऽव्यात् नैर्ऋत्यां पश्चिमे तथा । ऐं कालवटुकः पातु ऐं करालवटुकस्तथा । वायव्यां ऐं एकः पातु उत्तरे वटुकोऽवतु ॥ ऐं भीमवटुकः पातु ऐशान्यां दिशि मां सदा । ऐं ह्रीं ह्रीं हुं फट् स्वाहान्ताश्चतुः षष्ठिमातरः ॥ उर्द्धवाधो दशवामाग्रे पृष्ठदेशे तु पातु माम् । ऐं हुं सिंह व्याघ्रमुखी पूर्वे मां परिरक्षतु ॥ ऐं कां कीं सर्पमुखी अग्निकोणे सदाऽवतु । ऐं मां मां मृगमेषमुखी दक्षिणे मां सदाऽवतु ॥ ऐं चौं चौं गजराजमुखी नैर्ऋत्यां मां सदाऽवतु । ऐं में में विड़ालमुखी पश्चिमे पातु मां सदा । ऐं खौं खौं क्रोष्टुमुखी वायुकोणे सदाऽवतु । ऐं हां हां ह्रस्वदीर्घमुखी लम्बोदरमहोदरी । पातु मामुत्तरे कोणे ऐं ह्रीं ह्रीं शिवकोणके । ह्रस्वजङ्घतालजङ्घप्रलम्बौष्ठी सदाऽवतु ॥ एताः श्मसान वासिन्यो भीषणा विकृताननाः पातु मां सर्वदा देव्यः साधकाभीष्ट पूरिकाः ॥ इन्द्रो मां पूर्वतो रक्षे दाग्नेय्यामग्निदेवता । दक्षे यमः सदा पातु नैर्ऋत्यां नैर्ऋतिश्चमाम् ॥ वरुणोऽवतु मां पश्चात् वायुर्मां वायवेऽवतु । कुवेरश्चोत्तरेपायात् ऐशान्यान्तु सदाशिवः ॥ ऊर्द्धवं ब्रह्मा सदा पातु अधश्मानन्त देवता । पूर्वादिदिक्स्थिताः पान्तु वज्राधारश्चायुधाश्च माम् ॥ कालिकाऽवतु शिरसि हृदय । कालिकाऽवतु आधारे कालिका पातु पादयोः कालिकाऽवतु ॥ दिक्षु मां कालिका

नैर्ऋतकोणे, बिडालमुखी मेरे पश्चिम, क्रोष्टमुखी मेरे वायुकोण, लम्बोदर महोदरी और ह्रस्व दीर्घमुखी मेरी उत्तर और ऐशानकोण एवं ह्रस्व जंघा तालजंघा और प्रलम्बौष्ठी सदा मेरी रक्षा करैं । यह सभी श्मशान वासिनी सभी भीषण प्रकृति सभी विकृत मुखी और सभी साधक का अभीष्ट पूर्ण करती हैं । यह सब सदा मेरी रक्षा करैं । इन्द्र मेरे पूर्वदिक् अग्नि देवता आग्नेयकोण, यमदक्षिणदिक्, नैर्ऋतिनैर्ऋतकोण वरुणपश्चिम, वायु वायुकोण, कुबेर उत्तरदिक् और ऐशानकोण में सदा रक्षा करैं ब्रह्मा मेरे ऊर्द्ध अनन्त देवता मेरे अगः और वज्रादि सम्पूर्ण आयुध पूर्वादिदिक् में अवस्थित करके मेरी रक्षा करैं । देवी कालिका मेरे मस्तक, हृदय पाद, आधार, समस्त दिशा, विदिशा, नीचे और ऊपर एवं चर्म, मांस, शोणित, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्र, एवं सिद्धि मेरें इन्द्रिय और मन की सर्वदा रक्षा करै । देवी कालिका मेरे केश से पाद पर्यन्त और मेरी आकाश, पथ शयन, एवं सब कार्य में रक्षा करैं ॥ और मेरे पुत्र और धन की भी इसी प्रकार रक्षा करैं ॥ जिन के ऊपर मेरा सन्देह है, देवी की आज्ञा से वह

पातु विदिक्षु कालिकाऽवतु । ऊर्द्ध्वं मे कालिका पातु अधश्च कालिकाऽवतु चर्मास्रङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि मेऽवतु । इन्द्रियाणि मनश्चैव देहं सिद्धिञ्च मेऽवतु ॥ आकेशात् पादपर्यन्तं कालिका मे सदाऽवतु । वियति कालिका पातु पथि मां कालिकाऽवतु शयने कालिका पातु सर्वकार्येषु कालिका । पुत्रान् मे कालिका पातु धनं मे पातु कालिका ॥ यत्र मे संशयाविष्टास्ता नश्यन्तु शिवाज्ञया । इतीदं कवचं देवि ! ब्रह्मलोकेऽपि दुर्लभम् ॥ तव प्रीत्या मया ख्यातं गोपनीयं स्वयोनिवत् तव नाम्नि स्मृते देवि ! सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ सर्वपापः क्षयं याति वाञ्छा सर्वत्र सिध्यति । नाम्नाः शतगुणं स्तोत्रं ध्यानं तस्मात् शताधिकम् ॥ तस्मात् शताधिको मन्त्रः कवचं तच्छताधिकम् । शुचिः समाहितो भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ संस्थाप्य वामभागे तु शक्तिं स्वामि परायणम् । रक्तवस्त्रपरीधानां शिवमन्त्रधरां शुभाम् ॥ या शक्तिः सा महादेवी हररूपश्च साधकः । अन्याऽन्यचिन्तनाद्देवि । देवत्वमुपजायते । शक्तियुक्तो यजदेवीं चक्रे वा मनसापि वा । भोगैश्च मधुपर्काद्यै स्ताम्बूलैश्च सुवासितैः ॥ ततस्तु

सब नष्ट हों । हे देवी ! यही देवी कालिका का कवच है! यह ब्रह्मलोक में भी दुर्लभ है, अपनी योनि की समान सर्वदा इस को गुप्त रक्खे । केवल तुम्हारी प्रीति के वश होकर ही मैंने इसका वर्णन किया । हे देवि ! तुम्हारा नाम स्मरण करने से ही समस्त यज्ञ का फल लाभ होता है, समस्त पातक क्षय होते हैं, सर्वदा सर्वत्र वांछासिद्धि होती है तुम्हारे नाम की अपेक्षा भी तुम्हारा स्तोत्र शतगुण श्रेष्ठ है और तुम्हारा ध्यान उस स्तोत्र की अपेक्षा भी शतगुण श्रेष्ठ है, तुम्हारा मंत्र उस ध्यान की अपेक्षा शतगुण श्रेष्ठ भावापन्न और तुम्हारा कवच उस मंत्र की अपेक्षा भी शतगुण श्रेष्ठ है । शुचि, समाहित और भक्ति श्रद्धा समन्वित होकर वाम भाग में पति परायण लाल वस्त्र धारिणी, शिव मंत्र में दीक्षिता शुभ स्वरूप शक्ति स्थापन करै । साधक साक्षात् हरस्वरूप और शक्ति साक्षात् महादेवी स्वरूप है । परस्पर के चिन्तन द्वारा देवत्व उत्पन्न होता है । इस कारण शक्तियुक्त होकर देवी को चक्र में अथवा मन मन में सुवासित ताम्बूल और मधु पर्कादि विविध भोग्य वस्तु प्रदान सहित पूजा करके फिर एकाग्र मन से यह कवच पाठ करै तो उसकी संपूर्ण कामना सिद्ध होती हैं; इस में संदेह नहीं है। यह रहस्य जिस प्रकार सब विषयों से श्रेष्ठ हैं, इसी प्रकार परम महत् स्वस्त्ययन स्वरूप है । हे देवि ! जो व्यक्ति सावधान होकर एकबार इस कवच का पाठ वा इस को श्रवण करता है वह सम्पूर्ण मनोरथसिद्धि के पार को प्राप्त होकर अन्त समय देवीपुर में गमन करता है । अधिक क्या इस देव दुर्लभ कवच के सकृत

कवचं दिव्यं पठेदेकमनाः प्रिये ! । तस्य सर्वार्थ सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥ इदं रहस्यं परमं परं स्वस्त्ययनं महत् । यः सकृत्तु पठेद्देवि ! शृणुयाद्वा समाहितः ॥ स सर्वान् लभते कामान् परे देवी पुरं व्रजेत् । सकृद्यस्तु पठेद्देवि ! कवचं देवदुर्लभम् ॥ सर्वयज्ञफलं तस्य भवेदेव न संशयः । संग्रामे च जयेत् शत्रुन् मातङ्गानिव केशरी ॥ नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि शरीरे प्रभवान्ति च तस्य व्याधिः कदाचिन्न न दुःखं नास्ति कदाचन ॥ गतिस्तस्यैव सर्वत्र वायुतुल्यः सदा भवेत् । दीर्घायुः कामभोगीशो गुरुभक्तः सदा भवेत् ॥ अहो कवचमाहात्म्यं पठमानस्य नित्यशः । विनापि नययोगेन योगीशसमतां व्रजेत् ॥ भूर्जत्वाचि समालिख्य चक्रं तन्त्रविनिर्मितम् । मध्यत्रिकोणे संलिख्य साध्यसाधकयोर्लिपिम् ॥ उद्धरेन्मूलमन्त्रञ्च मातृकार्णैन वेष्टयेत् । लघुमिश्रेण चन्द्रेण चन्दनाभ्यां सुरेश्वरि! ॥ एतन्मन्त्रं महेशानि ! सुरासुरसुदुर्लभम् । गोरोचनाकुङ्कमाभ्यां तद्वाह्ये कवचं लिखेत् ॥ श्वेतसूत्रेण संवेष्ट्य लाक्षया परिमण्डयेत् । पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा शुभेऽहनि ॥ संपूज्य

पाठ करने से समस्त यज्ञ का फल लाभ होता है । इस में सन्देह नहीं है । केशरी [सिंह] जिस प्रकार हस्ती गणों को जय करता है, वह व्यक्ति इसी प्रकार संग्राम में समस्त शत्रुगणों को पराभूत करता है । सम्पूर्ण अस्त्र और शस्त्र भी उस के शरीर में अपना प्रकाश नहीं कर सक्ते । उस को कभी व्याधि नहीं रहती और उसको कभी दुःख भी नहीं होता । वह व्यक्ति वायु की समान जहां इच्छा हो, वहां जा सक्ता है एवं दीर्घायु और गुरुभक्त होता है इच्छानुसार वह समस्त विषय भोग कर सक्ता है । अहो इस कवच का माहात्म्य नित्य पाठ करने से साधक नवयोग के बिना ही योगेश्वर की समान हो जाता है । भूर्जत्व को तंत्र विनिर्मित चक्र अंकित और मध्य त्रिकोण को साध्य साधक दोनों की लिपिलेखन पूर्वक मूलमंत्र का उद्धार करके मातृकावर्ण में वेष्टित करै । हे सुरेश्वरी ! लघुमिश्र कर्पूर और द्विविध चंदन द्वारा यह सुरासुर दुर्लभ मंत्र लिखकर उस के बाह्य में गोरोचना और कुंकुम द्वारा कवच लिखना चाहिये । अनन्तर सफेद डोरे से वेष्टन करके लाक्षा [लाख] द्वारा मंडित करै । फिर पंचामृत और पञ्चगव्य में स्नान कराकर शुभदिन में देवता रूपिणी, सकला भीष्ट साधिनी गुटिका की भली भांति पूजा सहित प्राण प्रतिष्ठा मंत्र द्वारा उस में प्राण

देवतारूपं गुटिकां सर्वकामदाम् । प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणं तत्र नियोजयेत् अन्तर्योनिं ततो ध्यात्वा तत्र संस्थापयेत् बुधः । एषा तु गुटिका देवि ! कण्ठलग्नाऽखिलप्रदा ॥ शीर्षे वश्यकरी देवि ! नाभौ स्तम्भनकारिणी । बद्ध्वावाम भुजे ह्येषा वैरिपक्ष क्षयङ्करी ॥ जठरे रोगदमनी पुत्रदा हृदि संस्थिता । विद्याकरी ललाटस्था सिखायान्तु यशःप्रदा ॥ सर्वकामप्रदा देवी सर्वरोगक्षयङ्करी । दक्षिणे बाहुमूले वै यदि तिष्ठति सर्वदा ॥ तदा सर्वार्थसिद्धिः स्याद् यद्यन्मनसिवर्त्तते । त्र्यहात्तुकवचस्यास्य पठनाद्धारणात् प्रिये ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति तवस्नेहात् प्रकाशितम् । गुरोःपादप्रसादेन सद्विद्या यदि लभ्यते ॥ तथैव कवचं देवि । ना जप्त्वा गुरुपादुकाम् । तत्फलं नाशमाप्नोति परे नरकमाप्नुयात् ॥ सत्यं सत्यं पुनःसत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः । न शक्नोमि प्रभावन्तु कवचस्यास्य वर्णितुम् ॥ यस्मै कस्मै न दातव्यं कवचञ्च सुदुर्लभम् । न देयं परशिष्येभ्यः कृपणेभ्यः सुरेश्वरिः ॥ शिष्याय भक्तियुक्ताय सेवकाय तथैव च । गुरुभक्तिविहीनाय परदार-रताय च ॥ निन्दकाय कुलीनाय दाम्भिकाय च सुन्दरि । यो ददाति निषिद्धेभ्यः कवचं सम्मुखात् श्रुतम् ॥ तस्य नश्यान्ति देवेशि ! आयुः

नियोजित करे। फिर अन्तर्योनिका ध्यान करके, इस में स्थापन करना चाहिये। हे देवि ! यह गुटिका कंठ लग्न होने से संपूर्ण प्रदान करती है। शीर्ष में स्थापित होने से सब का वशीकरण समाधान करती है नाभि में रखने से सब को स्तंभित करती है, बांई भुजा में बांधने से विपक्ष कारिणी होती है, जठर में रखने से रोग दमनी होती है हृदय में स्थित होने से पुत्र दायिनी होती है, ललाट में रहने से विद्या प्रदान करती है शिखा में रखने से यश विधान करती है, एवं सर्वरोग क्षय और सब प्रकार की कामना का साधन करती है। और यदि सर्वदा बाहु मूल में रहे तो मन में जो इच्छा करी जाय, वही सर्व अभीष्ट सिद्ध होता है। हे प्रिये ! इस कवच का धारण वा इस के पाठ करने से तीन दिन में ही सब प्रकार की कामना सफल होती हैं मैंने तुम्हारे प्रति स्नेह के वश होकर इसको प्रकाश किया। श्री गुरु के चरण प्रसाद से यदि सद्विद्या लाभ करी जाय, तो इस प्रकार से संपूर्ण मनोरथ ही सिद्ध होते हैं। हे देवि ! इस कवच का जप न करने से निःसंदेह नरक लाभ होता है मैं यह सत्य ही सत्य कहता हूं, और पुनर्बार सत्य ही सत्य कहता हूं। इस कवच का प्रभाव वर्णन करने में मेरी सामर्थ नहीं है। यह अत्यन्त दुर्लभ है। जिस किसी को इस का प्रदान न करे। हे सुरेश्वरी ! पराये शिष्य और कृपणादि को भी इस का प्रदान न करे।

कीर्त्तियशः श्रियः। न हिंसन्ति सदा देवि! योगिन्यो मातृमण्डलात्॥ परे नरकमाप्नोति जन्मकोटिशतानि च। देयं शिष्याय शान्ताय गुरुभक्तिपराय च॥ सर्वलक्षणयुक्ताय तत्तन्मन्त्रयुताय च॥

इत्युत्तरतन्त्रे कालीप्रस्तावे कालीभैरवसंवादे
श्रीमद्दक्षिणकालिकाकवचं सम्पूर्णम्।

विरूपाक्ष उवाच–

नमामि गुरुमक्षोभ्यं मंत्रशक्तिसमन्वितम्। प्रसन्नं ज्ञानमज्ञानं हेतुं बुद्धिप्रकाशकम्॥ गजेंद्रवदनं नौमि रक्तं विघ्न विदारकम्। पाशांकुशवराभीति लसद्भुजचतुष्टयम्॥ भैरवः सर्वदा पातु ऋषिर्मे शिरसोपरि। मुखे छन्दः सदा पातु त्रिष्टुप् च विजयात्मकम्॥ गुणत्रयमयी शक्तिः परशक्तिस्तु ईडिता। ब्रह्मस्वरूपिणी पातु हृदये मम कालिका॥ बीजस्वरूपिणी पातु क्रीङ्कारी शक्तिरूपिणी। हूं शक्ति सर्वदा पातु सर्वरक्षास्वरूपिणी॥ महाकालः सदा पातु महाभीमपराक्रमः। ददातु मम कामानि सर्वसिद्धीश्वरो यतः॥ आदि लृवर्णपर्य-

भक्ति युक्त शिष्य और सेवक को ही यह देना चाहिये। जो व्यक्ति भक्ति हीन परदार रत, निन्दक, दाम्भिक, और अकुलीन है, उस को दान करना विहित नहीं है। जो व्यक्ति मेरे मुख से इसको सुनकर इस प्रकार निषिद्ध व्यक्तिगण को इसका प्रदान करता है, हे देवेशि! उसकी आयु, कीर्त्ति, यश, और श्री सम्पूर्ण नष्ट होती है मरने के पीछे उसको शतशत कोटि जन्म में नरक लाभ होता है। शान्तस्वभाव, गुरुभक्ति परायण सर्वलक्षण लक्षित और तत्तत् मंत्र युक्त शिष्य को ही इस का प्रदान करे।

विरूपाक्षने कहा, जिनको किसी प्रकार विकार वा अवसाद (आलस्य) नहीं है, जो मंत्रशक्ति युक्त हैं जो बुद्धि को प्रणयन करते हैं और जो सबके कारण स्वरूप हैं, उन्हीं प्रसन्न स्वरूप ज्ञानमूर्त्ति गुरु को नमस्कार है जो गजेन्द्रवदन, रक्तवर्ण और विघ्नविनाशन एवं पाश, अंकुश, वर, और अभय के संसर्ग से जिनकी चारों भुजा भलीभाँति शोभायुक्त हुई हैं, उन्हीं गणपति को प्रणाम करता हूं। भैरवऋषि सर्वदा मेरे मस्तक की रक्षा करैं। विजयात्मक त्रिष्टुप् छंद सदा मेरे मुखमण्डल की रक्षा करे। जो त्रिगुणमयी शक्ति स्वरूप, और जो सब की पूजिता साक्षात् परमशक्ति हैं, वह ब्रह्म स्वरूपिणी कालिका मेरे हृदयदेश की रक्षा करैं। जो बीजस्वरूपिणी हैं, वह शक्ति स्वरूपिणी क्रीङ्कारी मेरी रक्षा करै। सर्वरक्षा स्वरूपिणी हूं शक्ति सर्वदा मेरी

न्ताः हृदये ममगातृकाः। एघान्ते ङादि चान्ताश्च रक्षन्तु बाहुयुग्मके ॥ नभोमध्यगता वर्णा मादिक्षान्तास्तथैव च । सबिन्दवः सदा पान्तु जङ्घयोरुभयोर्मम ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्या विघ्नदेहास्तथा पुनः। पृथगूष्मादा समध्याश्च वर्णा रक्षन्तु मां सदा ॥ समस्तरोम-कूपेषु मर्मस्थानेषु सन्धिषु। नाड़ीधातुविकारेषु रक्षन्तु मम मातृकाः। शक्तिराधाररूपा या सा पातु परमेश्वरी। अवर्णः सर्वदा पातु सर्वदेवमयः स्वयम् ॥ फणागताऽवनिः पातु समुद्रः पातु मां सदा। रत्नद्वीपः सदापातु रक्षन्तु कल्पपादपाः ॥ श्मशानपीठकः पातु पातु मां मानवेदिका । सदाशिव महाप्रेत शवो मां परिरक्षतु ॥ द्वारदश द्वारपाला योगिन्यः पान्तु मां सदा। सिद्धयोऽष्टौ सदा पान्तु पूर्वादि वसुदिग्गताः ॥ कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां तथैव च। विरोधिनीं विप्रचित्तां नमामि सर्वसिद्धये ॥ एतास्तु वशयोगिन्यो बहिः षट्कोणकेस्थिताः। रक्षन्तु मां सदा देव्यो मातरो भक्तवत्सलाः॥

रक्षा करैं। महाभीम पराक्रम महाकाली भी सर्वदा मेरी रक्षा करें। वह सम्पूर्ण सिद्धि के अधिनायक हैं। अतएव मेरी संपूर्ण कामना पूर्ण करैं। 'अ' से ल पर्यन्त मातृ का गण मेरे हृदय 'ए' से 'घ' पर्यन्त और 'ङ' से च पर्यन्त मातृकागण मेरी दोनों बाहु, आकाश मध्यगत समस्त वर्ण और 'म' से 'क्ष' पर्यन्त सब मातृकागण विन्दु के सहित सर्वदा मेरे दोनों जंघा की रक्षा करैं। भूत, प्रेत और पिशाचादि, समस्त विघ्न देह, और समध्यवर्ण समूह सदा मेरी रक्षा करैं। मातृकागण मेरे समस्त रोम कूप (रुवों के गड्ढे) समस्त मर्म स्थान, समस्त सन्धिस्थल, समस्त नाड़ी और धातु की रक्षा करैं। जो आधाररूपा शक्ति हैं, वह परमेश्वरी मेरी रक्षा करैं। स्वयं सर्वदेवमय अवर्ण सदा मेरी रक्षा करे। फणास्थिता, अवनि, समुद्र, रत्नद्वीप, कल्प, पादप समूह, श्मशान पीठ, मानवेदि सदाशिव और महाप्रेत शव यह सर्वदा मेरी रक्षा करैं। द्वारदेश में द्वारपाल और योगिनी गण एवं पूर्वादि अष्टदिक् स्थित अष्ट विधि सिद्धि सदा मेरी रक्षा करें! मैं सर्व विध सिद्धि साधन की कामना से काली कपालिनी, कुल्ला कुरु कुल्ला, विरोधिनी विप्रचित्ता इनको नमस्कार करता हूं। यह छै वश योगिनी वाहर के षट्कोण में सदा अवस्थिति करती हैं। यह सभी भक्तवत्सला, सभी देवी और सभी जगत् की जननी स्वरूप हैं। यह सर्वदा मेरी रक्षा करैं। मैं आत्म विभूति के लिये उग्रा उग्रप्रभा और दीप्ता, इनको भी प्रणाम् करता हूं। यह मुझको सर्वविधि सिद्धि प्रदान और पुत्र की समान सदा पालन करैं। मैं उत्सुक हृदय से नीला, घना, और वलाका इनको भी प्रणाम करता हूं। यह मेरे

उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां नमाम्यात्मविभूतये। सर्वसिद्धिं प्रयच्छन्तु पान्तु मां पुत्रवत् सदा ॥ नीलां घनां बलाकांच प्रणमामि समुत्सुकः। सर्व-विघ्नान् समुत्सार्य्य रक्षन्तु कलुषार्णवात् ॥ मात्रामुद्रामितानां च नमामि चरणाम्बुजम्॥ देवीप्रेम सखीनां च शरणं यामि सिद्धये॥ एताः पंचदशे कोणे एकैका वरदा सदा । तर्जनीं वामहस्तेन खड्गं दक्षिणपाणिना ॥ मुण्डमाला धराः शीर्षे नीलाञ्जनचयोपमा। शत्रुभ्यः सिद्धिदाश्चण्डाः पांतु मां कालिकाप्रियाः ॥ बहिः पद्मदलांते तु ब्रह्माण्याद्यष्टशक्तयः। रक्षंतु मे प्रयच्छंतु सर्वासिद्धिं दयान्विताम् ॥ ब्रह्माणी पातु मां पूर्वे सर्वाः शिववरप्रदाः । बह्नौ नारायणी पातु सर्व कामार्थ सिद्धिदा ! माहेशी दक्षिणे पातु सर्व मङ्गलकारिणी। चामुण्डा नैर्ऋते पातु सर्वशत्रुप्रमर्दिनी ॥ कौमारी पश्चिमे पातु शक्तिहस्ता विभूदिनी। अपराजिता च वायव्या पातु मां जयदा शुभा ॥ उत्तरे पातु वाराही वरदा घोररूपिणी नारसिंही सदापातु

सम्पूर्ण विघ्न दूर करके मुझको कलुष सागर (पाप समुद्र) से पार करें। मैं मात्रा मुद्रा और मिता. इनके चरण कमलों में भी प्रणत होता हूं। यह सभी देवी की प्रेम सखी हैं। सिद्धिलाभ होने की वासना से इनकी शरण ग्रहण करता हूं। यह प्रत्येक वरदा और पंचदश कोण में एक एक क्रम से स्थिति करती हैं। इनके वाम हस्त में तर्जनी औ दक्षिण हाथ में खड्ग है। और मस्तक में मुण्डमाला है। यह सभी नीले अंजन के ढेर की समान, सभी कालिका की प्रिय, और सभी प्रचण्ड प्रकृति, और सभी शत्रु गणों को भी सिद्धि प्रदान करती हैं। यह मेरी रक्षा करैं। बाहर के पद्म-दलांत में ब्रह्माणी इत्यादि अष्टशक्ति दयायुक्त होकर मेरी रक्षा और सर्वसिद्धि सिद्धि प्रदान करैं। शिव वरप्रदा ब्रह्माणी मेरे पूर्वदिक, सर्व कामार्थ सिद्धिदा नारायणी आ-ग्नेयकोण सर्वमंगल कारिणी माहेशी मेरे दक्षिण दिक्, सर्वशत्रुमर्दिनी चामुण्डा मेरी नैर्ऋत कोण शक्तिहस्ता कौमारी मेरी पश्चिम दिक्, ऊयदा और शुभ स्वरूपा अप-राजिता मेरी वायुकोण, घोररूपिणी वरदा वाराही मेरी उत्तर दिक और भय नाशिनी नारायणी मेरी ईशान कोण में सदा रक्षा करैं । यह परविद्या रूपिणी कालिका को अष्टशक्ति हैं और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवादि के तेज से उत्पन्न हुई हैं।

स्वयं परमेश्वरी कालिका बिन्दुमय सूर्येन्दु बन्हि पीठ में स्थिति करती हैं। उन्हीं पर भैरवी दक्षिणा मूर्ति को नमस्कार करता हूं। वह काले अंजन के ढेर की सदृश प्रवीण शब्द के ऊपर अवस्थिति करती हैं। विगलित शोणित धारा के संसर्ग से उन

ऐशान्यां भयनाशिनी ॥ एतास्तु वरविद्यायाः शक्तयश्चाष्टदेवताः। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तेजोभिन्नकलेवरा ॥ सूर्येन्दुवह्निपीठे तु वैन्दवे परमेश्वरी। नमामि दक्षिणामूर्त्तिं कालिकां परमेश्वरीम् ॥ भिन्नाञ्जनचयप्रख्यां प्रवीनशवसंस्थिताम् । गलच्छोणितधाराभिः स्मेराननसरोरुहाम् ॥ पीनोन्नतकुचद्वन्द्वां पीनवक्षोनितम्बिनीम् । दक्षिणे मुक्तकेशां च दिगम्बरविनोदिनीम् ॥ महाकालसमाविष्टां स्मेरानन्दोपरि स्थिताम् । सुखसान्द्रस्मितामोदमोदिनीं मदविह्वलाम् ॥ आरक्तसुखसान्द्रादिनेत्रालीभिर्विराजिताम् । शवद्वयकृतोत्तंसां सिन्दूर तिलकोज्वलाम् ॥ पञ्चाशन्मूर्त्तिघटितमालां शोणितलोहिताम् । नानामणिविशोभाढ्यां नानालङ्कारशोभिताम् ॥ शवास्थिकृतकेयूरशङ्खकङ्कणमण्डिताम् । शववक्षः समारूढां लेलिहानां शवं क्वचित् ॥ शवमांसकृतग्रासां साट्टहासां मुहुर्मुहुः । खड्गमुण्डधरां वामे सव्येऽभयवरप्रदाम् ॥ दन्तुराञ्च महारौद्रीं चण्डनादातिभीषणाम् । शिवाभिर्घोररावाभिर्वेष्टितां भयनाशिनीम् ॥ भाभैर्माभैः स्वभक्तेषु जल्पन्तीं घोरनिस्वने । यूयं किमिच्छथ ब्रूथ ददामीतिप्रभाषिणीम् ॥ त्वं गतिः

का मुखकमल विकसित होगया है। उनके दोनों पयोधर पीनोन्नत हैं, उनका वक्षस्थल और नितम्ब पीवर (मोटे) भाव युक्त हैं। वह दक्षिण बिगलित केशपाश में दिगम्बर के सङ्ग विहार करती हैं और महाकाल के सहित सर्वदाही परमानन्द रसभोग में आसक्त रहती हैं। सुख की गाढता से वह जिस प्रकार स्मितमुखी हैं, इसी प्रकार आनन्दमोहनी और मदविह्वला हुई हैं, और उनके लोचनपरम्परा भी इसी प्रकार सुख की प्रौढता से रक्तवर्ण और तन्निबंधन उनकी अतीव शोभा उत्पन्न हुई है। उनके कर्णमूल शव युगल के भूषण से अलंकृत हैं। उन्होंने सिंदूर तिलक के संसर्ग से अत्यन्त विकस्वर मूर्त्ति धारण करी है उन के हाथ में पञ्चाशत (पचास) मूर्त्ति निर्मित माला विराजमान हैं। उन के कलेवर ने शोणित (रुधिर) के संसर्ग से लोहित (लाल) वर्ण धारण किया है। अनेक मणियों की निकटता से उनकी शोभा की सीमा नहीं है। अनेक अलंकार पहरने से उन की शोभा समुद्भूत हुई है। वह शवास्थि निर्मित केयूर, कंकण और शंख में विमण्डित और शव हृदय में आरोहण करके कभी शवहन (मुरदे का चाटना) और कभी शव मांस ग्रास एवं बारम्बार अट्टहास करती हैं। उसके वामहस्त में खड्ग और मुण्ड, एवं दक्षिणहस्त में अभय और वरमुद्रा है। उनकी दाढें अत्यन्त तीक्ष्ण स्वभाव और दृश्य अत्यन्त प्रचंड, और नाद अत्यन्त भयंकर है। तिनके द्वारा उन्होंने अत्यन्त भीषण-

शरणं देवि ! त्वं माता परमेश्वरि ! । पाहि मां करुणासान्द्रे ! नमस्ते परमेश्वरि नमस्ते कालिके ! देवि ! नमस्ते भक्तवत्सले ! । मूर्खतां हर मे देवि ! प्रतिभाप्रतिदायिके ! ॥ गद्यपद्यमयीं वाणीं तर्कव्याकरणादिकाम् । अनधीतगतां विद्यां देहि दक्षिणकालिके ! ॥ जयं देहि सभामध्ये धनं देहि धनागमे । देहि मे चिरजीवित्वं कालिके ! रक्ष दक्षिणे ! ॥ राज्यं देहि यशो देहि पुत्रा दारान्धनं तथा । देहान्ते देहि मे मुक्तिं जगन्मात ! नमोऽस्तु ते ॥ मङ्गला भैरवी दुर्गा कालिका त्रिदशेश्वरी । उमा हैमवती कन्या कल्याणी भैरवेश्वरी ॥ काली ब्राह्मी च माहेशी कौमारी माधुसूदनी । वाराही वासनी चण्डा त्वां जगुर्मुनयो मुदा ॥ उग्रतारेति तारेति शिवेत्येकजटेति च । लोकोत्तरेति बालेति गीयते कृतिभिः सदा ॥ यथा काली तथा तारा तथा छिन्ना च कुल्लुका । एकमूर्त्तिश्चतुर्भिश्च देवि ! त्वं कालिकापरा एकद्वित्रिविभा देवि ! कोटिधाऽनन्तरूपिणी । अङ्गाङ्गकैर्नामभेदैः कालिकेति प्रगीयते ॥ शम्भुः पञ्चमुखेनैव गुणान् वक्तुं क्षमो न ते । चापलं यत् कृतं सर्वं क्षमस्व शुभदा भव । प्राणान् रक्ष यशो रक्ष पुत्र-

मूर्त्ति परिग्रह करी है । समस्त शिवागण घोर शब्द से उनको घेरकर विचरण करती हैं । वह सबका ही भय विनाश करती है और घोर निःस्वनसे भक्तगणों को 'भय नहीं' यह वारम्वार कहकर आश्वस्त (धीरज बँधाना) करती हैं और कहती हैं तुम क्या इच्छा करती हो, सो कहो, मैं वही प्रदान करूंगी । हे देवि ! तुम्ही गति तुम्हीं शरण, तुम्हीं परमेश्वरी और तुम्हीं जननी हो । अधिक क्या, तुम सदा ही करुणारसमें आर्द्र रहती हो । मेरी रक्षा करो । हे परमेश्वरि ! तुमको नमस्कार है । तुम्हीं देवी कालिका हो, तुमको नमस्कार है । तुम्हीं भक्तवत्सला हो, तुमको नमस्कार है । हे देवि ! मेरी मूर्खता हरण करो । तुम सब को प्रतिभा (प्रताप) प्रदान करती हो । तुम्हीं दक्षिण कालिका हो । मुझको गद्यपद्यमयी तर्क व्याकरणादिकी वाणी और अनधीतगता विद्या (जो नहीं पढ़ी है) प्रदान करो । मुझको सभा में जय प्रदान करो , धनागम में धन प्रदान करो और चिरंजीवित्व प्रदान करो । हे दक्षिणकालिके ! मेरी रक्षा करो । तुम्हीं जगत् की माता हो तुमको नमस्कार है । तुम मुझ को राज्य, यश, पुत्र, कलत्र और वित्तप्रदान करो और देहके अन्त में मुक्ति प्रदान करो । मुनिगण आहलाद सहित तुम को ही मंगला, भैरवी, दुर्गा कालिका, त्रिदशेश्वरी, उमा, हैमवती, कन्या, कल्याणी, भैरवेश्वरी,

दारधनं तथा । सर्वकाले सर्वदेशे पाहि दक्षिणकालिके ! ॥ यः संपूज्य पठेद्रक्षां दिवा वा सन्ध्ययोस्तथा । अवाप्य महतीं प्रज्ञां सर्वकामांस्ततो लभेत् ॥ यद्यद् प्रार्थयते चित्ते तत्तदाप्नोति का कथा । स्वयं लक्ष्मीर्वसेद्देहे मुक्तिः करगता पुनः ॥

इति रुद्रयामले उत्तरतन्त्रे दक्षिणकालिका
कवचं समाप्तम् ।

अथ स्तोत्रम् । महाकालभैरव उवाच ।

स्त राजं शृणु राम ! सर्वकालमनोहरम् । यस्य स्मरणमात्रेण कालिका संप्रसीदति ॥ यद्भक्तस्त्वं यदेवासि भृगुवंशसमुद्भव ! । गोपनीयं प्रयत्नेन पठनीयं परात्परम् ॥ कालिस्तोत्रं मम प्रेयः कस्मैचिन्न प्रकाशितम् । कथ्यते त्वदनुरोधात् सर्व पाप प्रणाशनम् ॥ शृणु पाम ! शृणु राम ! शृणु राम ! सदैव हि । गोपनीयं

काली, ब्राह्मी, माहेशी, कौमारी, मधुसूदनी, वाराही, वासवि ।और चण्डा कहते हैं। और कृत्तिगण तुमको ही उग्रतारा, तारा, शिवा, एकजटा, लोकोत्तर और बाला कह कर स्तव करते हैं जो काली हैं, वही तारा वही छिन्ना, और वही कुल्ली हैं । हे देवो ! तुम्हीं इन चारों में एक मूर्त्ति कालिका हो । तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ वा विशिष्ट अन्य कोई नहीं है और कोई भी तुम से भिन्न नहीं है । सब तुम्हीं हो । तुम ही एक द्विविधा एवं तुम्हीं कोटिधा और अनन्तरूपिणी हो। तुम्हीअ ङ्गाङ्गि और नामभेदसे कालिका कहकर गाईजाती हो, शंभु पंच मुखसे भी तुम्हारे गुण वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। अतएव मैंने जो चपलता करी है उसको अपने गुणसे क्षमा करके शुभदा होओ और मेरे प्राण कीरक्षा करो। यशकी रक्षा करो। स्त्री पुत्र और धन की रक्षा करो। हे दक्षिण कालिके ! मेरी सर्वकाल और सर्वदेशमें रक्षा करो । जो व्यक्ति भली भांति पूजा करके दिवा वा संध्या समय यह रक्षा पाठ करता है, वह महती प्रज्ञा बुद्धि) लाभ करके सब प्रकार की कामनाके पारको प्राप्त होता है और मनमें जो प्रार्थना करता है, वही उसको प्राप्त होती है । इस विषयमें और बात क्या है ? स्वयं लक्ष्मी उसके देहमें वास करती है और मुक्ति भी उसके करगामिनी होती है ।

अनन्तर स्तोत्र लिखा जाता है । यथा—महाकाल भैरव ने कहा, हे राम ! स्तवराज श्रवण करो। यह सर्वकालमें ही मनहरण करता है। इसके केवल स्मरणमात्र से ही देवी कालिका परम प्रसन्न होती हैं । तिसपर भी तुम भक्तहो और तुमने भृगुवंश में जन्म ग्रहण किया है, इस कारण तुम्हारे प्रति इसको कहता हूं। यह परात्पर स्तव

गोपनीयं गोपनीयं न संशयः। गणरात्रे मुक्तकेशो नग्नः शक्तिसुसङ्गनः। रक्तचन्दनसिंदूरैस्तथा पंचोपकारकैः॥ मत्स्यमांससुराद्यैश्च ताम्बूलैश्च विशेषतः। पूजयित्वा महाकालीं महाकालरतातुराम्॥ तीर्थपानं विधायादौ ताम्बूलं भक्षयेत्ततः। भगलिंगामृतं मध्ये निवेदयेत् सुसाधकः। जपित्वा च महामंत्रं कालीरूपं मनोहरम्। मनसा चिंतयेत्कालीं पठन् स्तोत्रंतु साधकः। रक्षोयक्षपिशाचेभ्यो नित्यं रक्षाकरं परम्। प्रसन्ना कालिका तस्य पुत्रत्वेनानुकम्पते॥ दक्षिणे कालिके। मातुर्मुण्डमालाविभूषिते!। भक्तत्राणव्यग्रचित्ते! यमजाड्यं विनाशय। ज्वलच्चिताग्निमध्यस्थे! परिवारसमन्विते। त्वत्पदाम्भोजमापन्नं रक्ष मां पुत्रवत् सदा॥ महामेघच्छविन्यासे! मुक्तकेशि! चतुर्भुजे!। पाण्डित्यं कविताञ्चैव मह्यं देहि महेश्वरि!॥ वामोर्द्ध्वे च महाखड्गं विधारयसि शङ्करि! अधोलसच्छिन्नमुण्डे! मम विघ्नं विनाशय॥ अभयं दक्षिणे चोद्र्ध्वे तथाधःपाणिना वरम्। कण्ठसंसक्त मुण्डालि!

राज अति यत्नपूर्वक गुप्त रक्खै और पाठ करै। यह काली स्तोत्र मेरा परम प्रियतर है। इस कारण किसी के निकट इसका प्रकाश नहीं किया है। केवल तुम्हारे अनुरोध से ही इसको कहता हूं। इस का पाठ करने से समस्त पाप दूर होते हैं। हे राम! श्रवण करो, श्रवण करो, श्रवण करो। सदा गुप्त रक्खै, गुप्त रक्खै, गुप्त रक्खै। गणरात्रि में शक्ति के सहित नग्नवेश और मुक्तकेश होकर लाल चंदन, सिन्दूर, पंचविध उपचार विशेषतः मत्स्य, मांस और सुरादि व ताम्बूल प्रदान करने के पीछे महाकाल रतात्तुरा महाकाली की पूजा करके प्रथम तीर्थपान विधान, फिर ताम्बूल भक्षण और मध्य में लिङ्गामृत निदवेन करै। फिर कालीरूप मनोहर महामंत्र जपकर स्तोत्रपाठ सहित मन मन में देवी कालिका की चिंता करै। उस की यक्ष, राक्षस और पिशाच से यह स्तव नित्य रक्षा करता है। इस का पाठ करके ध्यान करने से देवी कालिका साधक को पुत्र भाव से अनुकम्पित करती हैं और उस के प्रति प्रसन्न होती हैं। इस प्रकार उन का स्तव करना चाहिये। हे दक्षिण कालिके! हे मातः! हे मुण्डमाला विभूषिते! हे भक्तत्राणव्यग्रचित्ते! मेरी यम यंत्रणा विनाश करो। हे प्रज्वलितचिताग्निमध्यस्थे! हे परिवारसमन्विते! मैं तुम्हारे चरणारविन्द की शरण हुआ हूं, मेरी सर्वदा पुत्र की समान रक्षा करो। हे महामेघस्वरूपिणि! हे मुक्तकेशि! हे चतुर्भुजे! हे महेश्वरी! मुझ को पाण्डित्य और कवित्व प्रदान करो। हे शंकरि! तुम बामोर्द्ध में महाखड्ग धारण करती हो। उस के अधोभाग में छिन्नमुण्ड

महाकालि! नमोऽस्तुते ॥ सततं त्वत्स्वरूपं ये स्मरन्ति साधकोत्तमाः। तेषां समस्तशास्त्रेषु गतिरव्याहता सदा ॥ चिन्तयामि च त्वन्नाम रक्ष मां सर्वतः सदा। दिगम्बरीं करालास्यां घोरदंष्ट्रां भयानकाम् ॥ कर्णमूले शवयुग्मां स्थूलतुङ्गपयोधराम्। महारौद्रीं महाघोरां श्मशानालयवासिनीम्। शवपाणिसमूहैश्च कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्। ओष्ठप्रान्तगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ॥ मुण्डालीसंस्रवद्रक्तैः सर्वाङ्गचारुचर्चिताम्। शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ॥ पूजाकाले पठेद् यस्तु सद्भावपुलको बुधः। स भवेत् कालिकापुत्र इति ख्यातिमुपागतः ॥ रजस्वलाभगं पश्यन् जप्त्वा काली महामनुम्। स्तवेनानेन संस्तुत्य साधकः किं न साधयेत् ॥ अष्टोत्तरशतं जप्त्वा योनिमामन्त्र्य मंत्रवित्। संगम्य पठनादस्य सर्वविद्येश्वरो भवेत्। मातेव दक्षिणा तस्य सर्वत्र हितकारिणी। तस्य देहे सदा काली वसेद्राम! न संशयः ॥ पूजाजपविहीनाय श्रीसुरानिंदकाय च। षण्मार्गस्य रोधकाय गुर्वभक्ताय सर्वदा। शृणु वत्स! प्रयत्नेन स्तवमेनं न दर्शयेत्। प्रमादाद्दर्शनाच्चापि तस्य सिद्धिर्भवेन्न हि ॥

इति कालिकापमरहस्ये कालीहृदये महाकालभैरवपरशुरामसंवादे श्रीदक्षिणकालिकास्तवः समाप्तः।

विलसित होता है। मेरे विघ्न विनाश करो। तुम्हारे दक्षिण हस्त के उर्ध्व में अभय और उस के अधोभाग में वर विराजमान है। तुम्हारे कंठदेश में मुण्डमाला लम्बायमान है। तुम्हीं महाकाली हो। तुम को नमस्कार है। जो साधकोत्तम सदा तुम्हारे स्वरूप की चिन्ता करते हैं, उन की समस्त शास्त्र में ही सर्वदा अव्याहतगति सञ्चारित होती है। इसीलिये। मैं तुम्हारे नाम की चिन्ता करता हूं मरी सम्यक प्रकार स सदा रक्षा करो। तुम्हीं दिगम्बरी तुम्हीं करालवदना और घोरदशना हो। तुम्हीं अत्यन्त भीषण स्वरूपा हो। तुम्हारे कर्ण में शव युग्म विराजमान हैं। तुम्हीं पीनोन्नतपयोधरा हो तुम्हीं महारौद्री और महाघोरा हो। तुम्हीं श्मशानालयनिवासिनी हो। तुम्हारे कटिदेश में शवपाणिसमूहनिर्मित काञ्चीदाम शोभापाता है। तुम्हारा बदनमण्डल सर्वदा हास्य विकसित है। तुम्हारे होंठ प्रान्त से रुधिर धारा निकलती है, तिस से तुम्हारा बदनमण्डल विकसित हो उठा है। तुम्हारा सर्वाङ्ग शव मुण्ड से बिगलित रुधिर धारा में चारु चर्च्चित है। शिवागण तुम को चारों ओर से घेरकर घोर रवसे शब्द करती हैं। जो व्यक्ति पूजा के समय सद्भाव के आवेश से पुलकित होकर इस स्तव का पाठ करता है, वह कालिका के पुत्र नाम से विख्यात होता है रजस्वलाका वराङ्ग देख, कालीका महामंत्र जप करता हुआ इस स्तव द्वारा स्तव करने से साधक का क्यासाधितनहीं होता? मंत्रवित् साधक अष्टोत्तर शत जप और योनि आमंत्रण करके,

तन्त्रान्तरोक्तकवचम् यथा—भैरव उवाच ।

कालिका या महाविद्या कथिता भुवि दुर्लभा । तथापि हृदये शल्यमस्ति देवि ! कृपां कुरु ॥ कवचन्तु महादेवि ! कथयस्वानुकम्पया । यदि नो कथ्यते मातर्विमुच्चामि तदा तनुम् ॥

देव्युवाच ।

शङ्कापि जायते वत्स ! तव स्नेहात् प्रकाश्यते । न वक्तव्यं न दातव्यमतिगुह्यतरं महत् ॥ कालिका जगतां माता शोकदुःखविनाशिनी । विशेषतः कलियुगे महापातकहारिणी ॥ काली मे पुरतः पातु पृष्ठतश्च कपालिनी । कुल्ला मे दक्षिणे पातु कुरुकुल्ला तथोत्तरे ॥ विरोधिनी शिरः पातु विप्रचित्ता च चक्षुषी । उग्रा मे नासिकां पातु कर्णौ चोग्रप्रभा तथा ॥ वदनं पातु मे दीप्ता नीला च चिबुकं तथा घना ग्रीवां सदा पातु बलाका बाहुयुग्मकम् ॥ मात्रा पातु करद्वन्द्वं वक्षो मुद्रा सदावतु मिता पातु स्तनद्वन्द्वं योनिमण्डलदेवताः ॥ ब्राह्मी मे जठरं पातु नाभिं नारायणी तथा ऊरू माहेश्वरी पातु चामुण्डा पातु लिङ्गकम् कौमारी च कटिं पातु जङ्घायुग्मं तथैव च । अपराजिता च पादौ मे वाराही पातु चांगुलीः ॥ सन्धिस्थानं नारसिंही पत्रस्था देवताऽवतु । रक्षाहीनञ्च यत् स्थानं वर्जितं कवचेन तु ॥ तत् सर्वं रक्ष मे देवि ! कालिके घोर दक्षिणे ! । ऊर्द्ध्वमधस्तथा दिक्षु पातु देवी स्वयं वपुः ॥ हिंस्रे-

---

इस स्तव का पाठ करने से समस्त विद्या का ईश्वर होता है । दक्षिण कालिका जननी की समान सर्वदा ही उस के हित का अनुष्ठान करती हैं । हे राम ! उस के देह में वह सदा वास करती हैं इस विषय में संदेह नहीं है । जो व्यक्ति पूजा नहीं करता जप नहीं करता वरन स्त्री और सुराकी निन्दा करता है एवं गुरु के प्रति भक्ति रहित और सन्मार्ग के बहिर्भूत है । हे वत्स ! सुनो, उस को कभी इस मंत्र का उपदेश न करै प्रमाद के वश उपदेश करने से कभी सिद्धि लाभ नहीं होती ।

तन्त्रान्तरोक्त कवच यथा-भैरव ने कहा, हे देवि ! यद्यपि तुम ने कालिका का पृथ्वीदुर्लभ महामंत्र कीर्त्तन किया, परन्तु तो भी मेरे हृदय में कांटा गड़ा हुवा है अतएव कृपा करनी चाहिये । हे महादेवि ! अनुग्रहपूर्वक कवचकीर्त्तन करो । हे मातः यदि आप कीर्त्तन न करैंगी, तो कलेवर परित्याग करूंगी ।

देवी ने कहा, हे वत्स ! यद्यपि मुझ को शंका उत्पन्न होती है, किन्तु तो भी तुम्हारे प्रति स्नेह प्रयुक्त होने से प्रकाश करती हूं । यह अति गुह्यतर महाकवच किसी के निकट नहीं कहना चाहिये और किसी को इस का प्रदान भी न करै ।

भ्यः सर्वदा पातु साधकञ्च जलाधिकात् । दक्षिणा कालिका देवी व्यापकं मे सदावतु ॥ इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेद्घोरदक्षिणाम् । न पूजाफलमाप्नोति विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ कवचेनावृतो नित्यं यत्र तत्रैव गच्छति । तत्र तत्राभयं तस्य न क्षोभं विद्यते क्वचित् ॥

इति दक्षिणकालिकाकवचं समाप्तम् ।

अथ सहस्रनामस्तोत्रम् यथा—श्रीशिव उवाच ।

कथितोऽयं महामन्त्रः सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः । यमासाद्य मया प्राप्तमैश्वर्यपदमुत्तमम् ॥ संयुक्तः परया भक्त्या यथोक्तविधिना भवान् । कुरुतामर्चनं देव्यास्त्रैलोक्यविजिगीषया ॥

श्रीराम उवाच ।

प्रसन्नो यदि मे देव ! परमेश ! पुरातन ! रहस्यं परमं देव्याः

कालिका जगत् की जननी और शोकदुःखविनाशिनी हैं। विशेष करके कलियुग में महापातक हारिणी हैं । काली मेरी सन्मुख रक्षा करें, कपालिनी मेरे पृष्ठ, कुल्ला, मेरे दक्षिणकुरुकुल्ला मेरे उत्तर, विरोधिनी मेरे मस्तक, विप्रचित्ता मेरे नेत्रयुगल, उग्रा मेरी नासिका, उग्रप्रभा मेरे कर्णयुगल, दीप्ता मेरे वदनमण्डल, नीला मेरी चिबुक, घना मेरी ग्रीवा, बलाका मेरी बाहुयुग्म, मात्रा करयुगल, मुद्रा वक्षस्थल और मितास्तनयुगल की सर्वदा रक्षा करें । ब्राह्मी मेरे जठर, नारायणी नाभि, माहेश्वरी दोनों ऊरू चामुण्डा लिंग, कौमारी कटि, और दोनों जघा, अपराजिता दोनों पैर, बाराही समस्त अँगुली और नारसिंही संधि स्थूल की रक्षा करें। मेरा जो स्थान रक्षाहीन और कवच वर्जित है, घोर दक्षिणा देवी कालिका उन समस्त स्थान की रक्षा करें । देवी स्वय ऊपर नीचे समस्त दिशाओं में हिंस्रगण और जल से मेरे कलेवर की रक्षा करें । देवी दक्षिण कालिका सर्वदा व्यापक भाव से मेरी रक्षा करें। जो व्यक्ति इस कवच को न जानकर, घोर दक्षिणा की भंजना करता है, उस को पूजा के फल की प्राप्ति नहीं होती और पद २ में विघ्न उपस्थित होता है । नित्य इस कवच में आवृत होकर जिस किसी स्थान में गमन क्यों न किया जाय, सर्वत्र ही अभय लाभ होता है, कहीं भी क्षोभ उपस्थित नहीं होता ।

॥ इति दक्षिणकालिका का कवच समाप्त ॥

अब देवी कालिका का सहस्रनाम स्तोत्र लिखा जाता है । श्री शिव ने कहा कालिका का यह सर्वमन्त्रोत्तम महामंत्र कथित हुआ है । मैंने इसी मंत्र को पाकर इसप्रकार सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य पद लाभ किया है । तुम परम भक्तिसहित यथोक्त विधान अनुसार त्रैलोक्यजय की कामना से देवी की अराधना करो ॥

श्री राम ने कहा, हे परमेश ! हे पुरातन ! हे देव !! यदि आप मेरे प्रति प्रसन्न हैं ।

कृपया कथय प्रभो ! ॥ विर्नाचनं विना होमं विना न्यासं बिना वलिम् विना गन्धं विना पुष्पं विना नित्योदितां क्रियाम् ॥ प्राणायामं विना ध्यानं विना भूतविशोधनम्। विना दानं विना जापं येन काली प्रसीदति ॥

शिव उवाच।

पृष्टं त्वयोत्तमं प्राज्ञ ! भृगुवंशसमुद्भव !। भक्तानामपि भक्तोऽसि त्वमेव साधयिष्यसि ॥ देवीं दानवकोटिघ्नीं लीलया रुधिरप्रियाम्। सदा स्तोत्रप्रियामुग्रां कामकौतुकलालसाम् ॥ सर्वदानन्दहृदयामासवोत्सवमानसाम्। माध्वीकमत्स्यमांसानुरागिणीं वैष्णवीं पराम्॥ दयस्थिताम् ॥ तामुग्रकालिकां राम ! प्रसादयितुमर्हसि। तस्याः स्तोत्रं परं पुण्यं स्वयं काल्या प्रकाशितम् ॥ तव तत् कथयिष्यामि श्रुत्वा वत्सावधारय। गोपनीयं प्रयत्नेन पठनीयं परात्परम् ॥ यस्यैककालपठनात् सर्वे विघ्नाः समाकुलाः। नश्यन्ति दहने दीप्ते पतङ्गा इव सर्वतः ॥ गद्यपद्यमयीवाणी तस्य गङ्गाप्रवाहवत्। तस्य दर्शन मात्रेण

तो भली भांति अनुग्रह प्रदर्शन पूर्वक देवी कालिका का रहस्य कोर्त्तन कीजिये। बिना पूजा,, बिना होम, बिना न्यास, बिना वलि, बिना, गंध. बिना पुष्प, बिना नित्योदित क्रिया, बिना प्राणायाम, बिना ध्यान, बिना भूतशुद्धि, बिना दान, और बिना जप के जिस से काली प्रसन्न होती हैं, सो कहो ॥

शिव ने कहा भृगुवंश समुद्भव ! तुम भली भांति ज्ञान सम्पन्न हो। इसी लिये अति श्रेष्ठ प्रश्न किया है॥ तुम्हीं भक्तगणों में उत्तम हो। इस कारण तुम्हीं सिद्धि लाभ करागे। वह देवी कालिका लीला पूर्वक करोड़ २ दानवों का विनाश करती हैं। वह जिस प्रकार रुधिरप्रिय हैं; इसी प्रकार स्तव करने से अत्यन्त उललसित और परितुष्ट होती हैं। वह प्रचंड प्रकृति और काम कौतुक लालसा के वश वर्त्तिनी हैं। वह सदा सानंद हृदया और आसवोत्सव मानसा हैं, मधु, मांस और मत्स्यप्रिय, परमवैष्णवी श्मशानवासिनी प्रेतगणों के नृत्यमहोत्सवा, योगप्रभावा, योगेशी और योगीन्द्रगणों के हृदयका आश्रय करती हैं। हे राम ! तुम उन्हीं उग्र कालिकाका प्रसाद संग्रह करो उनका स्तोत्र परम पवित्र है। उन्होंने स्वयं उसका प्रकाश किया है। हे वत्स ! वह स्तोत्र मैं तुम से कहता हूं। तुम इस को अवधारण करो। तुम इस परात्पर स्तोत्र का अत्यन्त यत्न सहित पाठ और गुप्त रखकर इसकी रक्षा करो। इस स्तोत्र के एक कालीन पठनमात्रसेही सम्पूर्ण विघ्न समाकुल होते हैं। और प्रज्वलित अग्निमें पतित पतंगकी समान तत्काल नष्ट होतेहैं। पाठकके मुखसे गंगाप्रवाहकी समान गद्यपद्य मयी वाणी अनर्गल निकलती है, उसके दर्शन मात्र से ही समस्त वादी निष्प्रभ (प्रभाहीन)

वादिनो निष्प्रभां गता ॥ तस्यहस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः । राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः ? ॥ निशीथे मुक्तकेशस्तु नग्नः शक्तिसमाहितः । मनसा चिंतयेत् कालीं महाकालेन लालिताम् ॥ पठेत् सहस्रनामाख्यं स्तोत्रं मोक्षस्य साधनम् । प्रसन्ना कालिका तस्य पुत्रत्वेनानुकम्पते ॥ यथा ब्रह्मामृतैर्ब्रह्मकुसुमैः पूजिता परा ॥ प्रसीदति तथानेन स्तुता काली प्रसीदति ॥

अस्य श्रीदक्षिणकालिकासहस्रनामस्तोत्रस्य महाकालभैरव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः श्मशानकाली देवता धर्मार्थकाममोक्षार्थे विनियोगः

ओं श्मशानकालिका काली भद्रकाली कपालिनी । गुह्यकाली महाकाली कुरुकुल्ला विरोधिनी ॥ कालिका कालरात्रिश्च महाकाल नितम्बनी । कालभैरवभार्या च कुलवर्त्मप्रकाशिनी ॥ कामदा कामिनी कन्या कमनीयस्वरूपिणी । कस्तूरीरसलिप्ताङ्गी कुञ्जरेश्वरगामिनी ॥ ककारवर्णसर्वाङ्गी कामिनी कामसुन्दरी । कामार्त्ता कामरूपा च कामधेनुः कलावती ॥ कान्ता कामस्वरूपा च कामाख्या कुलकामिनी । कुलीना कुलवत्यम्बा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ कौमारी कुलजा कृष्णा कृष्णदेहा कृशोदरी । कृशाङ्गी कुलिशाङ्गी च क्रीङ्कारी कमला कला ॥

होते हैं और निसंदेह समस्त सिद्धि उसके करगत होती हैं। अपर मनुष्य की बात क्या कहूं, राजागण भी उसके दास होते हैं। निशीथ (आधी रात) समय शक्ति के सहित मिलित होकर मुक्तकेश और नग्न वेश से मन मन में महाकाल ललिता देवी कालिका की चिन्ता करे। अनन्तर जो मोक्ष प्राप्तिका अद्वितीय उपाय है, उसी सहस्र नामाख्यस्तोत्र के पाठ में प्रवृत्त होना चाहिये। तो देवी कालिका प्रसन्न होकर उसपर पुत्रभाव से कृपा करती हैं। ब्रह्मामृत और कुसुम द्वारा पूजा करने से वह परादेवी जिस प्रकार प्रसन्न होती हैं। इस स्तोत्र के द्वारा स्तव करने से भी उसी प्रकार संतुष्ट होती हैं। श्री दक्षिण कालिकाके इस सहस्रनामस्तोत्र का ऋषि महाकाल भैरव, छन्दः तृष्टुप, देवता श्री श्मशान कालिका और धर्मार्थ कामार्थ में विनियोग जानना चाहिये प्रथम ओं उच्चारण करके, फिर सहस्र नाम कीर्त्तन करे । सहस्रनाम यथा—श्मशान कालिका, काली भद्रकाली, कपालिनी, गुह्यकाली महाकाली, कुरुकुल्ला, विरोधिनी कालिका, कालरात्रि, महाकाल, नितम्बिनी, काल भैरव भार्य्या, कुलवर्त्म प्रकाशिनी कामदा, कामिनी, कन्या, कमनीय, स्वरूपिणी, कस्तूरी रसलिप्ताङ्गी, कुञ्जरेश्वर गामिनी ककार वर्ण, सर्वाङ्गी, कामिनी, कामसुन्दरी कामार्त्ता, कामरूपा, कामधेनु, कलावती कान्ता, कामस्वरूपा, कामाख्या, कुलकामिनी, कुलीना कुलवती, अम्बा, दुर्गा, दुर्गतिनाशिनी, कौमारी, कुलजा कृष्णा कृष्णदेहा कृशोदरी, कृशाङ्गी, कुलिशाङ्गी, क्रीङ्कारी

करालास्या कराली च कुलकान्ता पराजिता । उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता विप्रचित्ता महावला ॥ नीला घना मेघनादा मात्रा मुद्रा सितामिता। ब्राह्मी नारायणी भद्रा सुभद्रा भक्तवत्सला ॥ माहेश्वरी च चामुण्डा वाराही नारसिंहिका वज्राङ्गी वज्रकङ्काला नृमुण्डस्रग्विणी शिवा ॥ मालिनी नरमुण्डाली गलद्रक्तविभूषणा । रक्तचन्दनसिक्ताङ्गी सिंदूरारुणमस्तका ॥ घोररूपा घोरदंष्ट्रा घोरा घोरतरा शुभा । महादंष्ट्रा महामाया सुदती युगदन्तुरा ॥ सुलोचना विरूपाक्षी विशालाक्षी त्रिलोचना । शारदेन्दुप्रसन्नास्या स्फुरत्स्मेराम्बुजेक्षणा ॥ अट्टहासा प्रफुल्लास्यास्मेरवक्त्रा सुभाषिणी । प्रफुल्लपद्मवदना स्मितास्या प्रियभाषिणी ॥ कोटराक्षी कुलश्रेष्ठा महती बहुभाषिणी । सुमतिः कुमतिश्चण्डा चण्मुण्डातिवेगिनी ॥ प्रचण्डा चण्डिका चण्डी चर्चिता चण्डवेगिनी । सुकेशी मुक्तकेशी च दीर्घकेशी महाकचा प्रेतदेहःकर्णपूरा प्रेतपाणिसुमेखला । प्रेतासना प्रियप्रेता प्रेतभूमिकृतालया ॥ श्मशानवासिनी पुण्या पुण्यदा कुलपण्डिता । पुण्यालया पुण्यदेहा पुण्यश्लोका च पावनी । पूता पवित्रा परमा परा पुण्यविभूषणा । पुण्यनाम्नी भीति हरा वरदा खड्गपाशिनी ॥ नृमुण्डहस्ता शान्ता च

कमला, कला, करालास्या कराली, कुलकान्ता अपराजिता उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता विप्रचित्ता, महावला, नीला घना, मेघनादा, मात्रा, मुद्रा, मिता, असिता, ब्राह्मी, नारायणी, भद्रा, सुभद्रा, भक्तवत्सला, माहेश्वरी, चामुण्डा, वाराही, नारसिंही, वलाङ्गी, वज्रकङ्काला, नृमुण्डमालिनी, शिवा, मालिनी, नरमुण्डाली, गलद्रक्तविभूषणा रक्तचंदन दिग्धांगी, सिन्दूरारुणमस्तका, घोररूपा, घोरदंष्ट्रा, घोरा, घोरतरा, शुभा, महादंष्ट्रा, महामाया, सुदती, युगदन्तरा, सुलोचना, विरूपाक्षी, विशालाक्षी, त्रिलोचना, शरदेन्दु, प्रसन्नास्या स्फुरत् स्मेराम्बुजेक्षणा, अट्टहास्या, प्रफुल्लास्या, स्मेरवक्त्रा, सुभाषिणी, प्रफुल्लपद्मवदना, स्मितास्या, प्रियभाषिणी, कोटराक्षी, कुलश्रेष्ठा, महती, बहुभाषिणी, सुमति, कुमति, चण्डा, चण्ड मुण्डा, अतिवेगिनी, प्रचण्डा, चण्डिका, चण्डी, चर्चिता चण्डवेगिनी, सुकेशी, मुक्तकेशी, दीर्घकेशी, महाकचा, प्रेतदेह, कर्णपूरा प्रेतपाणि, सुमेखला, प्रेतासना प्रियप्रेता, प्रेतभूमि कृतालया, श्मशान वासिनी, पुण्या पुण्यदा, कुल पण्डिता, पुण्यालया, पुण्यदेहा, पुण्यश्लोका, पावनी, पूता, पवित्रा, परमा, परा, पुण्यविभूषणा, पुण्यनाम्नी, भीतिहरा, वरदा, खड्गपाशिनी, नृमुण्डहस्ता

छिन्नमस्ता सुनासिका । दक्षिणा श्यामला श्यामा शान्ता पीनोन्नतस्तनी ॥ दिगम्बरी घोररावा सृक्कान्तरक्तवाहिनी । घोररावा शिवासङ्गा निःसङ्गामदनातुरा ॥ मत्ताप्रमत्तामदनासुधासिंधु निवासिनी । अतिमत्ता महामत्ता सर्वाकर्षणकारिणी ॥ गीत प्रिया वाद्यरता प्रेतनृत्यपरायणा । चतुर्भुजा दशभुजा अष्टादशभुजा तथा । कात्यायनी जगन्माता जगतीपरमेश्वरी । जगद्बन्धुर्जगद्धात्री जगदानन्दकारिणी ॥ जगज्जीववती हैमवती माया महालया । नागयज्ञोपवीताङ्गी नागिनी नागशायिनी ॥ नागकन्या देवकन्या गान्धारी किन्नरी सुरी । मोहरात्री महारात्री दारुणा भा सुरासुरी ॥ विद्याधरी वसुमती यक्षिणी योगिनी जरा राक्षसी डाकिनी वेदमयी वेदविभूषणा॥ श्रुतिस्मृतिमहाविद्या गुह्यविद्यापुरातनी चिंताचिंता स्वधा स्वाहा निद्रातंद्राच पार्वती ॥अपर्णा निश्चलालोला सर्वविद्यातपस्विनी । गङ्गा काशी शची सीता सती सत्यपरायणा। नीतिः सुनीतिः सुरुचिस्तुष्टिः पुष्टिर्धृतिः क्षमा । वाणी बुद्धिर्महालक्ष्मीर्लक्ष्मीर्नीलसरस्वती॥ स्रोतस्वती स्रोतवती मातङ्गी विजया जया । नंदी सिंधुः सर्वमयी तारा शून्यनिवासिनी ॥ शुद्धा तरङ्गिणी मेधा लाकिनी बहुरूपिणी । सदानन्दमयी सत्या

शान्ता छिन्नमस्ता, सुनासिका, दक्षिणा, श्यामला, श्यामा, शांता पीनोन्नतस्तनी, दिगम्बरी, घोररावा, सृक्कांतरक्तवाहिनी, घोररावा, शिवासंगा, निसंगा, मदनातुरा, मत्ता प्रमत्ता, मदना, सुधासिन्धु निवासिनी अतिमत्ता, महामत्ता, सर्वाकर्षण, कारिणी गीतप्रिया, वाद्यरता, प्रेतनृत्यपरायणा, चतुर्भुजा, दशभुजा अष्टादश भुजा, कात्यायनि जगन्माता, जगती, परमेश्वरी, जगद्बन्धु, जगद्धात्री जगदानन्द, कारिणी, जगज्जीववती हेमवती, माया, महालया, नागयज्ञो,पवीताङ्गी, नागिनी, नागशायिनी, नागकन्या, देवकन्या, गान्धारी, किन्नरी, सुरी, मोहरात्रि, महारात्रि, दारुणाभा, सुरासुरी, विद्याधरी, बसुमती, यक्षिणी, योगिनी, जरा राक्षसी, डाकिनी वेदमयि वेदभूषणा, श्रुति, स्मृति, महाविद्या, गुह्यविद्या, पुरातनी, चिन्ता, अचिन्ता; स्वधा, स्वाहा निद्रा, पार्वती, अपर्णावानिश्चला, लोला, सर्वविद्या, तपस्विनी, गङ्गाकाशी, शची, सीता, सती, सत्यपरायणा नीति, सुनीति, सुरुचि, तुष्टि, पुष्टि, धृति, क्षमा, वाणी, बुद्धि, महालक्ष्मी, लक्ष्मी नील-सरस्वती, स्रोतस्वती, स्रोतवती, मातङ्गी, विजया, जया, नदी, सिन्धु, सर्बमयी, तारा, शून्य निवासिनी, शुद्धा, तरंगिणी, मेधा, लाकिनी, बहुरूपिणी, सदानन्दमयी, सत्या, सर्वानन्द, स्वरूपिणी. सुनंदा. नन्दिनी स्तुत्या, स्तवनीया. स्वभाविनी. रङ्किणी. टंकिणी

सर्वानन्द स्वरूपिणी ॥ सुनन्दा नन्दिनी स्तुत्या स्तवनीया स्वभाविनी रङ्किणी टङ्किनी चित्रा विचित्रा चित्ररूपिणी । पद्मा पद्मालया पद्ममुखी पद्मविभूषणा ॥ शाकिनी हाकिनी क्षान्ता राकिणी रुधिरप्रिया भ्रान्तिर्भवानी रुद्राणी मृडानी शत्रुमर्दिनी ॥ उपेन्द्राणी महेशानी ज्योत्स्ना चेन्द्रस्वरूपिणी । सूर्यात्मिका रुद्रपत्नी रौद्री स्त्री प्रकृतिः पुमान् ॥ शक्तिः सूक्तिर्मतिर्मती भुक्तिर्मुक्तिः पतिव्रता । सर्वेश्वरी सर्वमाता शर्वाणी हरवल्लभा ॥ सर्वज्ञा सिद्धिदा सिद्धा भाव्या भव्या भयापहा । कर्त्री हर्त्री पालयत्री शर्वरी तामसी दया ॥ तमिस्रा यामिनीस्था च स्थिरा धीरा तपस्विनी । चार्वङ्गी चञ्चलालोल जिह्वा चारुचारिणी ॥ त्रपा त्रपावती लज्जा निर्लज्जा ह्रीं रजोवती । सत्त्ववती धर्मनिष्ठा श्रेष्ठा निष्ठुरवादिनी ॥ गरिष्ठा दुष्टसंहर्त्री विशिष्टा श्रेयसीघृणा । भीमा भयानका भीमा नादिनी भीः प्रभावती । वागीश्वरी श्रीर्यमुना यज्ञकर्त्री यजुःप्रिया । ऋक्सामाथर्वनिलया रागिणी शोभनस्वरा ॥ कलकण्ठी कम्बुकण्ठी वेणुवीणापरायणा । वंशिनी वैष्णवी स्वच्छा धात्री त्रिजगदीश्वरी ॥ ॥ मधुमती कुण्डलनी ऋद्धिः सिद्धिः शुचिस्मिता । रम्भोर्वशी रतीरामा रोहिणी रेवती रमा ॥ शङ्खिनी

चित्रा. विचित्रा. चित्ररूपिणी. पद्मा. पद्मालया. पद्ममुखी. पद्मविभूषणा हाकिनी. शान्ता राकिनी. रुधिर प्रिया. भ्रान्ति. भवानी. रुद्राणी. मृडानी. शत्रुमर्दिनी. उपेंद्राणी. महेशानी ज्योत्स्ना. इन्द्रस्वरूपिणी, सूर्यात्मिका. रुद्रपत्नी. रौद्री. स्त्री प्रकृति. पुमान. शक्ति. सूक्ति मतिमती. भुक्ति. मुक्ति. पतिव्रता. सर्वेश्वरी. सर्व माता. शर्वाणी. हरवल्लभा. सर्वज्ञा. सिद्धिदा. सिद्धा. भाव्या. भव्या. भयापहा. कर्त्री. हर्त्री. पालयित्री. शर्वरी. तामसी. दया. तमिस्रा. यामिनीस्था स्थिरा. धीरा. तपस्विनी. चर्वंगी. चंचला. लोलजिहवा. चारुचरित्रिणी. त्रपा. त्रपावती. लज्जा. निर्लज्जा. ह्रीं. रजोवती. सत्ववती. धर्मनिष्ठा. श्रेष्ठा. निष्ठुरवादिनी. गरिष्ठा. दुष्टसंहित्री. विशिष्टा. श्रेयसी घृणा. भीमा. भयानका. भीमनादिनी, भी. प्रभावती. वागीश्वरी. श्री. यमुना. यज्ञकर्त्री. यजुःप्रिया. ऋक्सामाथर्वनिलया. रागिणी, शोभनस्वरा. कलकण्ठी. कम्बुकण्ठी. वेणुवीणापरायणा वंशिनी. वैष्णवी. स्वच्छा. धात्री. त्रिजगदीश्वरी. मधुमति. कुण्डलिनी. ऋद्धि. सिद्धि. शुचिस्मिता. रम्भा. उर्वशी. रति. रामा. रोहिणी. रेवती. रमा. शंखिनी. चक्रिणी. कृष्णा. नन्दिनी. पद्मिनी. शूलिनी. परिघास्त्रा. पाशिनी. शार्ङ्गपाणिनी. पिनाकधारिणी. धूम्रा. शरभोत्तनमालिनी. वज्रिणी. समरप्रीता.

चक्रिणी कृष्णा गादिनी पद्मिनी तथा । शूलिनी परिघास्त्रा च पाशिनी शार्ङ्गपाणिनी ॥ पिनाकधारिणी धूम्रा शरभी वनमालिनी । वज्रिणी समरप्रीता वेगिनी रणपण्डिता ॥ जटिनी विम्बनी नीला लावण्याम्बुधिचन्द्रिका । बलिप्रिया सदापूज्या पूर्णा दैत्येन्द्रमाथिनी ॥ महिषासुरसंहन्त्री वासिनी रक्तदन्तिका । रक्तपा रुधिराक्ताङ्गी रक्तखर्परहस्तिनी ॥ रक्तप्रिया मांसरुचिरा सवासक्तमानसा । गलच्छोणितमुण्डालिकण्ठमालाविभूषणा ॥ शवासना चितान्तस्था माहेशी वृषवाहिनी व्याघ्रत्वगम्बरा चीनचेलिनी सिंहवाहिनी ॥ वामदेवी महादेवी गौरी सर्वज्ञभाविनी बालिका तरुणी वृद्धा वृद्धमाता जरातुरा शुभ्र बिलासिनी ब्रह्मवादिनी ब्राह्मणी मही । स्वप्नावती चित्रलेखा लोपामुद्रा सुरेश्वरी ॥ अमोघाऽरुन्धती तीक्ष्णा भोगवत्यनुवादिनी । मन्दाकिनी मन्दहासा ज्वालमुख्यसुरान्तका ॥ मानदा मानिनी मान्य माननीया मदोद्धता । मदिरा मदिरोन्मादा मेध्या नव्या प्रसादिनी ॥ सुमध्यानन्तगुणिनी सर्वलोकोत्तमोत्तमा । जयदा जित्वरा जेत्री जयश्रीर्जयशालिनी ॥ सुखदा शुभदा सत्या सभासंक्षोभकारिणी शिवदूती भूति मती विभूतिर्भीषणानना ॥ कौमारी कुलजा कुन्ती कुलस्त्री कुलपालिका कीर्त्तिर्यशस्विनी भूपा भूष्या

वेगिनी. रणपण्डिता. जटिनी. विम्बनी, नीला. लावण्याम्बुधि. चन्द्रिका, बलिप्रिया, सदापूज्या, पूर्णा, दैत्येंद्रमन्थिनी, महिषासुर संहन्त्री, वासिनी, रक्तदंतिका, रक्तहा रुधिरांगी, रक्तखर्परहस्तिनी, रक्तप्रिया, मांसरुचि,आसवासक्तमानसा, गलच्छोणितमुण्डालो कंठमालाविभूषणा, शवासना, चितान्तस्था माहेशी वृषवाहिनी,व्याघ्रत्वगम्बरा, चीन चेलिनी, सिंहबाहिनी, वामदेवी, महादेवी गौरी, सर्वज्ञभाविनी, बालिका, तरुणी, वृद्धा, वृद्धमाता, जरातुरा, सुभ्रू. विलासिनी, ब्रह्मवादिनी, ब्रह्माणी, मही, स्वप्नावती, चित्रलेखा लोपामुद्रा, सुरेश्वरी, अमोघा अरुन्धती, तीक्ष्णा, भोगवती, अनुवादिनी, मन्दाकिनी, मन्दहास्या, ज्वालामुखी, असुरान्तका, मानदा, मानिनी, मान्या, माननीया, मदोद्धता, मदिरोन्मादा, मेध्या, नव्या, प्रसादिनी, सुमध्या, अनन्तगुणिनी, सर्वलोकोत्तमा, जयदा. जित्वरा, जेत्री, जयश्री, जयशालिनी, सुखदा, शुभदा, सत्या, सभासंक्षोभकारिणी, शिवदूती, भूतिमती, विभूति, भीषणानना, कौमारी, कुलजा, कुन्ती, कुलस्त्री, कुलपालिका, कीर्ति यशस्विनी, भूपा, भूष्या, भूतपातप्रिया, सगुणा, निर्गुणा, धृष्टा, निष्ठा, प्रतिष्ठिता, धनिष्ठा, धनदा, धन्या, वसुधा, स्वप्रकाशिनी, ऊर्व्वी गुर्व्वी, गुरुश्रेष्ठा, सगुणा त्रिगुणात्मिका,महाकुलीना, निष्कामा, सकामा, कामा, कामो-

भूतपतिप्रिया ॥ सगुणा निर्गुणा धृष्टा निष्ठा काष्टा प्रतिष्ठिता । धनिष्टा धनदा धन्या वसुधा स्वप्रकाशिनी ॥ उर्वीगुर्वी गुरुश्रेष्ठा सगुणा त्रिगुणात्मिका महाकुलीना निष्कामा सकामाकामजीवना ॥ कामदेवकला रामाभिरामा शिवनर्त्तकी । चिन्तामणिकल्पलता जाग्रती दीनवत्सला ॥ कार्त्तिकी कीर्त्तिका कृत्या अयोध्या विषमा समा । सुमत्रा मंत्रिणी घूर्णा ल्हादिनी क्लेशनाशनी ॥ त्रैलोक्यजननी हृष्टा निर्मांसा मनोरूपिणी । तड़ागनिम्नजठरा शुष्कमांसास्थिमालिनी ॥ अवन्ती मथुरा माया त्रैलोक्यपावनीश्वरी । व्यक्ताव्यक्ता नेकमूर्त्तिः शर्वरी भीमनादिनी ॥ क्षेमङ्करी शङ्करी च सर्व सन्मोह कारिणी । ऊर्द्धतेजस्विनी क्लिन्ना महातेजस्विनीतथा ॥ अद्वैता भोगिनी पूज्या युवती सर्वमङ्गला । सर्वप्रियङ्करी भोग्या धरणी पिशिताशना । भयङ्करी पापहरा निष्कलङ्का वशङ्करी आशा तृष्णा चन्द्रकला निद्रान्या वायुवेगिनी ॥ सहस्रसूर्य्यसङ्काशा चन्द्रकोटिसमप्रभा । वह्निमण्डलसंस्था च सर्वतत्वप्रतिष्ठिता । सर्वाचारवती सर्व देवकन्याधिदेवता ।

जीविनी, कामकला, रामा, अभिरामा, शिवनर्त्तकी, चिंतामणिकल्पकला, जाग्रती, दीनवत्सला, कार्त्तिकी, कीर्त्तिका, कृत्या, अयोध्या, विषमा, समा, सुमन्त्रा मंत्रिणी, घूर्णा, ल्हादिनी, क्लेशनाशिनी, त्रैलोक्य जननी हृष्टा, निर्मांसा, मनोरूपिणीं. तडाग निम्नजठरा. शुष्कमांसास्थिमालिनी. अवन्ती. मथुरा. माया. त्रैलोक्यपावनी. ईश्वरी. व्यक्ताव्यक्ता. अनेकमूर्त्ति शार्वरी. भीमनादिनी. क्षेमङ्करी. सर्वसम्मोहकारिणी. ऊर्ध्वतेजस्विनी क्लिन्नामहातेजस्विनी. अद्वैता. भोगिनी, पूज्या. युवती, सर्वमंगला. सर्वप्रियङ्करी भोग्या. धरणी, पिशितासना. भयङ्करी. पापहरा. निष्कलंका. वशंकरी. आशा. तृष्णा. चंद्रकला. निद्रा. वायुवेगिनी. सहस्र सूर्य. संकाशा. चंद्रकोटिसमप्रभा. वन्हिमंडलसंस्था. सर्वतत्वप्रतिष्ठिता. सर्वाचारवती. सर्वदेवकन्या. अधिदेवता. दक्षकन्या. दक्षयज्ञनाशिनी. दुर्गतारका. इज्या. पूज्या. विभीभूति. सत्कीर्त्ति. ब्रह्मरूपिणी. रंभोरु, चतुरा. राका जयंती करुणा. कुहु. मनस्विनी. देवमाता. यशस्या. ब्रह्मचारिणी. ऋद्धिदा. वृद्धिदा वृद्धि. सर्वदा. सर्वदायिनी. आधाररूपिणी ध्येया. मूलाधारनिवासिनी. आज्ञा. प्रज्ञा. पूर्णमना. चंद्रमुखी. अनुकूलिनी. वावदूका. निम्ननाभि सत्या. संध्या. दृढ़व्रता. आन्वीक्षिकी दण्डनीति. त्रयी. त्रिदशसुंदरी. ज्वलिनी. शैलतनया. विंध्यवासिनी. अमेया. खेचरी,

दक्षकन्या दक्षयज्ञ नाशिनी दुर्गतारिका ॥ इज्या पूज्या विभीर्भूतिः सत्कीर्त्तिर्ब्रह्मरूपिणी । रम्भोरुश्चतुरा राका जयन्ती करुणा कुहुः ॥ मनस्विनी देवमाता यशस्या ब्रह्मचारिणी ऋद्धिदा वृद्धिदा वृद्धिः सर्वाद्या सर्वदायिनी ॥ आधाररूपिणी ध्येया मूलाधारनिवासिनी । आज्ञा प्रज्ञापूर्ण मना श्चन्द्रमुख्यनुकूलिनी ॥ वावदूका निम्ननाभिः सत्या सन्ध्या दृढ़व्रता । आन्वीक्षिकी दण्डनीतिस्त्रयी त्रिदिवसुन्दरी ॥ ज्वलिनी ज्वालिनी शैल तनया विन्ध्यवासिनी अमेया खेचरी धैर्य्या तुरीया विमलातुरा ॥ प्रगल्भा वारुणीच्छाया शशिनी विस्फुलिङ्गिनी भुक्तिः सिद्धिः सदाप्राप्तिः प्राकाम्या महिमाणिमा ॥ इच्छासिद्धिर्विसिद्धा च वशित्वोर्ध्वनिवासिनी । लघिमा चैव गायत्री सावित्री भुवनेश्वरी मनोहरा चिता दिव्या देव्युदारा मनोरमा । पिङ्गला कपिला जिह्वारसज्ञा रसिका रसा ॥ सुषुम्नेड़ा भोगवती गान्धारी नरकान्तका । पाञ्चाली रुक्मिणी राधा राध्या भीमाधिराधिका ॥ अमृता तुलसी

धैर्या. तुरीया. विस्फुलिंगिनी. भुक्ति. सिद्धि. सदाप्राप्ति. प्राकाम्या. महिमा. अणिमा इच्छा. सिद्धि. विसिद्धा. वशित्वोर्द्धनिवासिनी. लघिमा. गायत्री. सावित्री. भुवनेश्वरी. मनोहरा. चिता. दिव्या. देवी. उदारा. मनोरमा. पिंगला. कपिला. जिह्वा. रसज्ञा. रसिका. रसा. सुषुम्ना. ईड़ा. भोगवती. गांधारी. नरकांतका. पाञ्चाली रुक्मणी. राधा. आराध्या. भीमा. अधिराधिका. अमृता. तुलसी. वृन्दा. कैटभी. कपटेश्वरी. उग्रचण्डेश्वरी. वीरा. जननी वीरसुंदरी, उग्रतारा. यशोदा. आख्या, दैवकी देवपालिता. निरञ्जना. चित्रदेवी. क्रोधिनी. कुलदीपिका. कुलवागीश्वरी. वाणी. मातृका. द्राविणी. द्रवा योगेश्वरी. महामारी. भ्रामरी विंदुरूपिणी. दूती. प्राणेश्वरी गुप्ता. बहुला. चामरी. प्रभा. कुब्जिका. ज्ञानिनी. ज्येष्ठा. भुशुण्डी. प्रकटा. अतिथि. द्रविणी. गोपनी. माया. कामबीजेश्वरी. क्रिया, शाम्भवी. केकरा; मेना. मुषलास्त्रा. तिलोत्तमा. अमेयविक्रमा. क्रूरा. सम्पत्शाला. त्रिलोचना. सुस्थी. हव्यवहा नीति. उष्मा. धूम्रार्चि. अङ्गदा तपिनी तापिनी. विश्वा भोगदा. धारिणी. धरा; त्रिखंडा बोधिनी. बश्या. सकला. शब्दरूपिणी. वीजरूपा. महामुद्रा. योगिनी. योनिरूपिणी. अनङ्गकुसुमा. अनंगमेखला. वज्रेश्वरी जयिनी. सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी, षडङ्गयुवती. योगयुक्ता. ज्वालांशुमालिनी. दुराशया. दुराधारा. दुर्जया. दुर्गरूपिणी. दुरन्ता. दुष्कृतिहरा. दुर्ध्येया. दुरतिक्रमा. हंसेश्वरी.

वृन्दा कैटभी कपटेश्वरी । उग्रचण्डेश्वरी धीरा जननी वीरसुन्दरी ॥ उग्रतारा यशोदाख्या दैवकी देवमानिता निरञ्जना चित्रदेवी क्रोधिनी कुलदीपिका॥कुलवागीश्वरी वाणी मातृका द्राविणी द्रवा । योगेश्वरी महामारी भ्रामरी बिन्दुरूपिणी॥दूती प्राणेश्वरी गुप्ता बहुला चामरी-प्रभा । कुब्जिका ज्ञानिनीज्येष्ठा भूशुण्डी प्रकटा तिथिः द्रविणी गोपनी माया कामबीजेश्वरी क्रिया।साम्भवी केकरा मेना मूसलास्त्रा-तिलोत्तमा॥अमेयविक्रमा क्रूरा सम्पत्शाला त्रिलोचना सुस्थी हव्य-वहा प्रीतिरुष्मा धूम्रार्चिरङ्गदा तपिनी तापिनी विश्वा भोगदा धारिणी धरा । त्रिखंडा बोधिनी वश्या सकला शब्दरूपिणी ॥ बीजरूपा महा मुद्रा योगिनी योनिरूपिणी । अनङ्गकुसुमानङ्गमेखलानंगरूपिणी ॥ वज्रेश्वरी च जयिनी सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी षडङ्गयुवती योग युक्ता ज्वालां-शुमालिनी ॥ दुराशया दुराधारा दुर्जया दुर्गरूपिणी दुरन्ता दुष्कृति-हरा दुर्ध्येया दुरतिक्रमा हंसेश्वरी त्रिकोणस्था शाकम्भर्यनुकम्पिनी ।

त्रिकोणस्था. शाकम्भरी. अनुकम्पिनी. त्रिकोणनिलया. नित्या, परमामृतरञ्जिता. महाविद्येश्वरी. श्वेता. भेरुण्डा कुलसुंदरी. त्वरिता. भक्तसंसक्त. भक्तवश्या. सनातनी भक्तानंदमयी. भक्तभाविका. भक्तशङ्करी. सर्व्वसौंदर्यनिलया. सर्वसौभाग्यशालिनी. सर्व संभोगभवना. सर्व्वसौख्यनिरूपिणी. कुमारीपूजनरता. कुमारीव्रतचारिणी. कुमारीभक्ति सुखिनी. कुमारीरूपधारिणी. कुमारीपूजकप्रीता. कुमारीप्रीतिदा. प्रिया. कुमारीसेवका सङ्गा. कुमारीसेवकालया आनन्दभैरवी बालाभैरवी, बटुकभैरवी. कालभैरवी पुरभैरवी महाभैरवपत्नी. परमानंदभैरवी. सुधानंदभैरवी. उन्मादानंदभैरवी. मुक्तानंदभैरवी. तरुणभैरवी. ज्ञानानंदभैरवी. अमृतानंदभैरवी. महाभयङ्करी. तीव्रा. तीव्रवेगा. तपस्विनी. त्रिपुरा. परमेशानि. सुन्दरी; पुरंदरी. त्रिपुरेशी; पञ्चदशी. पञ्चमी पुरवासिनी. महासप्त-दशी.षोड़शी. त्रिपुरेश्वरी, महांकुशस्वरूपा. महाचक्रेश्वरी. नवचक्रेश्वरी. चक्रेश्वरी. त्रिपुरमालिनी. राजराजेश्वरी. धीरा. महात्रिपुरसुंदरी. सिंदूरपूरचिरा. श्रीमत्त्रिपुरसुं-दरी. सर्वाङ्गसुंदरी. रक्ता. रक्तवस्त्रोत्तरियिणी. जवायाकसिंदूररक्तचंदनधारिणी. जवा-यावक;सिंदूररक्तचंदनरूपधृक्. चामरो बालकुटिलनिर्मलाव्योमकेशिनी वज्रमौक्तिकरत्ना ढ्यकिरीटमुकुटोज्वला. रक्तकुण्डलसंसक्तस्फुरद्गण्डमनोहरा. कुञ्जरेश्वर कुम्भो त्थमुक्तारंजितनासिका. मुक्ताविद्रुममाणिक्यहाराढ्यस्तनमण्डला. सूर्य कांते-दुकांताढ्यस्पर्शश्मकंठभूषणा. बीजपरस्फुरद्बीजदंतपंक्ति. अनुत्तमा . का-

त्रिकोणनिलया नित्या परमामृतरञ्जिता ॥ महाविश्वेश्वरी श्वेता भेरुण्डा कुलसुन्दरी । त्वरिता भक्तिसंसक्ता भक्तवश्या सनातनी ॥ भक्तानन्दमयी भक्तभाविका भक्तशङ्करी । सर्वसौन्दर्य-निलया सर्वसौभाग्यशालिनी ॥ सर्वसंभोगभवना सर्वसौख्य-निरूपिणी । कुमारीपूजनरता कुमारीव्रतचारिणी ॥ कुमारीभक्ति-सुखिनी कुमारीरूपधारिणी । कुमारीपूजकप्रीता कुमारीप्रीतिदा प्रिया ॥ कुमारीसेवकासङ्गा कुमारी सेवकालया । आनन्दभैरवी बाला भैरवी वटुभैरवी । श्मशानभैरवी कालभैरवी पुरभैरवी । महाभैरव-पत्नी च परमानन्दभैरवी ॥ सुधानन्दभैरवी च उन्मादानन्दभैरवी । मुक्तानन्दभैरवी च तथा तरुणभैरवी ॥ ज्ञानानन्दभैरवी च अमृता-नन्दभैरवी । महाभयङ्करी तीव्रा तीव्रवेगा तपस्विनी ॥ त्रिपुरा परमे-शानी सुन्दरी पुरसुन्दरी । त्रिपुरेशी पञ्चदशी पञ्चमी पुरवासिनी ॥ महासप्तदशी चैव षोडशी त्रिपुरेश्वरी । महांकुशस्वरूपा च महाचक्रे-श्वरी तथा ॥ नवचक्रेश्वरी चक्रेश्वरी त्रिपुरमालिनी । राजराजेश्वरी धीरा महात्रिपुरसुन्दरी ॥ सिन्दूरपूररुचिरा श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी । सर्वाङ्गसुन्दरी रक्ता रक्तवस्त्रोत्तरीयिणी ॥ जवा यावकसिंदूररक्तच-न्दन धारिणी । जवा यावक सिंदूररक्तचन्दन रूपधृ ॥ चामरी बाल-कुटिल निर्मलश्यामकेशिनी । वज्रमौक्तिकरत्नाढ्य किरीटमुकुटोज्वला ॥ रत्नकुण्डल संसक्तस्फुरद्गण्ड मनोरमा । कुञ्जरेश्वरकुम्भोत्थमुक्ता-रञ्जित नासिका ॥ मुक्ताविद्रुम माणिक्यहाराढ्यस्तन मण्डला । सूर्यकान्तेन्दुकान्ताढ्यस्पर्शाश्म कण्ठभूषणा ॥ बीजपूरस्फुरद्बीज दन्त-पंक्तिरनुत्तमा । कामकोदण्डकाभुग्नभ्रूकटाक्ष प्रवर्षिणी ॥ मातङ्ग कुम्भवक्षोजा लसत्कोकनदेक्षणा । मनोज्ञशष्कुलीकर्णा हंसीगति

मकोदण्डकाभुग्नभ्रूकटाक्षप्रवर्षिणी. मातङ्गकुंभवक्षोजा. लसत्कोकनदेक्षणा मनोज्ञश-ष्कुलीकर्णा. हंसीगतिविडम्बिनी. पद्मरागाङ्गदज्योतिर्दोश्चतुष्कप्रकाशिनी. नानामणिपरि-स्फूर्जत्शुद्धकाञ्चनकङ्कणा. नागेंद्रदंतनिर्माणवलयांकितिपाणिनी. अंगुरीयकचित्रांगी. विचित्रक्षुद्रघण्टिका. पट्टाम्बरपरीधाना. कलमञ्जीरशिञ्जनी. कर्पूरागरुकस्तूरीकुंकुमद्र-वलेपिता. विचित्ररत्नपृथ्वीकल्पशाखितलस्थिता. रत्नद्वीपस्फुरद्रक्तसिंहासनविलासिनी.

विडम्बिनी ॥ पद्मरागाङ्गद ज्योतिर्दोश्चतुष्क प्रकाशिनी । नानामणि परिस्फूर्जच्छुद्धकाञ्चन कङ्कना ॥ नागेन्द्रदन्तिनिर्माणवलयाङ्कितपाणिनी । अंगुरीयकचित्राङ्गी विचित्रक्षुद्रघण्टिका ॥ पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीरशिञ्जिनी । कर्पूरागुरुकस्तूरीकुङ्कमद्रवलेपिता ॥ विचित्ररत्नपृथिवीकल्पशाखितलस्थिता । रत्नद्वीपस्फुरद्रक्तसिंहासनविलासिनी ॥ षट्चक्रभेदनकरी परमानन्दरूपिणी । सहस्रदलपद्मान्तश्चन्द्रमण्डलवर्त्तिनी ॥ ब्रह्मरूपशिवक्रोड़नानासुखविलासिनी । हरविष्णुविरिञ्चीन्द्रग्रहनायकसेविता ॥ शिवा शैवा च रुद्राणी तथैव शिवावादिनी । मातङ्गिनी श्रीमती च तथैवानन्दमेखला ॥ डाकिनी योगिनी चैव तथोपयोगिनी मता । माहेश्वरी वैष्णवी च भ्रामरी शिवरूपिणी ॥ अलम्बुषा वेगवती क्रोधरूपा सुमेखला । गान्धारी हस्तिजिह्वा च ईडा चैव शुभङ्करी ॥ पिङ्गला ब्रह्मदूती च सुषुम्ना चैव गन्धिनी । आत्मयोनिर्ब्रह्मयोनिर्जगद्योनिरयोनिजा ॥ भगरूपा भगस्थात्री भगिनी भगरूपिणी । भगात्मिका भगाधाररूपिणी भगमालिनी ॥ लिङ्गाख्या चैव लिङ्गेशी त्रिपुराभैरवी तथा । लिङ्गगीतिः सुगीतिश्च लिङ्गस्था लिङ्गरूपधृक् ॥ लिङ्गमाना लिङ्गभवा लिङ्गलिङ्गा च पार्वती । भगवती कौशिकी च प्रेमा चैव प्रियंवदा । गृध्ररूपा शिवारूपा चक्रिणी चक्ररूपधृक् । लिङ्गाभिधायिनी लिङ्गप्रिया लिङ्गनिवासिनी ॥

षट्चक्रभेदनकरी. परमानन्दरूपिणी. सहस्रदलपद्मांतश्चंद्रमंडलवर्त्तिन. ब्रह्मरूपशिवक्रोड़ नानासुखविलासिनी. हरविष्णु. विरञ्चीन्द्रग्रहनायकसेविता. शिवा. शैवा. रुद्राणी. शिववादिनी. मातङ्गिनी. श्रीमती. आनन्दमेखला. डाकिनी. योगिनी. उपयोगिनी. माहेश्वरी. वैष्णवी. भ्रामरी. शिवरूपिणी. अलंबुषां. वेगवती. क्रोधरूपा. सुमेखला. गांधारी; हस्तिजिह्वा. ईड़ा. शुभङ्करी. पिंगला. ब्रह्मदूती सुषुम्ना, गन्धिनी. आत्मयोनि. ब्रह्मयोनि· जगद्योनि. अयोनिजा. भगरूपा. भगस्थात्री. भगिनी. भगरूपिणी. भगात्मिका, भगाधाररूपिणी. भगमालिनी. लिंगाख्या, लिंगेशी. त्रिपुरभैरवी. लिंगगीति. सुगीति. लिंगस्था. लिंगरूपधृक्. लिंगमाला. लिंगभवा. लिंगलिंगा. पार्वती. भगवती. कौशिकीप्रेमा. प्रियम्व·

लिङ्गस्था लिङ्गनी लिङ्गरूपिणी लिङ्गसुन्दरी । लिङ्गगीतिर्महा प्रीता भगगीतिर्महासुखा ॥ लिङ्गनामसदानन्दा भगनामसदागतिः । लिङ्गमालाकण्ठभूषा भगमालाविभूषणा ॥ भगलिङ्गामृतप्रीता भगलिङ्गामृतात्मिका । भगलिङ्गार्चनप्रीता भगलिङ्गस्वरूपिणी ॥ भगलिङ्गस्वरूपा च भगलिङ्गसुखावहा ॥ स्वयंभू कुसुमप्रीता स्वयंभू कुसुमार्चिता । स्वयंभू कुसुमप्राणा स्वयंभूकुसुमोत्थिता । स्वयम्भू कुसुमस्नाता स्वयम्भू पुष्पतर्पिता ॥ स्वयम्भूपुष्पघटिता स्वयम्भूपुष्पधारिणी । स्वयम्भूपुष्पतिलका स्वयम्भूपुष्पचर्चिता ॥ स्वयम्भूपुष्पनिरता स्वयम्भूकुसुमग्रहा । स्वयम्भूपुष्पयज्ञांशा स्वयम्भूकुसुमात्मिका । स्वयम्भूपुष्पनिचिता स्वयम्भूकुसुमप्रिया । स्वयम्भूकुमादानलालसोन्मत्तमानसा स्वयंभूकुसुमानन्दलहरी स्निग्धदेहिनी । स्वयम्भूकुसुमाधारा स्वयम्भूकुसुमाकुला ॥ स्वयम्भूपुष्पनिलया स्वयम्भूपुष्पवासिनी ।

हा. गृध्ररूपा. शिवरूपा. चक्रिणी. चक्ररूपधृक्. लिंगाभिदायिनी. लिंगप्रियालिंगनिवासिनी. लिंगस्था. लिगिनी. लिंगरूपिणी. लिंगसुन्दरी. लिंगगीति. महाप्रीता. भगगीति. महासुखा. लिंगनामसदानन्दा. भगनामसदागति. भगनामसदानन्दा. लिंगनामसदागति लिंगमालाकंठभूषा, भगमालाविभूषणा. भगलिंगा. मृतप्रीता. भगलिंगमृतात्मिका. भगलिंगार्चनप्रीता. भगलिंगस्वरूपिणी. भगलिंगस्वरूपा. भगलिंगसुखावहा. स्वयंभूकुसुमाप्रीता, स्वयंभूकुसुमार्चिता, स्वयम्भू कुसुमप्राणा, स्वयम्भू कुसुमोत्थिता, स्वयम्भूकुसुमस्नाता, स्वयम्भू पुष्पतर्पिता स्वयम्भू पुष्पघटिता, स्वयम्भू पुष्पधारिणी, स्वयम्भू पुष्पतिलिका, स्वयम्भूपुष्प चर्चिता, स्वयम्भू पुष्प नरता, स्वयम्भू कुसुमग्रहा, स्वयम्भूपुष्पयज्ञांशा, स्वयम्भू कुसुमात्मिका, स्वयम्भू पुष्पनिचिता, स्वयम्भू कुसुमादान लालसोन्मक्त मानसा, स्वयम्भू कुसुमानन्द लहरी, स्निग्धदेहिनी स्वयम्भू कुसुमाधारा स्वयम्भू कुसुमाकुला, स्वयम्भू पुष्प निलया, स्वयम्भू पुष्पवासिनी, स्वयम्भू , कुसुमस्निग्धा, स्वयम्भू कुसुमात्मिका स्वम्भू पुष्प कारिणी, स्वयम्भू , पुष्प पाणिका, स्वयम्भू कुसुमध्याना, स्वयम्भू कुसुमप्रभा, स्वयम्भू कुसुमज्ञान, स्वयम्भू पुष्प भोगिना, स्वयम्भू कुसुमोल्लासा, स्वयम्भू पुष्प वर्षिणी, स्वयम्भू कुसुमोत्साहा, स्वयम्भू पुष्प रूपिणी, स्वयम्भू

स्वयम्भूकुसुमास्निग्धा स्वयम्भूकुसुमात्मिका ॥ स्वयम्भूपुष्प करिणी स्वयम्भूपुष्पपाणिका । स्वयम्भूकुसुमध्याना स्वयम्भूकुसुमप्रभा ॥ स्वयम्भूकुसुमज्ञानां स्वयम्भूपुष्पभोगिनी । स्वयम्भूकुसुमोल्लासा स्वयम्भूपुष्पवर्षिणी ॥ स्वयम्भूकुसुमोत्साहा स्वयम्भूपुष्परूपिणी । स्वयम्भूकुसुमोन्मादा स्वयम्भूपुष्पसुन्दरी ॥ स्वयम्भू कुसुमाराध्या स्वयम्भू कुसुमोद्भवा । स्वयम्भू कुसुमव्यग्रा स्वयम्भू पुष्पपूर्णिता ॥ स्वयम्भू पूजक प्रज्ञा स्वयम्भू होतृमातृका । स्वयम्भू दातृरक्षित्री स्वयम्भू रक्त तारिका ॥ स्यवम्भू पूजकग्रस्ता स्वयम्भू पूजकप्रिया । स्वयम्भू वन्दकाधारा स्वयम्भू निन्दकान्तका ॥ स्वयंभू प्रदसर्वस्वा स्वयंभू प्रदपुत्रिणी । स्वयंभू प्रदसस्मेरा स्वयंभू प्रदशरीरिणी सर्वकालोद्भवप्रीता सर्वकालोद्भवात्मिका ॥ सर्वकालोद्भवोद्भावा सर्वकालोद्भवोद्भवा । कुंडपुष्पसदाप्रीतिर्गोलपुष्पसदारतिः। कुंडगोलोद्भवप्राणा कुंडगोलोद्भवात्मिका । स्वयंभुवा शिवा धात्री पावनी लोकपावनी । कीर्त्तिर्यशस्विनी मेधा विमेधा शुक्रसुन्दरी अश्विनी कृत्तिका पुष्य तेजस्का चन्द्र-

---

कुसुमोन्मादा, स्वयम्भू पुष्पसुन्दरी, स्वयम्भू कुसुमोद्भवा स्वयम्भू कुसुम व्यग्रा, स्वयम्भू पुष्प पूर्णिता, स्वयम्भू पूजक प्रज्ञा, स्वयम्भू होतृमातृका, स्वयम्भू दातृरक्षित्री, स्वयम्भू रक्ततारिका, स्वयम्भू पूजकग्रस्ता, स्वयम्भू पूजक प्रिया, स्वयम्भू वन्दकाधारा, स्वयम्भू निन्दकान्तका, स्वयम्भू प्रदसर्वस्वा, स्वयम्भू प्रदपुत्रिणी, स्वयम्भू प्रदसस्मेरा, स्वयम्भूप्रद शरीरिणा, सर्वकालोद्भवप्रीता, सर्वकालोद्भवात्मिक सर्वकालोद्भवोद्भावा, सर्वकालोद्भवोद्भवा, कुण्डपुष्प सदाप्रीति, गोलपुष्परूदारति कुण्डगोलोद्भव प्राणा, कुण्डगोलोद्भवात्मिका स्वयम्भुवा शिवा, धात्री, पावनी; लोकपावनी कीर्त्ति; यशस्विनी; मेधा; विमेधा; शुक्रसुंदरी; अश्विनी; कृत्तिका, पुष्य, तेजस्का, चंद्रमंडला, सूक्ष्मासूक्ष्म, बलाका, वरदा, भयनाशिनी, वरदा, अभयदा, मुक्तिबंध विनाशिनी, कामुका, कामदा, कान्ता कामाख्या कुलसुन्दरी, दुःखदा, सुखदा मोक्षा, मोक्षदार्थ' प्रकाशिनी, दुष्टा, दुष्टमति, सर्वकार्यविनाशिनी, शुक्रधारा, शुक्ररूपा, शुक्रसिन्धु, निवासिनी, शुक्रालया, शुक्रभोगा; शुक्रपूजा, सदारति, शुक्र पूज्या, शुक्रहोम, सन्तुष्टा, शुक्रवत्सला शुक्रमूर्त्ति, शुक्र, देहा, शुक्रपूजक, पुत्रिणी, शुक्रस्था, शुक्रिणी, शुक्रसंस्पृहा, शुक्रसुन्दरी, शुक्रस्नाता, शुक्रकरी, शुक्र, सेव्या

मंडला। सूक्ष्मा सूक्ष्मा बलाका च वरदा भयनाशिनी॥वरदाभयदा चैव मुक्तिबन्धविनाशिनी कामुका कामदा कान्ता कामाख्या कुलसुन्दरी ॥ दुःखदा सुखदा मोक्षा मोक्षदार्थ प्रकाशिनी। दुष्टादुष्टमतिश्चैव सर्वकार्य विनाशिनी॥ शुक्रधाराशुक्ररूपा शुक्रसिन्धु निवासिनी। शुक्रालया शुक्र भोगा शुक्रपूजासदारतिः ॥ शुक्रपूज्या शुक्रहोमसन्तुष्टा शुक्रवत्सला। शुक्रमूर्त्तिः शुक्रदेहा शुक्रपूजकपुत्रिणी ॥ शुक्रस्था शुक्रिणी शुक्रसंस्पृहा शुक्रसुन्दरी शुक्रस्नाता शुक्रकरी शुक्रसेव्याति शुक्रिणी॥ महाशुक्रा शुक्र-भवा शुक्रवृष्टिविधायिनी। शुक्राभिधेया शुक्रार्हा शुक्रवन्दकवन्दिता॥ शुक्रानन्दकरी शुक्र सदानन्दाभिधायिका। शुक्रोत्सवा सदाशुक्रपूर्णा शुक्रमनोरमा॥ शुक्रपूजकसर्वस्वा शुक्रनिन्दकनाशिनी। शुक्रात्मिका शुक्रसंपत् शुक्राकर्षणकारिणी ॥ शारदा साधकप्राणा साधकासक्त मानसा। साधकोत्तमसर्वस्वा साधकाभक्तरक्तपा ॥ साधकानन्दस-न्तोषा साधाकानन्दकारिणी । आत्मविद्या ब्रह्म विद्या, परब्रह्म-स्वरूपिणी॥ त्रिकूटस्था पञ्चकूटा सर्वकूटशरीरिणी सर्ववर्णमयी वर्णजयमालाविधायिनी॥

श्रीशिव उवाच—

इति श्रीकालिकानामसहस्रं शिवभाषितम्। गुह्याद्गुह्यतरं

अतिशुक्रिणी, महाशुक्रा, शुक्रभवा, शुक्रवृष्टि, विधायिनी, शुक्रभिधेया, शुक्रार्हा शुक्रवंदन, वंदिता, शुक्रानन्दकरी, शुक्रसदानंदाभिधायिका, शुक्रोत्सवा, सदाशुक्र, पूर्णा शुक्रमनो-रमा, शुक्रपूजकसर्वस्वा, शुक्रनिंदक, नाशिनी, शुक्रात्मिका शुक्रसम्पत्, शुक्राकर्षण, कारिणी, सारदा, साधकप्राणा, साधकासक्तमानसा साधकोत्तम, सर्वस्वा साधका, भक्त, रक्तपा, साधकानंद सन्तोषा, साधकानंद कारिणी, आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या पर-ब्रह्म, स्वरूपिणी, त्रिकूटस्था, पंचकूटा, सर्वकूट, शरीरिणी, सर्ववर्ण मयी और वर्ण जयमाला विधायनी॥

महादेव कथित श्री कालिका के यह सहस्रनाम गुह्य से गुह्यतर और साक्षात् महापातक विनाश करते हैं रात्रि अथवा दोनों संध्याओं में पूजा के समय इसका पाठ करने से साधकोत्तम और गाणपत्य प्राप्त होजाता है। जो व्यक्ति इसका पाठ करता

साक्षात् महापातकनाशनम् ॥ पूजाकाले निशीथे च सन्ध्ययोरुभयोरपि लभते गाणपत्यं स यः पठेत् साधकोत्तमः ॥ यः पठेत् पाठयेद्वापि शृणोति श्रावयेदथ । सर्वपापविमुक्तः स याति कालिकापुरम् श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि य कश्चिन्मानवः स्मरेत् । दुर्गं दुर्गशतं तीर्त्वा स याति परमां गतिम् ॥ बन्ध्या वा काकबन्ध्या वा मृतवत्सा च याङ्गना । श्रुत्वा स्तोत्रमिदं पुत्रान् लभेत चिरजीविनः ॥ यं यं कामयते कामं पठन् स्तोत्रमनुत्तमम् । देवीपादप्रसादेन तत्तदाप्नोति निश्चितम् ॥ स्वयंभूकुसुमैः शुक्रैः सुगन्धिकुसुमान्वितैः । जवायावकसिंदूररक्तचंदनसंयुतैः ॥ मत्स्यमांसादिभिर्धीरो मधुभिः साज्य पायसैः भक्त्योपनीतैर्मन्त्रेण शोधितैः सह पञ्चमैः ॥ पञ्चोप चारनैवेद्यैर्वलिभिर्बहुशोणितैः धूपदीपैर्महादेवीं पूजयित्वा मनोहरैः । जप्त्वा महामनुस्तोत्रं पठेद् भक्तिसमन्वितः । अनन्यचेताः स्थिरधीर्मुक्तकेशो दिगंबरः शवारूढश्चितास्थो वा श्मशानालयमागतः शून्यालयगतो वापि

है और कराता है अथवा जो व्यक्ति इस सहस्र नामको सुनता और सुनाता है वह सर्वदा पाप से छूटकर कालिका पुर में गमन करता है । श्रद्धा से अथवा अश्रद्धा से जो कोई इसको श्रवण करता है वह दुर्ग और शतदुर्ग उत्तरणकर परम गतिको प्राप्त होता है । जो स्त्री वंध्या, वा काकवंध्या, या मृतवत्सा है, वह इस स्तोत्र के सुनने से चिरजीवी पुत्रलाभ करती है । जो जो कामना करीजाय, इस स्तोत्रके पाठ करने और देवी के प्रसाद से निःसंदेह वह सब पूर्ण होती हैं । भक्ति सहित स्वयम्भू कुसुम, शुक्र, सुगंधित पुष्पयुत जवा [गुडहल] यावक [लाखकारंग] सिंदूर, लाल चंदन, मत्स्यमांसादि, मधु, घृत सहित खीर, शोधित पञ्चमकार सहित और पंचोपसार सहकृत नैवेद्य, बहुत रुधिर युक्त अनेक बलि, एवं मनोहर धूप और दीप निवेदन पूर्वक भक्तियुक्त हो महामनु जपकर इस स्तोत्रको पढ़े । जो व्यक्ति मुक्तकेश, नग्नवेश, स्थिर मन और अनन्य चित्तसे शव में आरोहण, वा चिता भूमि में अवस्थान, वा श्मशानालय में गमन अथवा शून्यालय [सूना मकान] में विराजमान, किम्वा शय्या पर शयन करके इस प्रकार से पाठ करै, तो वह व्यक्ति शिवमय और कालिका के पुत्र

शय्यास्थो ना शिवात्मकः ॥ स भवेत् कालिकापुत्र इतिख्याति मुपागतः सर्वविद्यावतां श्रेष्ठो धनेन च धनाधिपः ॥ वायुतुल्यबलो लोके दुर्जयः शत्रुमर्दनः सर्वसङ्कटमुत्तीर्णः सर्वसिद्धिसमन्वितः ॥ मधुमत्या स्वयं देव्या सेव्यमानःस्मरोपमः । महेश इव योगीन्द्रःसर्वसत्वपुरस्कृतः । कामिनीकामरूपोऽसौ सर्वाकर्षणकारकः । जलसूर्य्येन्दुवायनां स्तम्भकोराजवल्लभः ॥ यशस्वी सत्कविर्धीमान् सन्मंत्री कोकिलस्वरः । बहुपुत्री गजाश्वानामीश्वरो धार्मिकःकृती ॥ मार्कण्डेय इवायुष्मान् जरापलितवर्जितः नवयौवनयुक्तः स्यादपि वर्षसहस्रभाक् बहु किं कथ्यते तस्य पठतःस्तोत्रमुत्तमम् । न किंचिद्दुर्लभं लोके यद्यत् मनसि वर्त्तते॥ब्रह्महत्या सुरापान स्तेयं गुर्वङ्गनागमः सर्वमाशु भवत्येव स्तवस्यास्य प्रसादतः ॥ रजस्वलाभगं पश्यन् जप्त्वा कालीं महामनुम् । स्तवेनानेन संस्तुत्य साधकः किन्न साधयेत्॥परदार परो वापिजप्त्वा मंत्रं पठन् स्तवम् । कुबेर इव वित्ताढ्यो जायते साधकोत्तमः॥ अष्टोत्तरशतंजप्त्वा योनिमामंत्र्य तत्त्ववित्। संगम्य पठनादस्य

नाम से सर्वत्र विख्यात होता है । और समस्त विद्वानों में अग्रगण्य होता है । धन में कुबेर की समान और वायु की समान बलयुक्त होकर सब लोकों से दुर्ज्जय होता है और शत्रुगणों का मर्दन सब प्रकार के संकट से पार उतरना सर्व प्रकार की सिद्धि संकलन और कामदेव की समान अधिगमन करता है । स्वयं देवी मधुमती उस की सेवा में प्रवृत्त होती है । वह महादेव जी की समान योगीन्द्र और समस्त सत्व का अग्रणी कामिनीगणों को कामरूप, सब का आकर्षण करनेवाला, जल सूर्य और वायु का स्तम्भिक राजवल्लभ, यशस्वी, सत्कवि, परमबुद्धिमान्. सब विषयों में अच्छी परामर्श देनें को समर्थ, कोकिल की समानकलकण्ठ, अनेक पुत्रों का पिता, गज और अश्वादि सब का ईश्वर धार्मिक. कृतीमार्कण्डेय की समान दीर्घायु जराहीन, पलित विहीन नवयौवन युक्त और सहस्र वर्ष जीवी होता है । अधिक कहने से और क्या है? इस उत्तम स्तोत्र के पाठ करने से जो कुछ मन में इच्छा होती है वह कुछ दुर्लभ नहीं होती । ब्रह्महत्या, सुरापान, चौर्य, गुरुपत्नी गमन, इत्यादि समस्त पातक इस स्तव के प्रसाद से शीघ्र नष्ट होते हैं । उदकीका कुल मंदिर देखकर काली और तदीय महामन्त्र के जप सहित इस स्तोत्र का पाठ करने से साधक किस वस्तु का साधन नहीं कर सक्ता ? जो व्यक्ति परदार परायण अर्थात् पराई स्त्री में रत है, वह भी मंत्र जपने के पीछे इस स्तव का पाठ करने से कुबेर की समान वित्ताढ्य [धनवान]

सर्वविद्येश्वरो भवेत् ॥ दिगम्बरो मुक्तकेशः शय्यास्थो मैथुनी नरः जप्त्वा स्तुत्वा महाकालीं खेचरो जायतेऽचिरात् ॥ शुक्रोत्सारणकाले च जपपूजापरायणः । श्मशानकालिकां स्तुत्वा वाणीवसत्कविर्भवेत् ॥ आलोकयन् चिंतयन् वा विवस्त्रां परयोषिताम् । जप्त्वा स्तुत्वा महाकालीं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ सुरतेषु मनुं जप्त्वा स्तुत्वा भगवतीं शिवाम् । सर्वपापैः परित्यक्तो मानवः स्यात् शुक्रोपमः ॥ कुहूपूर्णेन्दु-संक्रांतिचतुर्दश्यष्टमीषु च ; नवम्यां मङ्गलदिने पठेत् स्तोत्रं सुसाधकः भौमावास्यां निशिथे च चतुष्पथगतो नरः । मांसरक्तबलिं दत्त्वा सदुग्धमनिशोणितम् ॥ अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पठेन्नामसहस्रकम् । सोऽदर्शनो भवेदाशु देवगंधर्वसेवितः ॥ येन तेन प्रकारेण कालीस्तुति परायणः । स्तम्भयेदखिलान् लोकान् लोकान् राजानमपि मोहयेत् ॥ आकर्षयेद्देवकन्यां वशयेदपि केशवम् । मारयेदखिलान् दुष्टानुच्चाट-यति शात्रवान् नरमार्जारमहिषच्छागमूषिकशोणितैः । सास्थिमांसैः समधुभिः सौवीरैः दुग्धपायसैःयोनिलक्षणतोयेन भगलिंगामृतेन चाशुक्रैः पूजाजपान्ते तु कालीं सन्तर्प्य साधकः ॥ सहस्रनामभिर्दिव्यैः स्तौति

और साधकोत्तम होते हैं । तत्ववित् साधकयोनि आमन्त्रण करके संगम के पीछे इस स्तव का पाठ करने से सम्पूर्ण विद्या का ईश्वर होता है । जो व्यक्ति दिगम्बर [नग्न] मुक्तकेश [खुलेबाल] शय्यास्त्र [शय्यापर स्थित] और मैथुनी होकर महाकाली का जप और स्तव करता है, वह शीघ्र खेचर होता है शुक्रोत्सारण समय जप पूजा परायण होकर श्मशान कालिका का स्तव करने से साक्षात् वाणी की समान सत्कवि हो जाता है । बसनहीन पराई स्त्री का दर्शन वा चिन्तन करके महाकाली का जप और स्तव करने से सब प्रकार के पाप दूर होते हैं। सुरत समय मंत्र जप और भगवती शिवा का स्तव करने से मनुष्य शुक के सदृश और सर्व पाप से रहित होता है । श्रेष्ठ साधक अमावस्या, पौर्णमासी, संक्रान्ति, चतुर्दशी [चौदश] अष्टमी और नवमी इन सब तिथि और मंगलवार में उल्लिखित स्तव पाठ करै । अमावस्या के निशीथ [रात्रि] समय चौराहे में गमन करके दग्ध मीन और शोणित सहित बलिप्रदान पूर्वक अष्टोत्तर शतनाम सहस्र जप करने से साधक अदर्शन हो जाता है । एवं देव और गंधर्वगण सेवा करते हैं । जिस किसी प्रकार से काली स्तुति परायण होकर इस स्तव का पाठ करने से समस्त लोक को स्तम्भित राजा को भी मोहित, देवकन्या को भी आकर्षित, केशव को भी वशीकृत, समस्त दुष्टगणों को विनाशित और समस्त शत्रुगणों को उच्चाटित

भक्तिपरायणः । मातेव दक्षिणा तस्य सर्वत्र हितकारिणी ॥ परनिन्दापरद्रोहपरदारपराय च । खलाय परतन्त्राय भ्रष्टायासाधकाय च ॥ शिवाभक्ताय दुष्टाय दूषकाय दुरात्मने । हरिभक्तिविहीनाय परदारपराय च ॥ पूजाजपविहीनाय स्त्रीसुरानिन्दकाय च । न स्तवं दर्शयेद्देवि ! सन्दर्श्य शिवहा भवेत् ॥ कुलीनाय महोत्साय दुर्गाभक्तिपराय च । वैष्णवाय विशुद्धाय भक्तियुक्ताय मन्त्रिणे ॥ अद्वैतानन्दरूपाय निवेदितरताय च । दद्यात् स्तोत्रं महाकाल्याः साधकाय शिवाज्ञया ॥ गुरुविष्णुमहेशानामभेदेन महेश्वरीम् । स्वमन्त्रां भावयेत् मन्त्री महेशः स्यान्न संशयः ॥ स शाक्तः शिवभक्तश्च स एव वैष्णवोत्तमः । संपूज्य स्तौति यः कालिमद्वैतभावमावहन् ॥ देव्यानन्देन सानन्दो देवीभक्तेन भक्तिमान् । स एव धन्यो यस्यार्थे महेशो व्यग्रमानसम् ॥ कामयित्वा यथाकामं स्तवमेन मुदीरयेत् । सर्वरोगविनिर्मुक्तो जायते मदनोपमः ॥ चक्रं वा स्तव मेनं वा धारयेदङ्गसङ्गतम् । विलिख्य विधि-

किया जाता है । जो व्यक्ति अस्थि, मांस, मधु, दुग्ध, पायस और योनिलक्षणा नुसार भग लिङ्गामृत और शुक्र प्रदान सहित जप और पूजा करके काली का सन्तर्पण पूर्वक भक्ति परायण होकर दिव्य सहस्र नाम द्वारा स्तव करता है दक्षिण कालिका जननी की समान सर्वत्र उस का हित करती हैं। जो व्यक्ति परनिन्दक, परद्रोही, परदार परायण, खल, परतन्त्र भ्रष्ट असाधक, शिव के प्रति भक्ति रहित, दुष्ट, स्वभाव, दूषक, दुरात्मा, हरिभक्तिविहीन, परदार पर पूजा जप रहित, स्त्री निन्दक, और सुरा निंदक है, उस को इस स्तव का दर्शन भी न करावे। दिखाने से शिव घातक होता है। जो कुलीन, महोत्साहयुक्त, दुर्गा के प्रति भक्ति युक्त, वैष्णव, विशुद्ध स्वभाव, भक्ति संयुक्त, मंत्र साधन तत्पर, और अद्वैतानन्द स्वरूप, एवं महाकाली का साधक हैं, उस को ही शंकर की आज्ञा से यह स्तोत्र प्रदान करै। गुरु विष्णु और महेश्वर के अभेद में महेश्वरी की भावना करने से साधक साक्षात् महेश्वर हो जाता है । इस में सन्देह नहीं है। जो व्यक्ति अद्वैत भाव अवलम्बन पूर्वक काली को भली भांति पूजा करके स्तव करता है वही शाक्त, वही शिव भक्त और वही वैष्णवोत्तम है । जो व्यक्ति देवी के आनन्द में ही आनन्द मान और देवी की भक्ति में ही भक्तिमान है, वही धन्य है। श्री महादेव जी सदा उसके ही लिये व्यग्र चित्त रहते हैं। यथा—काम कामना करके इस स्तव का पाठ करने से सर्वरोग विनिर्मुक्त, और मदनोपम [कामदेव की समान उपमा योग्य] होता है । जो व्यक्ति चक्र वा इस स्तव को यथा विधि लिखकर अंगसंगत [अंग के संग] धारण करता है, वही साधु और वही काली देह होता है । देवीको जो २ वस्तु निवेदन करी जाती है, उसका केवल अंशमात्र

वत् साधुः स एव कालिका तनुः ॥ देव्यै निवेदितं यद्यत् तस्यांशं भक्षयेन्नरः। दिव्यदेहधरो भूत्वा देव्याः पार्श्वचरो भवेत् ॥ नैवेद्यनिन्दकं दृष्ट्वा नृत्यन्ति योगिनीगणाः। रक्तपानोद्यताः सर्वे मांसास्थिचर्वणोद्यताः ॥ तस्मान्निवेदितं देव्यै दृष्ट्वा श्रुत्वा च मानवः । न निन्देत् मनसा वाचा सर्वव्याधिपराङ्मुखः ॥ आत्मानं कालिकात्मानं भावयन् स्तौति यः शिवाम् । शिवोपमं गुरुं ध्यात्वा स एव श्रीसदाशिवः ॥

यस्यालये तिष्ठति नूनमेतत् स्तोत्रं भवान्या लिखितं विधिज्ञैः। गोरोचनालक्तककुंकुमाक्तसिन्दूरकर्पूरपमधुद्रवेण ॥ न तस्य चौरस्य भयं न दस्योर्मनोरथो नाशनिवह्निभीतिः। उत्पातवायो रपि नात्र शङ्का लक्ष्मीः स्वयं तत्र वसेदलोला। स्तोत्रं पठन्नेतदनन्तपुण्यं कालीपदाम्भोजपरो मनुष्यः। विधानपूजाफलमेव सम्यक् प्राप्नोति संपूर्णमनोरथोऽसौ ॥

मुक्ताः श्रीचरणारविन्दविमुखाः स्वर्गामिनो भोगिनो ब्रह्मोपेन्द्रशिवात्मिकार्चनसुखं लोकेऽखिलं लेभिरे । श्रीमत्सद्गुरुभक्तिपूर्वकम-

---

भक्षणकरने से दिव्यदेह और देवीका पार्श्वचर [निकटवर्ती होजाता है । जो व्यक्ति नैवेद्य की निंदा करता है, योगिनीगण उसको देखकर नाचती हैं, एवं उसका रक्त पीने में उद्यत और मांस व अस्थि चाबनेको उद्यत होती हैं। इसलिये देवी के उद्देश से निवेदित द्रव्य देखकर व सुनकर, वाक्य वा मन द्वारा निन्दा न करने से समस्त व्याधि दूर होती है। जो व्यक्ति आत्माको कालिकात्मा ज्ञानकर उसका ध्यान धारण सहित स्तव करता है, और गुरुको भी उसी की समान विचारता है, वही व्यक्ति साक्षात् श्री सदा शिव है। जो व्यक्ति विधि जाननेवाले व्यक्तिकी सहायता से गोरोचना, महावर, कुंकुमाक्तसिंदूर, कपूर, और मधु मुद्रा द्वारा भवानी का यह स्तव लिखकर गृह में प्रतिष्ठापित करता है, उसको चौर भय नहीं रहता, उसका दस्यु [तस्कर) भय दूर होता है, इसके अतिरिक्त वज्र और अग्नि भय भी दूर होता हैं। उसके उस गृह में स्वयं लक्ष्मी अचल होकर वास करती है, और उत्पात वायुकी आशंका भी पद प्रक्षेप नहीं करसक्ती। जो व्यक्ति देवी कालिका के पादारविन्द में एकाग्र चित्त

हाकालीपदध्यायिनो भुक्तिर्मुक्तिस्स्वयं स्तुतिपरा मुक्तिः करस्थायिनी ॥

इति कालिकाकुलसर्वस्वे हररामसंवादे कालिका सहस्रनामस्तोत्रं समाप्तम् ।

इति महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित श्यामारहस्ये चतुर्थः परिच्छेदः ।

अथ पञ्चमः परिच्छेदः ।

अथ मन्त्रसिद्ध्यर्थमादौ पुरश्चरणविधिर्लिख्यते ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे—

आदौ पुरष्क्रियां कुर्वन् नियमेन यथाविधि । लक्षमेकं जपेद्धिमां हविष्याशी दिवा शुचिः ॥ रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगार्हो न चान्यथा ॥ जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः । पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रप्रदायकः ॥ तस्मादादौ पुरश्चर्य्यां कुर्य्यात् साधकसत्तमः । नानाचारं न कर्त्तव्यं नोच्चारणमितस्ततः ॥ भूतहिंसा न कर्त्तव्या पशुहिंसा विशेषतः । बलिदानं विना देव्या हिंसा सर्वत्र वर्जिता ॥ अन्यमन्त्रपुरस्कारं निन्दाञ्चैव विवर्जयेत् । प्रयोगञ्च ततः कुर्य्यात् सर्वमेवच दुर्लभम् ॥

होकर यह अनन्त पुण्ययुक्त स्तव पाठ करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथ होकर सम्यक् प्रकार से पूजा फल के विधानको प्राप्त होता है ॥

इति श्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरि विरचित श्यामारहस्य श्रीपण्डितहरिशंकरकृत भाषाटीकासहित चतुर्थपरिच्छेद ॥ ४ ॥

—:o:—

अब मत्रसिद्धि के लिए आदौ पुरश्चरण विधि कहते हैं। कालीतंत्र में कहा है। यथा—प्रथम यथा विधि नियमानुसार दिन में हविष्याशी और पवित्र होकर पुरष्करण पूर्वक एकलक्ष जप करै। फिर रात्रि में ताम्बूल पूरित बदन से शय्यापर शयन करके इसप्रकार लक्ष्यमान जप करना चाहिये। तो साधक सिद्ध मंत्र और प्रयोग योग्य होता है, नहीं तो नहीं। जीवहीन देही जिस प्रकार कोई कार्य नहीं करसक्ता, पुरश्चरण हीन मंत्र दाता भी इसी प्रकार किसी प्रयोग के साधन में समर्थ नहीं होता। इस कारण साधक सत्तम आदि में पुरश्चर्या करै, कभी अनाचार में प्रवृत्त न हो इतस्ततः अर्थात् इधर उधर उच्चारण न करै, विशेषतः पशु हिंसा दूर करै। देवी के उद्देश से बलिदान के अतिरिक्त और सर्वत्र हिंसा का त्याग करै। अन्य मंत्र पुरस्कार में

स्वतन्त्रेऽपि——

दिवा लक्षं शुचिर्भूत्वा हविष्याशी जपेन्नरः । ततस्तु तद्दशांशेन होमयेद्धविषा प्रिये ! ॥ तीर्थतोयेन पयसा मधुना सर्पिषा दिवा । मधुना वासितामिश्रतोयेन परमेश्वरि ! ॥ देवीञ्चाभिषिञ्चत्तोयैस्तर्पणञ्च दशांशतः । तद्दशांशं हविष्यान्नं भोजयद्भक्तितः प्रिये ! ॥ कालीमन्त्रविच्च विद्वान् दक्षिणां गुरवे ददेत् । पाशवं कथितं कल्पं शृणु ष्वैवं ततः प्रिये ॥

फेत्कारिणीयेऽपि——

भक्ष्यादिनियमाहारः सकृद्रात्रौ विधीयते । दिवा चैव जपं कुर्य्यात् पौरश्चारणिको द्विजः ॥ शाकयावकभक्ष्याशी च॰णा सह सर्पिषा । दध्ना मूलफलैर्वापि कुर्य्याद्दर्शनमन्वहम् ॥ ब्रह्मचर्य्यं तथैवोक्तं स्नानं द्विवसनं तथा । पूर्वाह्ने देवतायाश्च पूजां कृत्वा विशेषतः॥ सर्वे मंत्राः प्रयोक्तव्याः प्रायश्च प्रण॰ादिकाः ।

वाराहीतन्त्रे च–

न चात्र सिद्धिमाप्नोति हीने च प्रणववांतरे । ठद्वयांते ठद्वयंचनमोऽन्ते च नमो न च॥ वाक् चैव कामः शक्तिश्च प्रणवः श्रीश्च कथ्यंते । तदा-

---

निंदा का भी परित्याग करै । अनन्तर प्रयोग में प्रवृत्त होना चाहिये । स्वतन्त्र में भी कहा है दिन में हविष्याशी और पवित्र होकर लक्ष जप और उस के दशांस में हविः द्वारा होम करै । हे परमेश्वरी ! दिवाभाग में तीर्थ सलिल दुग्ध, मधु, घृत और मधुबासित मिश्रजल द्वारा देवी को अभिषिक्त और दशांशतः जल द्वारा उन का तर्पण करना चाहिये । हे प्रिये ! भक्ति सहित उसका दशांश हविष्यान्न भोजन करके काली मंत्रवित् विद्वान् व्यक्ति गुरु को दक्षिणा दे । यह पाशव कल्प कहा गया । फेत् कारिणी में भी कहा है—रात्रि में ही एक वार भक्ष्यादि नियमाहार विहित होता है । दिवाभाग में पुरश्चरण करके केवल जप करना चाहिये । घृत सहित चरु दधि वा फल, मूल; शाक और यावक भक्षण करै एवं दोनों संध्याओं में स्नान और ब्रह्मचर्य्य करना चाहिये पूर्वान्ह में भलीभांति देवता की पूजा करके प्रणवादि तीनों में समस्त मंत्र प्रयोग करै ।

वाराही तंत्र में कहा है, प्रणवान्तर विहीन होने से साधक सिद्धि लाभ करने में समर्थ नहीं हो सका । स्वाहा के पीछे स्वाहा और नमः शब्द प्रयोग न करै, वाक्बीज, कामबीज, शक्ति, रमाबीज और प्रणव, यह परस्पर समान हैं । तदाद्य मंत्र में प्रणव

षेषु च मंत्रेषु प्रणवं नैव योजयेत् ॥ वैष्णवे प्रणवं दद्यात् शैवे शार्क्ति नियोजयेत्। शक्तौ कामं गणेशे च रमाबीजं न्यसेत् पुरः ॥ सूर्य्ये चैव तदान्येषां तार्त्तीयं विनियोजयेत्। प्रणवाद्यं गृहस्थानां तच्छून्यं निष्फलं भवेत् ॥ आश्रंतयोर्वनस्थानां यतीनां महतामपि। अनन्यचेता आसीनो वाग्यतो विहिताशनः ॥ जप्तव्या मूलमन्त्राश्च गुरुवन्दनपूर्वकम्।

तारापदीपे च-

कूर्मचक्रमुखं वीक्ष्य चासनं तत्र कल्पयेत्। चैनाजिनकुशेष्वेव सुचित्रकम्बलेषु वा आसनानि प्रकल्प्याथ संविशेत् साधकोत्तमः। शरैर्वा कुशदर्भै वा न चर्मणि तथा पुनः ॥ महाशङ्खोपरि स्थित्वा साधयेद्वा प्रयत्नतः।

अन्यत्रापि—

देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया जपेदेकमनाः प्रातःकालमध्यन्दिनावधि ॥ यावत्संख्यं समारब्धं तत् कर्त्तव्यमवश्यकम्। यदि न्यूनाधिकं कुर्य्याद् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः ॥

संयुक्त न करै। वैष्णव मंत्र में प्रणव दान करै शैव में शक्ति नियोग करै, शक्ति में काम न्यस्त करै, गाणपत्य में रमाबीज संयुक्त करै, सौर, और अन्यान्य समस्त मंत्र में शक्ति नियोजित करै। गृहस्थगणों के पक्ष में प्रणवाद्यप्रशस्त है। प्रणवहीन होने से कोई फल नहीं होता। बनस्थ यतीगण और अन्यान्य महात्मा गणों के पक्ष में वाग्बीज और रमाबीज विहित है। विहित विधानानुसार भोजन करके वाग्यत् और एकाग्र चित्त से विराजमान हो, गुरु की वंदनाकर समस्त मूलमंत्र का जप करै। तारापदीप में कहा है-कूर्मचक्र का मुख देखकर उस में आसन कल्पना वा एनाजिन[कालैमृग का चर्म] कुश, सुचित्र कम्बल, इन सब का आसन बनाकर उस पर बैठे। शर अथवा कुशदर्भ का भी आसन बनावे, चर्म का आसन निषिद्ध है। या महाशंख के ऊपर बैठकर यत्न सहित साधना करै। अन्यत्र भी कहा है कि बुद्धि सहित देवता गुरु और मंत्र के पार्थक्य की चिन्ता करके एकाग्रचित्त द्वारा प्रातः काल से मध्यन्दिन [दुपहर] पर्यन्त जप करै। यावत् संख्यक् आरंभ करै। उस को अवश्य पूर्ण करना चाहिये। न्यूनाधिक करने से व्रत भ्रष्ट होता है। मुण्डमाला में भी कहा है कि प्रातःकाल से आरंभ करके

मुण्डमालायाम्—

प्रातःकालं समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि । प्रथमेऽहनियज्जसं तज्जसव्यं दिनेदिने न्यूनाधिकं न जप्तव्यं आसमाप्ते सदा जपेत्। संख्यापूर्णो निजद्रव्यैर्जपसंख्यादशांशतः ॥ यथोक्तकुण्डे जुहुयाद् यथाविधि समाहितः। अथवा प्रत्यहं जप्त्वा जुहुयात्तद्दशांशतः ततो होमदशांशन्तु जले संपूज्य देवताम् ॥

तर्पणादिकं कार्य्यमित्यादि । कुलसम्भवेऽपि—

स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः प्रयतमानसः दिवा चैवं प्रकर्त्तव्यं सर्वकामार्थसिद्धये ॥

ताराप्रदीपे च—

विविच्य विधिवद्विद्वान् मण्डलं सुमनोहरम् । तस्मिन् कलसमारोप्य क्वाथतोयैः प्रपूरयेत् ॥ निक्षिप्य नवरत्नानि तत्र गन्धाष्टकं पुनःआवाह्य पूजयेत्तत्र देवीमावरणैः सह। कलसाग्रे जपेत् मन्त्रं संख्यया पूरणावधिः ततः पूर्णं समागत्य गुरुदेवो विधानतः ॥ अभिषिञ्चेत् शिष्यमूर्ध्नि कलसोदरवारिभि। ततः शिष्य प्रयत्नेन धनाद्यैस्तोषयेद्गुरुम् ॥

मध्यान्ह काल पर्यन्त जप करै । प्रथम दिन जितना जप करै. प्रति दिन उतना ही जप करना चाहिये। न्यूनाधिक जप न करै असमाप्ति में सर्वदा जप करै। संख्या पूर्ण होने पर अपने द्रव्य से जप संख्या का दशांश यथोक्त कुण्ड में समाहित होकर यथाविधि होम करै। अथवा प्रतिदिन जप करके उस का दशांश परिमाण होम करना चाहिये। अनन्तर जलमें होम दशांशके परिमाणसे देवताकी पूजा करके तर्पणादि करै। कुलसंभव में कहा है—स्नानपूर्वक पवित्र हो. सफेद वस्त्र पहर एकाग्रचित्त से दिवाभाग में सर्व कामार्थ सिद्धि के लिये विहित विधान से जप करै। ताराप्रदीप में भी कहा है–विद्वान साधक विहित विधान से परम मनोहर मण्डल की विवेचनाकर उस में कलश स्थापन पूर्वक क्वाथ सलिल से उस को पूर्ण करै। अनन्तर नवरत्न डालकर पुनर्वार गंधाष्टक प्रदान पूर्वक देवी का आवरण के सहित आवाहन और पूजा करै। जब तक जप पूर्ण नहो तब तक कलस के आगे संख्यानुसार मंत्र का जप करना चाहिये। अनन्तर जप पूर्ण होने पर गुरुदेव विधानानुसार कलसोदर जल से शिष्य के मस्तक में अभिषेक करै। तब शिष्य यत्नसहित धनादि प्रदान करके गुरुदेव को संतुष्ट करै ॥

तथैवं विधिना लब्धं प्रजप्य तद्दशांशहोमं तद्दशांशतर्पणं तद्दशांशाभिषेकं तद्दशांशब्राह्मणभोजनं कारयेत् । तदशक्तौ होमादिसंख्याद्विगुणजपो विप्रेण कार्य्यः क्षत्रियेण त्रिगुणजपः वैश्येन चतुर्गुणजपः शूद्रेण पञ्चगुणजपः कार्य्यः ।

तदुक्तम् कुलप्रकाशे—

यद्यदङ्गं विहीयेत तत्संख्याद्विगुणं जपम् । कुर्वीत त्रिचतुःपंचसंख्यया साधकोत्तमः ॥

अन्यत्रापि—

होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः इतरेषाञ्च वर्णानां त्रिगुणादिः समीरितः ॥ गुरुं सन्तोषयेदेवं मन्त्राः सिध्यन्ति मंत्रिणः ।

मुण्डमालायाञ्च—

होमाद्यशक्तो देवेशि! कुर्य्यात्तु द्विगुणं जपम् । यदि पूज्याद्यशक्तः स्यात् द्रव्याभावेन सुन्दरि ! ॥ केवलम् जपमात्रेण पुरश्चर्य्या विधीयते ॥

अथात्र ब्राह्मण भोजनमवश्यमेव ।

तदुक्तम् कुलप्रकाशे—

एकमङ्गं विहीयेत मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ अन्नैश्चतुर्विधैर्देवि ! पदार्थैः षड्रसैरपि ॥ सुभोजितेषु विप्रेषु सर्वं हि सफलं भवेत् । सम्य-

---

इस प्रकार विधानानुसार लक्ष जप, जप का दशांश होम, होम का दशांश तर्पण तर्पणका दशांश और अभिषेक, अभिषेकका दशांश ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये॥इसमें असमर्थ होने से होमादि संख्या को दूना जप करै। क्षत्रियों के पक्ष में तिगुना जप उचित है वैश्य का चौगुना और शूद्र को पचगुना जप करना चाहिये। कुल प्रकाश में कहा है, यथा-जिस जिस अंग की हानि हो, उस संख्या का दूना जप करै। अथवा तीन चार और पांचगुणा भी जप करना चाहिये। अन्यत्र भी कहा है कि ब्राह्मण होम करने में असमर्थ होने से दूना जप करैं। अन्यान्यवर्ग गणों के पक्ष में त्रिगुणादि जप विहित है। इसी प्रकार गुरु कोसंतुष्ट करै। तो समस्त मंत्र सिद्ध होते हैं। मुण्डमाला में कहा है, हे देवेशि! होमादि में असमर्थ होने से दूना जप करै। हे सुन्दरि! द्रव्याभाव के कारण पूजादि में असमर्थ होने से केवल जप मात्रानुसार पुरश्चर्य विधान करै। इस स्थल में अवश्य ही ब्राह्मण भोजन करावै।

कुल प्रकाश में कहा है यथा—हे देवि! चार प्रकार के अन्न और छै प्रकार के रस पदार्थ का ब्राह्मणगणों को भली भांति भोजन कराने से समस्त सफल होता है।

कृसिद्धैकमन्त्रस्य पञ्चाङ्गोपासनैव हि ॥ सर्वे मन्त्राश्च सिध्यन्ति तत् प्रसादात् कुलेश्वरि!

अन्यत्रापि—

सर्वदा भोजयेद्विप्रान् कृतसाङ्गत्वसिद्धये। विप्राधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेत् सदा ॥

तन्त्रान्तरेऽपि—

कृत्वा मन्त्रजपं मन्त्री पुरस्काराय संयतः। दशांशं जुहुयादग्नौ यथोक्तविधिना तु यः॥ग्रद्धा जपचतुर्थांशं स्वाहान्तं मूलमुच्चरन्। ततो होमदशांशं तु स्वाहान्तं तर्पयेज्जलैः ॥ तर्पणस्य दशांशेन नमोऽन्तं मूलमुच्चरन्। अभिषिञ्चेत् स्वमूर्द्धानं जलैः कुम्भाख्यमुद्रया ॥

फेत्कारिण्यां—

स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण कुर्याद्धोमं बलिं तथा। मन्त्रान्ते नाम संयोज्य तर्पयामिति तर्पणम् ॥

इति पाशावकल्पः। अथ एकवीराकल्पे विशेषो यथा-

तदुक्तं कुलचूडामणौ-

पुरश्चरणकालेऽपि परयोषां प्रपूज्य च। दीक्षितां वस्त्रपुष्पाद्यै-र्भोज्यैः पायससम्भवैः॥ आरम्भकाले नियतं स्वयं पक्वान्नभोजनम्। नानाविधं पिष्टकञ्च नानारससमन्वितम् ॥ दुग्धं दधि घृतं तक्रं

एक मात्र मंत्रके भली भांति सिद्ध होनेपर पञ्चाङ्ग उपासनाही विधि विहितहै। उस के प्रसाद से अन्यान्य समस्त मंत्र सिद्ध होते हैं। अन्यत्र भी कहा है कृतसाङ्गत्व सिद्धिके लिये सर्वदा ब्राह्मणोंको भोजन करावे। केवल ब्राह्मण गणोंकी आराधना करने से ही अंगहीन भी पूर्णाङ्ग होता है। तंत्रांतर में भी कहा है कि मन्त्र साधक जप पुरश्चरण के लिये संयत हो अग्नि में यथोक्त विधानानुसार द्वादशांश होम करै। अथवा जप का चतुर्थांश स्वाहान्त मूल का उच्चारण करके जल द्वारा होम का दशांश स्वाहान्त तर्पण करै। तर्पण के द्वादशांत नमोन्त मूलोच्चारण सहित कुलमुद्रा प्रदर्शन पूर्वक जल द्वारा अपनी मूर्द्धा को अभिषिक्त करै। फेत्कारिणी में कहा है, स्वाहान्त मंत्र से ही होम और बलिविधान करै। अनन्तर मंत्र से ही होम और बलिविधान करै। अनन्तर मंत्र के अन्त में नाम मिला कर 'तर्पण करताहूं' यह कहकर तर्पण करना चाहिये। इस का नाम पाशव कल्प है। एक वीरा कल्प में भी इसी प्रकार कहा है।

नवनीतं सशर्करम् । उपलास्वरडचूर्णं च नानाविधरसायनम् ॥ नारिकेलं कपित्थंच नागरङ्गं सुदर्शनम् । लिम्पाकं वीजपूरञ्च दाड़िमीफलमुत्तमम् ॥ नागरङ्गफलं चैव नानागन्ध विलेपनम् । चन्दनं मृगनाभिञ्च श्रीखण्डं नवपल्लवम् ॥ टङ्कनं लोध्रकं चैव जलजंवनजं तथा । नानाशैलसमुद्भुतं नानालङ्कारभूषितम् ॥ शून्यगेहे समानीय अर्घ्योदक विभूषितम् । अमृतीकरणं कृत्वा शक्तीश्चाभिमुखं नयेत् ॥

शक्तिर्यथा—तदुक्तं तत्रैव ।

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा । वेश्या नापितकन्या च रजकी योगिनी तथा ॥ विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गना ॥

अथ दीक्षिताष्टशक्तीः क्रमेण संस्थाप्य पूर्वावद्घटार्घ्यपात्रादिकं स्थापयित्वा अर्घ्योदकेन तामभ्युक्ष्य अमृतमन्त्रेण धेनु मुद्रया अमृतीकृत्य अष्टशक्तिरूपमभेदं ज्ञात्वा ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां संज्ञादिनामकरणं क्रमेण कृत्वा आसनादिकं गन्धपुष्पं दद्यात् ।

तदुक्तं तत्रैव—

अष्टकन्यारूपभेदं विलोक्यामर्षचेष्टितम् । ब्राह्मणाद्यष्ट शक्तीनां

विशेष यथा—कुलचूड़ामणि में कहा है कि पुरश्चरण के समय भी दीक्षिता पर स्त्री की पूजा करके वस्त्र और पुष्पादि सहित पायस सम्भव विविध भोज्य वस्तु प्रदान करै। आरम्भ कालमें स्वयं जियत पक्वान्न भोजन, नाना प्रकार पिष्टक विविध-रस, दूध, दधि, घृत, तक्र (मठा) नवनीति [माखन] शर्करा, उपलाखण्डचूर्ण, अनेक भांति रसायन, नारिकेल, [नारियल] कपित्थ, [कैथ] नागरंग [नारंगी] विविधगंध विलेपन, चन्दन, मृगनाभि [कस्तूरी] श्रीखंड, नवपल्लव टङ्कन, जलज कमल, वनज [कमल एवं विविध] शैलजलोध्र, व अनेक भांतिके अलंकार और अर्घ्योदक [अर्घ्य का जल] शून्यगृह में लाय अमृतीकरण पूर्वक समस्त शक्ति के सम्मुख करै। समस्त शक्ति यथा–उस में ही जैसा कहा है कुल भूषणा, ब्राह्मणी क्षत्रिया, वैश्या, नापितकन्या, रजकी, और योगिनी, यह आठ शक्ति हैं इन सबकाही भली

नामभिः कृतसंज्ञकाः ॥ आसनं च ततो दत्वा स्वागतं च पुनः पुनः । अर्घ्यं पाद्यं च पानीयं मधुपर्कं जलं तथा ॥ स्नापयेद्गन्धपुष्पाद्यैः केश-संस्कारमाचरेत् । धूपयित्वा ततः केशान् कौशेयं च निवेदयेत् ॥ ततः स्नानान्तरे पीठमास्तीर्य्य पादुकाद्वयम् । दत्वा तत्र समासीनां नाना-लङ्कारभूषणैः ॥ भूषयित्वाऽनुलेपं च गन्धं माल्यं निवेदयेत् ॥ ततस्तां तां शक्तिं पूजाप्रकरणोक्तक्रमेण ध्यात्वा तासां मूर्ध्नि ब्रह्मा-ण्यादिमातृः समावाह्य जीवन्यासादिकं गन्धपुष्पधूपदीपान् नाना-द्रव्यानुरंजनादिकं दत्वा तासां सव्यकर्णे क्रमेण स्तोत्रं पठेत् ।

तदुक्तं तत्रैव—

तां तां शक्तिं समावाह्य मूर्ध्नि तासां समानयेत् । भोज्यं मण्ड-पमध्ये तु स्वर्णपात्रे सुशोभने ॥ चर्व्यं चोष्यं लेह्यं पेयं भक्ष्यं भोज्यं निवेदयेत् ॥ अदीक्षिता यास्तास्तत्र ततो मायां निवेदयेत् । तासां सर्वेषु कर्णेषु ततस्तोत्रं समाचरेत् ॥ मातर्देवि ! नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे! कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ महेशि ! वरदे ! देवि ! परानन्दस्वरूपिणि ! । कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ कौमारि ! सर्वविद्येशे ! कुमारक्रीड़ने ! परे ! कृपयेत्यादि । विष्णु-रूपधरे ! देवि ! विनतासुतवाहिनी ! ॥ कृपयेत्यादि ? वाराहि ! वरदे ! देवि ! दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ! । कृपयेत्यादि । शक्ररूपधरे ! देवि ! शक्रादिसुरपूजिते ! ॥ कृपयेत्यादि । चामुण्डे ! मुण्डमालासृक्चर्चिते!

भांति वैदग्धीयुक्त और कुलांगना होना आवश्यक है । अनन्तर दीक्षिता अष्ट शक्तिको यथाक्रम स्थापन करके पूर्वकी समान घट और अर्घ्य पात्रादि भी प्रतिष्ठापन पूर्वक अर्घ्य के जलसे अभ्युक्षण और अमृत मंत्र सहित धेनुमुद्रा द्वारा अमृती करण के पीछे अष्टशक्ति के रूप से अवगत होकर ब्राह्मण्यादि अष्टशक्ति की संज्ञा और यथा-क्रम से नाम करण समाहित करके आसनादि गंध पुष्प दान करना चाहिये उसमें ही कहा है यथा अष्टकन्या का रूप भेद और अमर्ष चेष्टित विलोकन पूर्वक ब्राह्मणादि अष्टशक्तिके नाम द्वारा संज्ञासाधन वारंबार स्वागतवाद सहित आसन सह अर्घ्य पाद्य पानीय मधुपर्क और जल दान करै । अनन्तर गंध पुष्पादि द्वारा स्नान कराकर केश संस्करण समाहित और फिर केशपाश धूपितकरके कौशेय निवेदन करना चाहिये । तद-|नन्तर स्थानांतर में पीठ आस्तीर्ण और दो पादुका दान करके उक्त पीठ में विराजमान हो अनेक अलंकार और भूषण द्वारा उसको भूषित कर माल्य गंध और अनुलेपन

विघ्ननाशिनि ! ! । कृपयेत्यादि । महालक्ष्मिर्महामाये ! क्षोभसन्तापनाशिनि ! ॥ कृपयेत्यादि । पितृमातृमये देवि पितृमातृवहिष्कृते ॥ एके ! बहुविधे ! देवि ! दिव्यरूपे ! नमोऽस्तुते ॥ एतत् स्तोत्रं पठेद्यस्तु कर्मारम्भेषु संयतः । बहुविघ्नान् समालोक्य तस्य विघ्नो न जायते ॥ कुलीनस्य द्वारदेवाः कथितास्तव पुत्रक ! । दीक्षाकाले नित्यपूजासमये नार्चयेद्यदि ॥ तस्य पूजाफलं वत्स ! नीयते यक्षराक्षसः । आचम्य मुखवासादिताम्बूलञ्च निवेदयेत् ॥ ततो दद्यात् पुनर्माल्यं गन्धचन्दनपङ्कितम् । विसृज्य प्रदक्षिणीकृत्य वरं प्रार्थ्य सुखी भवेत् ॥ अन्या यदि न गच्छन्ति निजकन्या निजानुजा । अग्रजा मातुलानी वा माता वा तत्सपत्निका ॥ वयसो जातितो वापि हीना वा परमा कला । पूज्या कुलवरैः सर्वैर्निजाहङ्कारवर्जितैः॥ सर्वाभावे एकतरा पूजनीया प्रयत्नतः । संस्कृतासंस्कृता वापि सपतिर्निष्पतिश्च या ॥ पूर्वाभावे परा पूज्या मदंशयोषितो यतः । एकश्चेत् कुलशास्त्रज्ञः पूजार्हस्तत्र भैरवः ॥ सर्वे सुरादयः पूज्याः सत्यं ब्रह्माशिवादय । एका चेत् युवती तत्र पूजिता चावलोकिता ॥ सर्वा एव परादेव्यः पूजिताः कुलभैरवः ! । आदावन्ते च मध्ये च लक्ष-

निवेदन करै । अनंतर पूजा प्रकरणोक्त क्रमानुसार उन शक्तियों का ध्यान और उनके मस्तक में ब्राह्मणी इत्यादि मातृका गणों का आवाहन करके जीवन्यासादि विधान और गंध, पुष्प, धूप, दीप, विविध अनुरंजनादि दान करके उनके सव्यकर्ण में क्रमानुसार स्तोत्र पाठ करै । उसमें ही कहा है, यथा—उन उन शक्ति का भलीभांति आवाहन करके उनको मस्तक में आनयन और मंडप में सुशोभित सुवर्णपात्रमें चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, भक्ष्य और भोज्य निवेदन करै । अनंतर उन सब के कर्ण में इसप्रकार स्तव पाठ करै कि हे मातः ! हे देवि ! हे ब्रह्मरूपिणी ! हे अनघे ! कृपापूर्वक मेरे विघ्न हरण करके मुझको मंत्रसिद्धि वितरण करो । हे महेशि ! हे वरदे ! हे देवि ! हे परमानंदरूपिणी ! कृपापूर्वक इत्यादि । हे कामारि ! हे सर्वविद्या की ईश्वरी ! हे कुमार क्रीडने ! सर्व श्रेष्ठ स्वरूपिणी ! कृपापूर्वक इत्यादि । हे विष्णुरूप धरे ! हे देवि ! हे विनतासुत वाहिनी ! कृपा इत्यादि । हे वाराही ! हे वरदे ! हे देवि ! हे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ! कृपा इत्यादि । हे शत्रु नाशरे ! हे देवि ! हे शक्रादिसुर पूजिते ! कृपाइत्यादि । हे चामुण्डे ! हे मुण्डमाला से विगलित शोणित चर्चिते ! हे विघ्ननाशिनी ! कृपा इत्यादि । हे महालक्ष्मी ! हे महामाये ! हे क्षोभ सन्ताप विनाशिनी ! कृपा इत्यादि । हे पितृमातृमये ! हे देवि ! हे पितृमातृवहिष्कृते ! हे एके ! हे बहु-

पूर्त्तौ विशेषतः ॥ न पूजयति चेत् कान्तां तदा विघ्नैर्विलुप्यते । पूर्वार्जितफलं नास्ति का कथा परजन्मनि ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यदीच्छेदात्मना हितम् । ममापि क्रोधसन्तापशमनं विघ्ननाशनम् ॥ यत्नतः पूजनीयाः स्युः कुलाकुलजनाः सुत ! ।

अथैतेन क्रमेण लक्षजपादौ मध्ये अन्ते च शक्तीः पूजयेत् । ततो रात्रौ प्रथमप्रहरगते पञ्चमेनैव देवीं संपूज्य गुरुं शिरसि हृदि देवींच ध्यात्वा शिवोऽहमिति भावयन् जपं कुर्य्यात् तृतीयप्रहरं यावत् ।

तदुक्तं मुण्डमालायाम्

गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधिं । निशायाञ्च प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्न हि ॥

स्वतन्त्रेऽपि–

रात्रौ मांसासवैर्देवीं पूजयित्वा विधानतः । ततो नग्नां स्त्रियं तस्यां रमन् छेदयुतोऽपि वा ॥ जपेल्लक्षं ततो देवि ! होमयेत् ज्वलितानले । योनिकुण्डेस्थिते सर्पिर्मांसमत्स्ययुतं भृशम् ॥ दशांशं तर्पये-

विधे ! हे देवि ! हे दिव्यरूप धारणी ! तुम को नमस्कार है । जो व्यक्ति संयत होकर कर्मारम्भ के समय इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसको कभी किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता ॥

हे वत्स ! तुम्हारे निकट समस्त कुलीन द्वार देवता का। वर्णन किया । दीक्षा काल में और नित्य पूजा के समय यदि उन की पूजा नैं करीजाय, हे वत्स ! उस की समस्त पूजा यक्ष और राक्षसगणों से नीयमान अर्थात् ग्रहण कराजाता है । यदि वह भोजन के समय व्रीड़ा परायण [लज्जायुक्त] हों तो उस गृह के बाहर रहकर जबतक स्तोत्र पाठ करैं, तबतक उन की तृप्ति होती है । आचमन करके मुख वासादि ताम्बूल निवेदन करै। अनन्तर पुनर्वार गन्ध चन्दन पङ्कित माल्यदान और प्रदक्षिणा करके वर प्रार्थना पूर्वक विदा देकर सुखी होवे । और यदि गमन न करै, तो अपनी कन्या अपनी अनुजा [अपनी बहन] और अग्रजा [बड़ी बहन] मातुली [मईं] भ्राता वा अपनी सपत्नी और वयस वा जाति में हीन होने से भी अन्यान्य परमा-कन्या, इन की कुलवर व्यक्ति अहंकार छोड़कर पूजा करै। सबके अभाव में एक की ही यत्नपूर्वक पूजाकरै । इसविषयमें संस्कृता व असंस्कृता सधवा विधवाका विचार न करै । पूर्वा के अभाव में परा की पूजा करै । क्योंकि स्त्रीमात्र ही मेरा अंश है । हे भैरव कुलशास्त्रज्ञ यदि एक हो, तो पूजा के योग्य पात्र है, इस में सन्देह नहीं, यह सत्य है

न्मद्यमांसमिश्रैः सुसाधकः तर्पणस्य दशांशन्तु अभिषिच्य जगन्मयीम् ॥ दशांशं भोजयेत् साधु साधकं कालिकाप्रियम् । मद्यं मांसञ्च मत्स्यंच चर्वणंच प्रदापयेत् ॥ ततस्तु तोषयेद्भक्त्या गुरुं स्वर्णादिभिः प्रिये ! एतत् कल्पद्वयाद्देवि ! मन्त्रैः सिध्यति निश्चितम् ॥ विना पीत्वा सुरां भुक्त्वा मांसं गत्वा रजस्वलाम् । यो जपेद्दक्षिणां देवीं तस्य दुःखं पदे पदे ॥

काजीतन्त्रेऽपि—

तर्पणस्य विधिं वक्ष्ये येन कार्य्याणि साधयेत् । तर्पयेञ्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैस्तथा ॥ मज्जाभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन कचेन च । आकर्शितायाः कन्यायाः कुलप्रचालनेन च ॥ मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि । मूषमार्जाररक्तेन तर्पयेत् परदेवताम् ॥ एवं तर्पणमात्रेण साक्षात् सिद्धीश्वरो भवेत् । कविता जायते तस्य द्राक्षारसपरम्परा बृहस्पतिसमो भूत्वा दिविवद्भुवि मोदते । न तस्य पापपुण्यानि जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥

ब्रह्मा शिवादि और देवतादि सब की पूजा करै । किन्तु एकमात्र युवती भी उपस्थित क्षेत्र में पूजिता और अवलोकिता होने से समस्त परमा देवी की पूजा करी जाती है । आदि, अन्त, मध्य और विशेषतः लक्ष पूरण समय में यदि कान्ता की पूजा न करी जाय, तो विघ्न समूह के आक्रमण में विलुप्त होना पड़ता है और पूर्वार्जित फल भी विनष्ट होता है पूर्व जन्मकी बात और क्या कहूं अतएव यदि अपने हितकी कामना हो और मेरे क्रोध सन्ताप की शान्ति और विघ्ननाशकी अभिलाषा होतो सर्वप्रयत्न सहित कुलकुलसमस्तजनकी पूजाकरै । इसके अनन्तर उल्लिखित क्रमानुसार लक्ष जपके आदि मध्य और अन्तमें समस्त शक्ति की पूजाकरनी चाहिये । अनन्तर रात्रिका प्रथम प्रहर बीतने पर पंचमकार द्वारा देवीकी पूजा करके रहस्यमाल की सहायतासे मस्तक में गुरू और हृदय में देवी का ध्यान करता हुआ आत्मा को शिवस्वरूप जानकर जप करै । तीसरे पहर पर्य्यन्त इसी प्रकार जप करना चाहिये । मुण्डमाला में कहा है—रात्रि का प्रथम याम बीतने पर तृतीय याम पर्यंत जप करै । रात्रि के शेष में जप न करै । स्वतंत्र में भी कहा है रात्रि में देवी की मांस और आसव द्वारा यथाविधानसे पूजा करके फिर स्वयं नग्न और नग्न स्त्री के संग सङ्गत हो विलन देह [स्वेदयुक्त देह] से लक्ष जप और योनि कुंडस्थित प्रज्वलित अग्निमें घृत मांस और मत्स्ययुक्त होमकरै । फिर होमका दशांश मद्य और मांसकी सहायतासे तर्पणकरना चाहिये। तर्पणके दशांशमें जगन्मयीका अभिषेक करके कालिकाके प्रियपात्र साधकको उसका दशांश भोजनकरावै । एवं मद्यमांस

उत्तरतन्त्रेऽपि—

योनिरूपं हि कुण्डं वै कृत्वा वितस्तिमात्रतः। हस्तविस्तारितस्तावत् कृत्वा चापि तथाप्यधः ॥ तत्र कार्य्या हि मन्त्रेण अग्निस्थापनिका क्रिया। महाकालाय देवाय दद्याच्च प्रथमाहुतिम् ॥ एवमाद्येन मांसेन भक्तेन रुधिरेण च कृष्णपुष्पेण साज्येन सरक्तेन विशेषतः ॥ आमिषादिभिरप्येवं श्मशाने जुहुयात् सुधीः ॥

कुलसम्भवेऽपि—

रात्रौ नग्नो मुक्तकेशा मैथुनेनापि तत्त्वतः। प्रकर्त्तव्यं प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये ॥ द्विजानां चैव सवर्षां दिवा विधिरिहोच्यते ॥ शूद्राणाञ्च तथा प्रोक्तं रात्राविष्टं महाफलम्। यद्यत् कामयते कामं तत्तदाप्नोति नित्यशः ॥

कालिकाश्रुतौ च—

अथ हैनां कालिकामनुजापी यः सदा। श्रद्धाज्ञानवैराग्ययुक्तः शाम्भवदीक्षासु रतः।

मत्स्य और चर्वण प्रदान करके स्वर्णादि प्रदान पूर्वक भक्तिसहित गुरुके संतोष साधनमें प्रवृत्त होना चाहिये। हे देवि ! इस प्रकार दोनों कलाका अनुष्ठान करने से निःसंदेह मंत्रसिद्धि होती है सुरापान मांस भोजन और रजस्वला स्त्री से बिना गमन किये दक्षिण कालिका जप करने से पद पद में दुःख ग्रस्त होता है। कालीतंत्र में भी कहा है, जिसके द्वारा कार्य मात्र की सिद्धि होती है वही तर्पण विधि कहता हूं। रक्तधारा मिश्रित जल, स्वकीय कच (अपने बाल) और मज्जा, आकर्षित कन्याकाकुल प्रक्षालन भेड़ और भैंसे का रक्त नर शोणित मुषिक और मार्जार की अशुक (चरबी) इन सब के द्वारा पर देवता कालिकाका तर्पण करे। तर्पण करतेही साक्षात् सिद्धीश्वर होजाता है। मुख से द्राक्षारस परम्परा की समान कविता लहरी निकलती है, बृहस्पति की समान होकर स्वर्ग की समान पृथिवी में भी परमसुख पूर्वक विहार किया जाता है, पाप पुण्य कुछ नहीं रहता और निसंदेह जीवन मुक्ती लाभ होती है।

उत्तर तंत्र में भी कहा है अधोदिक में एक हाथ विस्तारित वितस्ति प्रमाण योनिरूप कुण्ड निर्माण करके उसमें मंत्रानुसार अग्निस्थापन क्रिया करै और भगवान् महाकाल को प्रथम आहुति प्रदान करै। इस प्रकार उत्कृष्ट मांस रुचिरभक्त, कृष्ण पुष्प विशेषतः घृत सहित रक्त और आमिषादि से श्मशान में होम करै। कुलो-

शाक्तेषु वा दिवा ब्रह्मचारी रात्रौ नग्नो मैथुनासक्तमानसः ॥

जपपूजादिनियमो योषित्सु प्रियकर सुभगोदकेन तर्पणम् । तेनैव पूजनं सर्वदा कालीरूपमात्मानं विभावयेत् । स शाक्तो भवति । सर्वहत्यां तरते । अथ पञ्चमसर्वयोषिदाकारेण सर्वमाप्नोति विद्यां पशुं धनं धान्यं सर्वशक्तिञ्च कवित्वञ्च नान्यः परमः पन्था विद्यतेऽतो मोक्षाय ज्ञानाय धर्माय तत्सर्वं भूतं भव्यं यत्किंचिद्दृश्यादृश्यमानं स्थावरजङ्गमं तत्सर्वम् । कालिकातन्त्रे तु तत् प्रोक्तं वैदिकश्रुति मनुजापी सपाप्मानं तरति । सतु अगम्यागमनं तरति । स भ्रूणहत्यां सर्वपापं तरति । सर्वसुखमाप्नोति सर्वं जानाति सर्वन्यासी तरति भवति स विविक्तो भवति सर्ववेदाध्यायी भवति स सर्वजापी भवति स सर्वशास्त्रार्थवेत्ता भवति सर्वयज्ञाधिकारी भवति । अरयो मित्रभूता भवन्ति । इत्याह भगवान् शिवः निर्विकल्पेन मनसा यः सर्वं करोति अथैवं पुरश्चरणशीलः प्रयोगार्हो भवति । अथादौ शक्तिशुद्धिर्विलिख्यते अदीक्षिताङ्गनासङ्गात् निन्दाश्रुतेः ।

द्भव में भी कहा है, रात्रिकाल के समय नग्नवेश और खुले केश मिथुन धर्म का अनुसरण पूर्वक यथा तत्व प्रयत्न सहित सर्व कामार्थ सिद्धि के लिये कर्त्तव्यानुष्ठान में प्रवृत्त होना चाहिये । समस्त द्विजाति और शूद्रगणों को दिवाविधि इस स्थल में वर्णित होती है तो रात्रिमें ही अभीष्ट महाफल होता है । जो जो कामना करीजाती है नित्य वह सब लाभ होती है। कालिका श्रुति में भी कहा है। जो व्यक्ति सर्वदा शुद्धात्मा, ज्ञान और वैराग्यनुयुक्त और शाम्भव, दीक्षा परायण होकर देवी कालिका का जप करता है, एवं दिन में ब्रह्मचारी, और रात्रि में मैथुनासक्त चित्त और नग्न होकर जप पूजादि नियमनुष्ठान में प्रवृत होता है और स्त्रीगणों का प्रियकर होकर सुभग जल से तर्पण पूजन और सर्वदा आत्मा को कालीरूप में चिन्तन करता है, वह सर्व योषिदासक्त और समस्त हत्या से उत्तीर्ण होता है । पञ्च मकार द्वारा विद्या पशु, धन, धान्य, सब का वशीकरण, तथा कवित्व इत्यादि समस्त विषय प्राप्त होजाता है । इसकी अपेक्षा अन्य श्रेष्ठ पंथ नहीं है । इस के द्वारा मोक्षलाभ, ज्ञानलाभ, और धर्मलाभ होता है । भूत, भविष्यत् दृश्य स्थावर, जंगम जो कुछ है, वह समस्त ही इस का स्वरूप है । कालिका तंत्र में भी कहा है, यथा—जो व्यक्ति मंत्र जप करता है, वह श्रुत और स्मृत सब से अवगत होता है, समस्त पापों से उत्तीर्ण होता है, अगम्याग-

तदुक्तं भावचूडामणौ—

अदीक्षिताङ्गनासङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते । तत्कथाश्रवणे श्रद्धा तत्तल्पागमनं यदि । स कुलीनः कथं देवीं पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥

श्रीक्रमेऽपि—

संशोधनमनाचार्य स्त्रीषु मर्त्त्यासु साधकः । कृतेऽपि सिद्धिहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति चण्डिका ॥

तस्मात् शक्तिशुद्धिः कार्या । तदुक्तं कौलतन्त्रे—

अभिषेकाद् भावशुद्धिर्मन्त्रस्योच्चारणात् शुचिः रतिकाले महेशानि दीक्षादानेन कन्यका ॥ सुरया रेतसा वापि जलेन मनुनाथवा ॥ सम्भोगेऽभिषिंचेन्नारीं रण्डां वा मन्त्रवर्जिताम् । आदौवालां समुच्चार्य त्रिपुरांच समुच्चरेत् ॥ नमः शब्दं समुच्चार्य इमां कान्तां ततो वदेत् । पवित्री कुरुशब्दान्ते मम शक्तिं कुरुद्वयं वन्हिजायां समुच्चार्य शुद्धिमन्त्र सुरेश्वरि ! ॥ अनेन मनुना देवि ! अभिशिक्ताः स्त्रियः सदा । रममाणो भ्रमेन्नित्यं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ इह लोके परं भोगं भुक्त्वा सिद्धि मवाप्नुयात् ॥

मन अतिक्रम करता है, भ्रूणहत्या (गर्भ गिराना) का पातक दूर होता है । इस प्रकार वह संपूर्ण पापों से छूट जाता है और संपूर्ण सुख लाभ करता है, सर्वज्ञ होता है, सर्व संन्यासी और सतत्त्वशास्त्र के अर्थ से अवगत होता है, इसके अतिरिक्त सर्व वेदाध्यायी, सर्वजापी, सर्वयज्ञों का अधिकारी, सब पापों से मुक्त, और हम दोनों का मित्र होता है । भगवान् शिवने इस प्रकार कहा है कि जो व्यक्ति निर्विकल्प चित्त से समस्त करसक्ता है और पुरश्चरण करता है, वही प्रयोग योग्य होता है ।

अब प्रथम शक्तिशुद्धि लिखी जाती है क्योंकि अदीक्षिता अंगना (स्त्री) के संसर्ग से मनुष्य को निन्दनीय होना पड़ता है, इस प्रकार श्रुति प्रसिद्ध है । भावचूड़ामणि में कहा है । यथा—अदीक्षिता स्त्री का संसर्ग करने से सिद्धि की हानि होती है । ऐसी स्त्री की बात सुनने में श्रद्धा और उसकी शय्या में गमन करने से वह व्यक्ति किसप्रकार परमेश्वरी की पूजा करसक्ता है ? श्रीक्रम में भी कहा है—साधक स्त्री पुरुषका संशोधन न करके प्रवृत्त होने से सिद्धिका व्याघात (विघ्न) होता है और देवी चण्डिका भी

अन्यत्रापि—

आनीय कन्यकां दिव्यां घृणालज्जा विवर्जिताम्। स्वकान्तां परकान्तां वा दीक्षितां यौवनान्विताम् ॥ पूजकः पूजयेन्नित्यं वामपार्श्वे निवेश्य च। स्वीयकल्पोक्त विधिना न्यासजालं प्रविन्यसेत् ॥ ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् देवीं त्रिभुवनेश्वरीम्।

शक्तौ विशेषो यथा कुमारीतन्त्रे—

नटी कपालिनी वेश्या रजकी नापिताङ्गना। ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका॥ मालाकारस्य कन्यापि नवकन्याः प्रकीर्त्तिताः एतासु कांचिदानीय ततस्तद्योनिमण्डले ॥ पूजयित्वा महादेवीं ततो मैथुनमारभेत्। धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ॥ सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तौ जुहोम्यहम्। स्वाहान्तोऽयं महामन्त्र आरम्भे परिकीर्त्तितः ॥ ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् देवीं त्रिभुवनेश्वरीम्। प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्य महीस्रुचम् ॥ धर्माधर्म कला-

---

क्रोधित होती हैं। इसीलिये शक्ति शुद्धि करनी चाहिये। काल तन्त्र में कहा है, यथा-अभिषेक में प्रवृत्त होने से भाव शुद्धि होती है, मंत्र के उच्चारण में भी इसी प्रकार होती है। संभोग काल में सुरा, शुक्र, जल अथवा मन्त्र द्वारा रंडा वा मन्त्र वर्जिता स्त्रीको अभिषिक्त करै। प्रथम वाला पद प्रयोग करके फिर 'त्रिपुरायै' इस प्रकार शब्द उच्चारण पूर्वक नमः शब्द योजनान्तर 'इमां कान्तां' इस प्रकार कहै। फिर पवित्री कुरु शब्द प्रयोग करके 'ममशक्तिकुरु' इस प्रकार पद योजना करने के पीछे स्वाहा शब्द उच्चारण करै। यही शुद्धि मन्त्र है। हे देवि! इस मंत्र द्वारा समस्त स्त्रियोंको अभिषिक्त करके सर्वदा विहार प्रसंग में भ्रमण करने से सब सिद्धि लाभ और ऐहिक समस्तभोग संग्रह करके परलोक में भी परमसिद्धि संकलन कर सका है। अन्यत्र भी कहा है, कांता हो अथवा परकांता हो, जिसको घृणा नहीं, और जिसकी दीक्षा हुई है, इस प्रकार नवयौवन शालिनी दिव्य स्वरूपिणी कन्या को लाकर वाम पार्श्व में स्थापन पूर्वक पूजक नित्य पूजा करै। और स्वकीय कल्पोक्त विधान से न्यास जाल प्रविन्यास में प्रवृत्त होवे। अनन्तर उस स्त्री के सहित संगत होकर त्रिभुवनेश्वरी देवी का जप करै। तिन में शक्ति का विशेष है। यथा-कुमारी तंत्र में कहा है, नटी, कपालिनी, वेश्या, धोबन, नाई की कन्या, ब्राह्मणी, शूद्र कन्या, गोपाल कन्या माली की कन्या, यह नव कन्या कही गई हैं। इन में किसी कन्या को लाकर उसके कुलागारमें महादेवी की पूजा करके फिर मिथुन धर्म में प्रवृत्त होना चाहिये। धर्म

स्नेह पूर्णमग्नौ जुहोम्यहम्। स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः शुक्रत्यागे प्रकीर्त्तितः॥

अथास्य प्रयोगः—निशायां शक्तिं पूर्वोक्तां स्ववामभागे समानीय तस्या गात्रे स्वकल्पोक्तन्यासान विधाय, अदीक्षिता चेत्तदा पूर्वोक्ताभिषेकमन्त्रेण तीर्थादिना अभिषेकं कृत्वा तस्याः कर्णे अभेद-बुद्धया मन्त्रमुच्चारयेदिति शक्तिशुद्धिः। ततो मकारपंचकेन देवीं संपूज्य मूलान्ते धर्माधर्मेत्यादि पठन् मातृपीठे पितृमुखं दत्वा जपं कुर्य्यात्। ततो मूलान्ते प्रकाशाकाशेत्यादि पठन् तत्वमुत्सृजेत्! अथवा मातृपीठे पितृमुखं दत्वा जपं कुर्य्यात् सावरणां देवीं ध्यात्वा शिवोऽहमिति भावयन् उभयोः सङ्गमं कृत्वा पूर्ववज्जपादिकं कुर्य्यादित्यपरः प्रकारः।

इतिमहामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित श्यामारहस्ये पञ्चमः परिच्छेदः।

और अधर्मरूप हवि द्वारा प्रज्वलित आत्मारूप अग्नि में मनरूपी श्रुच द्वारा सुषुम्ना-वर्त्म योग में मैं होम करता हूं। यही कार्यारंभ का महामन्त्र है। अनन्तर स्त्री से संगत होकर त्रिभुवनेश्वरी देवी का जप करै प्रकाश और अप्रकाशरूप दोनों हाथ की सहायता से उन्मनी रूप श्रुचपात्र अवलम्बन करके धर्म और अधर्म कलारूप स्नेहपूर्ण अग्नि में होम करता हूं। यही शुक्र त्याग का महामन्त्र है।

अब इस का प्रयोग कहा जाता है। रात्रि काल के समय पूर्वोक्त शक्तिको अपने वामभाग में आनयन और तिस के गात्र में स्वकल्पोक्त न्यास विधान और अदीक्षिता होने से पूर्वोक्त अभिषेक मन्त्र से तीर्थादि द्वारा अभिषेक सम्पादन पूर्वक उसके कान में अभेद बुद्धि से मन्त्र उच्चारण करै। इसका ही नाम शक्तिशुद्धि है। अनन्तर पंच मकार द्वारा देवी को पूजा करके मूलांत में धर्म और अधर्मरूपी हवि द्वारा, इत्यादि पाठ और मातृपीठ में पितृमुख दान पूर्वक जप करना चाहये। अनन्तर मूलात में प्रकाश और अप्रकाश रूप दोनों हाथों के द्वारा, इत्यादि पाठ करके तत्व उत्सर्जन अथवा मातृपीठ में पितृमुख दान पूर्वक जप करै। फिर आवरण सहित देवी का ध्यान और अपनेप को शिव विचार, दोनों का संगम साधन कर पूर्वक की समान जपादि करना चाहिये।

इतिश्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्द गिरि विरचित श्यामा रहस्य भाषा टीका सहित पञ्चम परिच्छेद॥ ५॥

अथ षष्ठ परिच्छेदः

अथ मन्त्रभेदाः निरूप्यन्ते। तदुक्तं सिद्धेश्वरीतन्त्रे-

अथ वक्ष्यामि ते देवीं कालिकां भवदुःखहाम्। यां ज्ञात्वा साधको भोगान् भुक्त्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥ मूकोऽपि कवितामेति धनेन च धनाधिपः। बलेन पवनः साक्षात् रूपेण च मनोहरः॥ मन्त्रोद्धारं शृणुष्वेमं गुह्याद् गुह्यतरं प्रिये!। खान्तादिवन्हिमारूढं वामनेत्रेण संयुतम्॥ चन्द्रार्द्धविन्दुना मूर्ध्नि भूषितं परमेश्वरि!। खान्तादि वामनेत्रस्थं वन्हिचन्द्रसमन्वितम्॥ बीजरत्नमिदं प्रोक्तं साक्षात् कल्पद्रुमं प्रिये!। मादनं चन्द्रबीजस्थं भूतस्वरसमन्वितम्॥ चन्द्रार्द्धविन्दुभूषाढ्यं सम्पूर्णं सिद्धिदं मनुम्। अस्यैवाशेषमाहात्म्यं वक्तुं नाहं महेश्वरि!॥ तथापि कथ्यते देवि! संक्षेपादस्य तत्फलम्। मोक्षार्थी लभते मोक्षं कैवल्यं परमं पदम्॥ देवीरूपं जगत् पश्येत् द्वैधं तत्र विवर्जयेत्॥

अथ मन्त्रान्तरं तत्रैव तदुक्तम्-

मन्त्रान्तरं प्रवक्ष्यामि शृणु पार्वति! सादरम्। यस्याराधनमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥ अप्रकाश्यं परं गुह्यं न देयं यस्य

अब देवी कालिका के समस्त मन्त्र पृथक् पृथक् कहते हैं। सिद्धेश्वर तंत्र में कहा है, यथा-अब तुम से देवी कालिका का वृत्तांत कहते हैं। वह संसार का दुख दूर करती हैं, उन के जानने से साधक समस्त भोगों को भोग कर मुक्तिलाभ करता है, मूक (गूंगा) भी कवि होता है, और धन में कुवेर, बलमें पवन, और रूप में साक्षात् सबसे मनोहर होता है। हे प्रिये! जो गुह्य से भी गुह्यतर है, वही मन्त्रोद्धार कहता हूं, श्रवण करो। वर्गादि अर्थात् क, वन्हि अर्थात् र, बामनेत्र अर्थात् दीर्घ ईकार, और चन्द्रार्द्ध विंदु अर्थात् ँ चंद्रविंदु। इनके मिलने से (क+र+ई×ँ=क्रीं) यह पद बना। वही कालिका देवी का मन्त्र है। इस मन्त्र का महात्म्य वर्णन करने में मेरी सामर्थ नहीं है, किंतु तो भी संक्षेप से इसके फल का वर्णन करता हूं। मोक्षार्थी मोक्ष कैवल्य और परम पदको प्राप्त होता है। इस जगत् को देवी रूप में दर्शन करे। इस में किसी प्रकार द्वेष न करे। अनन्तर इस सिद्धेश्वर तंत्र में ही मन्त्रांतर कहा है, यथा-हे पार्वती! मन्त्रान्तर वर्णन करता हूं, आदर पूर्वक श्रवण करो। इस की आराधना मात्रसे ही सब प्रकार की सिद्धि अधिकार में होती है। यह परम गुह्य है, जिस किसी को इसका प्रदान वा प्रकाश नहीं करना चाहिये। मैंने कहीं भी इसका

कस्यचित् । न कुत्रापि समाख्यातं तव स्नेहादिहोच्यते ॥ पूर्वोक्त-मन्त्रराजस्य शेषवर्णद्वयं प्रिये ! । संहारसृष्टिमार्गेण बन्धुभ्योऽपि न दर्शयेत् ॥ मन्त्रस्य स्मरणादेव सकृदप्यस्य सुन्दरि ! । कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ न कुत्रापि समाख्यातं तवस्नेहादिहोच्यते । पूर्वोक्तमन्त्रराजस्य शेषवर्णद्वयं प्रिये ! ॥ संहारसृष्टिमामात्रेण मूकः काव्यं करोति च । तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो मूकसंकुलाः ॥ द्वन्द्वभावं परित्यज्य किमन्यद्बहुजल्पितैः । यद्यत् प्रार्थयते चित्ते तत्तदाप्नोति नित्यशः ॥ ऋषिः स्याद्भैरवो देवोऽनुष्टुप्छन्दः प्रकीर्त्तितम् । देवता कालिका प्रोक्ता चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि शृणु पार्वति ! सादरम् ॥ नीलेन्दीवरसन्निभां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीम् । भास्वन्मौलिकिरीटभोगिलसनां वीणां भुजैर्बिभ्रतीम् ॥ खड्गं मुण्डवराभयां स्मितमुखीं मोहान्धकारापहाम् । ध्यायेत् सम्यगनाकुलेन मनसा प्रेतासनां कालिकाम् ॥ एवं ध्यानपरो देवि ! सर्वान् कामानवाप्नुयात् ! उक्तपीठे महेशानि ! ततः पूजां समाचरेत् ॥ रात्रौ द्वितीययामे च अशक्तौ दिवसेपि च । हेमादिपात्रमादायकुर्यान्मन्त्रं विचक्षणः ॥ अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं चतुर्द्वारसुशोभितम् । तन्मध्ये तु त्रिकोणस्यात्तन्मध्ये विलिखेन्मनुम् ॥

वर्णन नहीं किया है । केवल तुम्हारे स्नेहवशतः कहता हूं । हे प्रिये ! पूर्वोक्त मन्त्रराज के शेष दो वर्ण संहार सृष्टि मार्ग के क्रम से बन्धुगणों को भी न दिखावे । हे सुन्दरी ! इस मन्त्र के सकृत् स्मरणमात्र से ही तत्काल कोटि जन्मार्जित (करोड़ जन्म के प्रसंचित) पातक नष्ट होते हैं यह मन्त्र मूक व्यक्ति को भी कवि करता है, उसके केवल देखते ही वादीगण भी मूक और नितांत आकुल भावयुक्त होते हैं और तत्काल द्वन्द्वभाव परित्याग करते हैं अधिक और क्या कहूं ? जो जो न में इच्छा करीजाय, यह नित्य प्राप्त होती है । इस मन्त्र के ऋषिभैरव, छंद अनुष्टुप्, देवता कालिका, बर्ग वर्गफल प्रदान करते हैं । हे पार्वती आद पूर्वक श्रवण करो इसका ध्यान कहता हूं । उसकी आभा नीलकमलकीसमान, तीननयन, मोटेऔर ऊंचे पयोधर, भुज परम्परा में वीणा, खड्ग मुण्ड वर और अभय शोभायमान, मुखमण्डल सस्मित, उसके देखने वा विचारने से मोहान्धकार दूर होजाता है । प्रेत उस का आसन है । भली भांति अनाकुल चित्त से उस कालिका का ध्यान करने से संपूर्ण कामना पूर्ण होती है । हे महेश्वरि ! दूसरे याम में पूजा करनी चाहिये। असमर्थ होने से दिन में ही करै । विलक्षण व्यक्ति होमादिके पात्र ग्रहण करके मंत्र

अथ दक्षिणावत् प्रातःकृत्यादि व्यापकन्यासं समाचरेत् । तत्र विशेषो यथा तत्रैवोक्तम्–

आचान्तो मूलमन्त्रेण शिखां बद्ध्वा तु मन्त्रतः । स्वाहान्तं मूलमुच्चार्य सर्ववश्यकरीति च ॥ मनुमानेन देवेशि ! शिखाबन्धनमाचरेत् । तत उक्त्वा मूलमन्त्रं सर्वशुद्धिं समानय ॥ अनेन मनुना देवि ! स्थानशुद्धिं समाचरेत् । षड् दीर्घयुक्तेनाद्येन षडङ्गानि न्यसेद् बुधः ॥

ततो यन्त्रं निधाय दक्षिणावत् पीठपूजां कुर्यात् किन्तु पीठाशक्तौ विशेषः ।

तदुक्तं तत्रैव–

ब्रह्माणीं मङ्गलां दुर्गां जयन्तीं विजयां जयाम् ॥ वाराहीं भुवनेशीञ्च प्रागादिषु च दिक्षु च । संपूज्य गन्धपुष्पैस्तु देवीं ध्यायेत् समाहितः ॥ गन्धाद्यैरर्चयेन्मन्त्री आत्मानं देवतामयम् । श्वासमार्गक्रमेणैव यन्त्रमध्ये तु साधकः ॥ समानीय ततो देवीं तत्रावाह्य च मुद्रया । प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा तु पाद्यादिभिस्तथार्चयेत् ॥ अनुलेपं प्रयत्नेन दद्याद्गन्धादिभिर्युतम् । नानाविधञ्च नैवेद्यं पायसं शर्करायुतम् ॥

करण में प्रवृत्त होवे । चतुर्द्वार सुशोभित अष्टपद्म लिखै । तिन में एक त्रिकोण अंकित करके मंत्र विन्यास करै । अनन्तर दक्षिणावत् प्रातः कृत्यादि व्यापक न्यास करै, तिनमें विशेष यही है । उस में ही कहा है । यथा–मूलमंत्रसे आचमन और शिखाबंधन पूर्वक स्वाहांत मूल उच्चारण करके "सर्ववश्य करी" इस प्रकार पद प्रयोग करै । हे देवि ! उल्लिखित मंत्रसे शिखा बांधनी चाहिये । फिर मूलमंत्र उच्चारणकरके "सर्वशुद्धि समानय" यह पद प्रयोग करै । हेदेवि ! इस मन्त्रसे स्थान शुद्धि करनी चाहिये । बुद्धिमान साधक षड्दीर्घयुक्त आद्यबीज द्वारा षडङ्गविन्यस्त करें । अनन्तर यंत्र निहित करके दक्षिणावत् पीठ पूजा करै । किन्तु पीठ पूजा में असमर्थ होने से जो विशेष विधि है, वह उसमही कही है । यथा—ब्राह्मणी, मंगला, दुर्गा, जयन्ती, विजया, जया, वाराही भुवनेशी, इनकी प्रागादि समस्त दिक् में गंध पुष्प द्वारा पूजा करके समाहितहो देवी का ध्यान करै । मंत्रसाधक तिस काल देवतामय आत्मा की भी गन्ध दि द्वारा अर्चना करै । साधक श्वासमार्ग के क्रमानुसारही यंत्र में देवीको आनयन और मुद्राकी सहायता से आवाहन करके प्राण प्रतिष्ठा पूर्वक पाद्यादि द्वारा अर्चना और यत्न सहित गंधादि युक्त अनुलेपन, नानाविध नैवेद्य, शर्करायुक खीर, और बलि, यह सब विधानानुसार यत्न पूर्वक प्रदान करै ।

दद्यात्प्रयत्नतो मन्त्री वलिं चैव विधानतः। षडङ्गानि प्रपूज्याथ तथैवावरणं यजेत् ॥ त्रिकोणे पूजयेद्देवीं कामाख्यां भद्रकालिकाम् । त्रिपुरांच समभ्यर्च्य वामावर्त्तक्रमेण तु ॥ उग्रचण्डां प्रचण्डां च भैरवींचापरे त्रिके। माहेश्वरीं महादुर्गां वैष्णवीं चापरे त्रिके। ततोऽष्टदलपत्रे तु ब्राह्म्याद्याः पूजयेत् क्रमात् । पद्माद्बहिः समभ्यर्च्य भैरवाष्टकमेवच ॥ तद्बहिश्चापि देवेशि ! दिक्पालांस्तु समर्चयेत् । स्वाहान्तेनैव मूलेन देवीं सावरणां ततः ॥ पद्माद्यैरर्चयित्वा तु यथाशक्ति जपं चरेत् । एवं पूजापरो देवि ! साधको विजितेन्द्रियः ॥

एवं क्रमेण लक्षं प्रजप्य तद्दशांशं होमादिकं कुर्यात् ।

एतत् प्रमाणमेकाक्षर्याः कल्पेऽपि लिखितमेव । तत्तु अग्रे लिखिष्यामः । अथान्यः प्रकारः ।

तदुक्तं कालिकाश्रुतौ–

अथ सर्वां विद्यां प्रथममेकं द्वयं त्रयं वा नामत्रयपुटितं वा कृत्वा जपेत् । गतिस्तस्यास्तीति नान्यस्य इह गतिः । ओं सत्यं तत् सत् ।

फिर षडंग की पूजा करके आवरण की अर्चना एवं त्रिकोण में देवी कामाख्या और भद्रकाली की पूजा करनी चाहिये । इसप्रकार वामावर्त्त के क्रमसे अपर त्रिकोण में त्रिपुरा, उग्रचन्डा,प्रचंडा और भैरवीकी अर्चना करके अन्य त्रिकोणमें माहेश्वरी,महादुर्गा और वैष्णवी की और अष्टदल पत्र में ब्राह्मी इत्यादिकी पूजा करै । पद्म के बहिर्भाग में अष्ट भैरवकी अर्चना करके उसके बाहर सब दिक्पालों की पूजा करनी चाहिये । फिर स्वाहान्त मूलमंत्र से पद्मादि द्वारा यथा शक्ति आवरण सहित देवीकी पूजा करके जप करै । हे देवि ! साधकको इन्द्रिय ग्राम जीतकर इसप्रकार देवी का पूजापरायण होना चाहिये । इस प्रकार क्रमानुसार लक्ष जप करके उसका दशांश होमादि करै । इसका प्रमाण स्वयं महादेव ने एकाक्षरीकल्प में भी सन्निवद्ध किया है । वह पीछे लिखा जायगा ॥

अब प्रकारान्तर वर्णित होता है । कालिका श्रुति में कहा है । तथा—अनन्तर एक, दो,तीन,अथवा तीन नाम पुटित करके प्रथम समस्तविद्याका जप करै। इस लोकमें केवल उसीकी सद्गति होती है, अन्यकी नहीं। अनन्तर गुरूको गौ, भूमि और सुवर्ण इत्यादि से सन्तुष्ट करके मंत्रराज ग्रहण करै । गुरू भी सत्कुलीन, विद्याभक्त, शुश्रूषा परायण शिष्य को उसका दान और स्त्रीको स्पर्श करके स्वयं भलीभांति उसकी पूजा-

अथ हैनं परितोष्य गोभूहिरण्यादिभिर्गृह्णीयात् मंत्रराजन्। गुरुः शिष्याय सत्कुलीनाय विद्याभक्ताय शुश्रूषवे मंत्रं दत्त्वा स्वयं परिपूज्य निशायां विहरेत्। एकाकी शिवगेहे लक्षं तदर्द्धं वा जप्त्वा मंत्रं दद्यात्। ओं तत् सत्। सत्यं नान्यप्रकारेण सिद्धिर्भवतीह कालिकामनोर्वा भावनेति त्रिपूर्वा मनोर्वा सर्वस्य दुर्गा मनोर्वा स्वयं शिवोपरि। ओं तत् सत् इति सर्वाविद्यामिति पूर्वोक्तद्वाविंशत्यक्षर्याः प्रथम वीजं वा वीजद्वयं वा वीजत्रयं वा केवलनाम वा वीजत्रयपुटितं नाम वा जपेदित्यर्थः।

कालीहृदयविद्याञ्च सिद्धिविद्यां महोदयाम्। पुरा येन यथा जप्त्वा सिद्धिमापुर्दिवौकसः॥ कामाक्षरं वह्निसंस्थमिन्दिरानादविन्दुभिः। मंत्रराजमिदं ख्यातं दुर्लभं पापचेतसाम्॥ सुलभं पुण्यचि-

कर रात्रि काल में विहार करैं। एकाकी शिव-गृह में लक्ष वा इसका आधा जपकर शिष्यको प्रदान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से कालीमंत्र की सिद्धि नहीं होती। त्रिपुरामंत्र और दुर्गामंत्र की भी उक्त विधान से सिद्धि होती है। यहां समस्त विद्या शब्द में यही समझना चाहिये कि पूर्वोक्त द्वाविंशत्यक्षर। विद्या का प्रथम वीज, वा दोवीज वा तीनबीज अथवा केवल नाम किम्वा तीन बीज पुटित नाम जप करें। कालीहृदय विद्याही सिद्धविद्या है। उसके प्रभाव से चतुर्वर्ग अर्थात् अर्थ, धर्म, काम मोक्ष की प्राप्ति होती है। देवतागणोंने पहिले इस विद्या का जप करकेही सिद्धि लाभ करी है। कामाक्षर वह्निसंस्थ एवं रमा और नाद विन्दु युक्त होनेसेही इस विद्या का उद्धार होता है। इसका नाम मंत्रराज है। यह पाप चेतागणों को दुर्लभ है, पुण्य चित्त महात्मागण सहजमेंही लाभ करते हैं। विशेषतः यह विद्या त्रिगुण शालिनी और सर्व शास्त्रकी प्रबोध जननी है। इसकी समान विद्या वा इसकी सदृश जप अथवा इसकी समान सारस्वत प्रदा पूजा नहीं है। इस विद्या के प्रभाव से आकर्षण, वशीकरण मारण उच्चाटन, शान्ति और पुष्पा- दि समस्त कार्य्यों का शीघ्र साधन होसक्ता है। अधिक और क्या कहूं? स्वयं ब्रह्मा भी जिह्वा कोटिसहस्र (करोड हजार जीभ) वा सौ करोड वक्त्र द्वारा भी इसका वर्णन नहीं करसक्ते, इसकी समान जिस प्रकार विद्या और जप नहीं है, इसी प्रकार इसकी समान ध्यान भी नहीं है। और होगा भी नहीं। साधन पुरश्चरण एवं ध्यान और पूजादि समस्त अनुरुद्ध सरस्वती की समान है॥

कुलचूडामणि में कहा है—क्रीं यह कालीमंत्र एक वा द्विगुण वा त्रिगुण जप करने से इच्छानुसार स्थावर और जंगमादिको आकर्षण करसक्ता है। यह गुह्य महाकाली

त्तानां साधकानां महात्मनाम् । त्रिगुणा तु विशेषेण सर्वशास्त्रे प्रबोधिका ॥ अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः । अनया सदृशी पूजा न हि सारस्वतप्रदा ॥ आकर्षणवशीकारमारणोच्चाटनं तथा । शांतिपुष्ट्यादिकर्माणि साधयेदनयाचिरात् ॥ किं वक्तव्यमजेनापि वर्णितुं नैव शक्यते । जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि॥ अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः । अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥ ध्यानपूजादिकं सर्वं स साधनपुरस्क्रियाम् । अनिरुद्धसरस्वत्याः समानां समुदीरयेत् ॥

अथ कुलचूड़ामणौ—

ब्रह्मा सरस्वती गुह्यो देवतासुखसंयुता । दीजव्यक्तिसमाकीर्णः कालीमन्त्र उदाहृतः ॥ एकं वा द्विगुणं वापि त्रिगुणं वापि भैरव ! । जप्त्वा कर्षयति स्वैरं स्थावरं जङ्गमादिकम् ॥ एषा गुह्या महाकाली गुह्याद् गुह्यतरा स्मृता ।

सिद्धेश्वरतन्त्रे च ।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि एकाक्षरमनुं प्रिये !॥ यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तश्च साधकः ॥ गुह्याद् गुह्यतरं मंत्रं न देयं प्राणसंशय । खांतं हि वन्हिमारूढं सव्येतरदृगन्वितम् । चन्द्राबिन्दुसमायुक्तं परं गुह्यं महेश्वरि ! ॥

गुह्य से भी गुह्यतर है। सिद्धेश्वरतंत्र में भी कहा है। हे प्रिये! एकाक्षर महामंत्र कहता हूं, श्रवण करो। जिसके विज्ञानमात्रसे साधक जीवन्मुक्त होता है। यह मंत्र गुह्यसे भी गुह्यतर है। प्राण संशय उपस्थित होने पर भी यह किसीको न दे हे महेश्वरि! खान्त अर्थात् क. वन्हि संस्थ अर्थात् रकार युक्त, सव्येतर दृगन्वित अर्थात् दीर्घ ईकार युक्त और चन्द्र विन्दु संयुक्त होने से (क्रीं) यह पद बनता है, यही परम गुह्य एकाक्षर मंत्र है॥

इस विषय में विशेष यथा—कुलचूड़ामणि में कहा है प्रथम बीज और फिर शक्ति स्थापन पूर्वक बीज द्वारा मूर्त्ति कल्पना कर छै (६) दीर्घाक्षर युक्त बीज द्वारा नामानुसार अंग विधान करै।

अथ विशेषो यथा ।

तदुक्तं कुलचूड़ामणौ—

पूर्वं बीजं ततः शक्तिं बीजेन मूर्त्तिकल्पना । षड् दीर्घभाजा बीजेन कुर्यादङ्गानि नामतः ॥

अथास्या ध्यानं यथा ।

तदुक्तं तत्रैव–

ध्यायेत् कालीं करालास्यां दंष्ट्राभीमविलोचनाम् । स्फुरच्छवकर-श्रेणीकृतकाञ्चीं दिगम्बरीम् ॥ वीरासनसमासीनां महाकालोपरि स्थिताम् । अतिमूलसमाकीर्णसृक्ककर्णीं चण्डनादिनीम् ॥ मुण्डमाला-गलद्रक्तचर्चितां पीवरस्तनीम् । मदिरास्वादनास्फालकम्पिताखिल-मेदिनीम् ॥ वामहस्ते खड्गमुण्डधारिणीं दक्षिणे करे । वराभययुतां घोरवदनां लोलजिह्विकाम् ॥ शकुन्तपक्षसंयुक्तबालकर्णविभूषणाम् । शिवाभिर्घोररावाभिः सेवितां प्रणयोदिताम् ॥ चण्डहासचण्डनाद-दण्डास्फालैश्च भैरवैः । गृहीत्वा नरकङ्कालं जयशब्दपरायणैः ॥ सेवितां किल सिद्धौघैर्मुनिभिः सेवितां तथा । एवं तां कालिकां ध्यात्वा पूजयेत् कुलनायकः ॥ सर्वसिद्धिप्रदा देवी हेलयापि च चिन्तिता । ततः सा दक्षिणा नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते ॥

इसका ध्यान यथा—उस में ही कहा है, काली का ध्यान करे । वह करालवदना, दंष्ट्राभीषणा, और विलोचना हैं । उनकी कांची शोभायमान शवकर (मृतकहस्त) द्वारा बनीहुई है । वह दिगम्बरी (नग्न) वीरासन में विराजमान और महाकालके ऊपर अवस्थिति करती हैं । उनके होठ कर्ण मूलपर्यंत विस्तीर्ण हैं । उनका नाम प्रचण्ड हैं । मुण्डमाला द्वारा विगलित रुधिर धारा से उनका कलेवर चर्चित होता है । उनके दोनों स्तन पीवर (मोटे) भावयुक्त हैं । वह मदिरा पान करके तज्जनित आस्फालन से संपूर्ण पृथ्वी को कम्पायमान करती हैं । उनके वामहस्तमें खड्ग और मुंड, दक्षिण हस्त में वर और अभय है । वह घोरवदना और लोलरसना हैं घोर रावा अर्थात् घोर शब्द करने वाली समस्त शिवागण उनकी सेवा करती हैं । वह सब के प्रति प्रणयपरायण हैं। समस्त भैरव प्रचंड हास्य, प्रचंड शब्द और प्रचंड आस्फा-लन सहित नरकङ्काल (मनुष्यका खांखड) ग्रहण करके और समस्त सिद्ध संघ और मुनिगण जय जय शब्द से उनकी सेवा में प्रवृत्त होते हैं । कुलनायक इस प्रकार कालिका का ध्यान करके पूजा करे । उपेक्षा से ध्यान करने पर भी वह सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करती हैं। इसीलिये उनके नाम ने त्रिभुवन में दक्षिणा कह

स्वतन्त्रेऽपि–

ध्यानं शृणु वरारोहे ! साधकानां सुदुर्लभम्। शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां वरप्रदाम् ॥ हास्ययुक्तां त्रिनेत्राञ्च कपालकर्त्रिकाकराम्। मुक्तकेशीं लोलजिह्वां पिबन्तीं रुधिरं मुहुः ॥ चतुर्बाहुयुतां देवीं वराभयकरां स्मरेत् ॥ इति ॥

अथास्याः पूजनम्–सिद्धेश्वरतन्त्रमतेन दक्षिणावत् किन्तु अव्यवहितविद्यावदिति। तदुक्तम्।

ऋषिन्यासं पूजनञ्च देव्यास्तु पूर्ववद्भवेदिति। पुरश्चरणेऽपि लक्षसंख्यजपः कार्यः।

तदुक्तं तत्रैव–

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षमेकं विधानतः। तद्दशांशं विधानेन ततो होमादिकल्पनम्। पूर्वोक्तमन्त्रराजस्य जपमेवं वरानने ! । अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि कालिकामन्त्रमुत्तमम् ॥ येन विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तश्च साधकः। स्कन्धारूढमहाकाली शिवादीश्वरसंयुता ॥ चन्द्रार्द्धबिन्दुनाक्रान्ता तत्परोज्वलनाक्षरम्। नानाबिन्दुकलासार्द्धं महामन्त्रोदितः प्रिये ! ॥ इन्द्रारूढदिवानाथो भगतूर्य्यः स्वरान्वितः। कलाबिन्दुसमायुक्तः कथितः कामतः प्रिये ! ॥ गोप्तव्योऽयं महामन्त्रो न देयो

कर प्रसिद्धि लाभ करी है। स्वतन्त्र में भी कहा है, हे वरारोहे ! साधकगणों को जो ध्यान दुर्लभ है, वह श्रवण करो। वह शवासना, महाभीषणा, घोरदशना, वरप्रदा, हास्यशोभना, त्रिलोचना, कपालऔर कर्तृकाधरा (कपाल और कैंची) मुक्तकेशी, लोलरसना, चतुर्भुजा, वराभयकरा, और बारंबार रुधिर पान करतीं हैं इस प्रकार उनका ध्यान करें ॥

अब उनकी पूजा लिखीजाती है। सिद्धेश्वर तंत्र के मत से दक्षिणावत् किंतु अव्यवहित विद्यावत् है। यह कहा है। यथा–देवी का ऋषिन्यास और पूजा पूर्व की समान करनी चाहिये। पुरश्चरण में भी लक्षसंख्या में जप करना चाहिये। उसमें ही कहा है। यथा–इस प्रकार से ध्यान करके विधानानुसार एकलक्ष जप और इसके दशांश होमादि कल्प में प्रवृत्त होवे। हे वरानने ! पूर्वोक्त मन्त्रराज का इसी प्रकार जप करे। अब देवी कालिका का अन्यतर श्रेष्ठ मन्त्र कहता हूं, जिसके विज्ञानमात्र सेही साधक जीवन्मुक्त होजाता है। ह्रीं' यह महामंत्र गुप्त रक्खे। जिस किसी को इसका प्रदान न करें। जो व्यक्ति गुरुभक्त शान्त और दान्त (जितेंद्रिय) है, उसको

यस्य कस्यचित् । गुरुभक्ताय शान्ताय दद्याद्दान्ताय चैव हि ॥ ध्यानं पूजादिकं देवि ! सर्वं पूर्ववदाचरेत् । एकलक्षेण सिद्धिः स्यात् पुरश्चरणकर्मणि ॥ इति ॥

अथ प्रकारान्तरं तदुक्तं कालीतन्त्रे—

अथातः संप्रवक्ष्यामि मन्त्रं कल्पद्रुमं परम् । येन जप्तेन विधिवत् सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥ अस्य स्मरणमात्रेण पलायन्ते महापदः । यस्य स्मरणमात्रेण वाचश्चित्रायते नृणाम् ॥ यज्ज्ञानादमरत्वञ्च लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् । ये जपन्ति परां देवीं नियमेन च संस्थिताः॥ देवास्तांस्तु नमस्यन्ति किं पुनर्मानवादयः । बृहस्पतिसमो वाग्मी धनैर्धनपतिर्भवेत् ॥ कामतुल्यश्च नारीणां रिपूणां स यमोपमः । तस्य पादाम्बुजद्वन्द्वं राज्ञां किरीटभूषणम् ॥ तस्य भूतिं विलोक्यैव कुबेरोऽपि तिरस्कृतः । य एनां चिन्तयेद्देवीं नियतः पितृकानने ॥ तस्य चाज्ञाकराः सर्वे सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि॥ तस्यैव जननी धन्या पिता तस्य सुरोपमः । संप्रदाये च वक्ता स य एनां वेत्ति तत्त्वतः ॥ अस्य विज्ञानमात्रेण कुलकोटीः समुद्धरेत् । नन्दन्ति पितरः सर्वे गाथां गायन्ति ते मुदा ॥ अपि नः स कुले कश्चित् कुलज्ञानी भविष्यति ।

ही इसका प्रदान करना चाहिये । हे देवि ! इसका ध्यान और पूजादि समस्त पूर्ववत् विधानानुसार करै । पुरश्चरण कार्य में एकलक्ष जप से सिद्धि होती है ॥

अब प्रकारान्तर वर्णित होता है । कालीतंत्र में कहा है । यथा—इसके उपरान्त साक्षात् कल्पवृक्ष की समान सर्वोत्कृष्ट (सब से श्रेष्ठ) मंत्र कहता हूं । इसका विधिवत् जप करने से आठ प्रकार की सिद्धि हस्तगत होती है इसके स्मरण मात्रसेही समस्त महाआपद दूर होती हैं । और मनुष्य को विचित्र वाक्य उत्पन्न होते हैं । इस के विज्ञानमात्र से ही चार प्रकार की मुक्ति और अमरत्व लाभ होता है । जो नियम के अनुसारी होकर परादेवी का जप करता है, उसको संपूर्ण देवतागण नमस्कार करते है । मनुष्यादि की बात और क्या कहूं ? वह व्यक्ति बृहस्पति की समान वाग्मी, धन में धनपति, स्त्रीगणोंको कामदेवकी समान और शत्रुगणों को यमकी समान होता है । उनके दोनों चरणारविंदों में राजा लोगों के किरीट का भूषण होता है । उसका विभव देखकर कुबेर तिरस्कृत होते हैं, जो व्यक्ति पितृकानन में नियम परायण होकर इस देवीकी चिंता करता है, अष्टसिद्धि उसकी आज्ञाकारी होती हैं । उसकी ही जननी धन्य और उसी के पिता देवता की समान है, इस के विज्ञान मात्र से ही करोड़ कुल का उद्धार होता है । उस के पितृगण आनंदित होते हैं और आह्लाद में भर कर इस प्रकार गाथा गाते हैं कि, हमारे कुल में क्या कोई कुलज्ञानी होगा ॥१० ॥ जो व्यक्ति

स धन्यः स च विज्ञानी स कविः स च पण्डितः ॥ स कुलीनः स च कृती स वशी स च साधकः । स ब्राह्मणः स वेदज्ञः सोऽग्निहोत्री स दीक्षितः ॥ स तीर्थसेवी पीठानां स निवासी स सर्वदः । स सोमपायी स व्रती स यज्वा स परन्तपः॥स संन्यासी स योगी च स मुक्तो ब्रह्मविच्च सः । स वैष्णवः स शैवश्च स सौरः स च गाणपः । सच विज्ञानवेत्ता च य एनां वेत्ति तत्त्वतः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ एनां ध्यात्वा जपेन्मन्त्री सुखमोक्षमवाप्नुयात्॥ विद्यारत्नं प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कर्णावतंसवत् । मायाद्वन्द्वं कूर्चयुग्मं मैत्रान्तं मादनत्रयम् ॥ मायावन्हिशिवरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् । संहारक्रमयोगेन वीजसप्तकमुद्धरेत् ॥एकविंशत्यक्षराढ्यस्ताराद्यः कालिकामनुः । पूर्वोक्तमन्त्रराजस्य कुर्य्यात् पूजां विचक्षणः ॥

भैरवतन्त्रेऽपि-

मायाद्वयं कूर्चयुग्मं मैत्रान्तं मादनत्रयम् । मायावह्नीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् ॥संहारक्रमयोगेन वीजसप्तकमुद्धरेत् । एकविंशत्यक्षराढ्यस्ताराद्यो विश्वपूजितः ॥ आकाशं वामकर्णेन युतं विन्दुविभूषितम् । चतुर्थवीजमाख्यातं त्रैलोक्यवशकारणम् ॥ स्वाहान्तश्चत्रयोविंशत्यक्षरो मन्त्रराजकः । विंशत्यर्णा महाविद्या स्वाहा प्रणववार्जिता । ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत् ॥

इस के प्रकृत स्वरूप से अवगत हैं, वही धन्य, वही विज्ञानी, वहीकवि वही पण्डित वही कुलीन, वही कृति, वही साधक, वही ब्राह्मण, वही वेदज्ञ वही अग्निहोत्री, वही दीक्षित, वही तीर्थसेवी, वही सब पीठस्थल का अधिनिवासी, वही सर्वद, सोमपायी, व्रती, यागशील, परन्तप, और संन्यासी, वही योगी, वही मुक्त, वही ब्रह्मज्ञ, वही वैष्णव, वही शैव, वही सौर, वही गाणपत्य, और वही विज्ञानवेत्ता हैं। इस लिये सब प्रयत्न सहित सर्वदा सर्वअवस्था में इसका ध्यान करके जप करें तो सुखी और मोक्ष भागी होता है।

अब उल्लिखित विद्यारत्न कहता हू । यह कर्ण का साक्षात् अवतंस है, श्रवण करो। ओं ह्रीं, ह्रीं, हुं, हुं, क्रीं, क्रीं. क्रीं हुं, हुं. ह्रीं, ह्रीं, यह एकविंशत्यक्षर मंत्र विश्वपूजित है, इसके उपरांत स्वाहा प्रयोग करने से त्रयोविंशत्यक्षर होता है। एवं स्वाहा और प्रणव निकालने से विंशत्यक्षरा महाविद्यारूप में परिणत होता है । इसकी ध्यान पूजादि समस्त दक्षिणावत् की समान उपाचरण करें ॥

सिद्धसारस्वततन्त्रेऽपि—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कालिकामन्त्रमुत्तमम् । मायाद्वयं कूर्च-युग्मं भैरवान्तं मादनत्रयम् ॥ मायाविन्दीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् । संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्धरेत् ॥ द्वाविंशत्यक्षरी विद्या वह्निजायान्विता शुभा॥ कालिकाया महाविद्या सिद्धिदा भुवनत्रये॥ मायाबीजैः षडङ्गानि महादेव्याः प्रकल्पयेत् ॥ भैरवो हि ऋषिश्छंदो-ऽनुष्टुप् काली च देवता ॥

अथान्यप्रकारम् । तदुक्तं कालीतन्त्रे—

अथ वक्ष्ये महाविद्यां सिद्धिविद्यां महोदयाम् । ईश्वरेण पुरा प्रोक्तां देवीं हृदयसंस्थिताम् ॥ अस्या ज्ञानप्रभावेण कलयामि जगत्रयम् । प्रणवं पूर्वमुच्चार्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत्॥ रतिबीजं समुद्धृत्य प्रपंचमभ-गान्वितम्। ठद्वयेन समायुक्ता विद्याराज्ञी प्रकीर्त्तिता॥ अनया सदृशी विद्या कालीतन्त्रे सुगोपिता । बीजं च बीजमस्याश्च हृल्लेखा शक्तिरुच्यते । षड्दीर्घमायाबीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् । अष्टाङ्गकं ततोन्यस्य ध्यात्वा देवीं शिवो भवेत् ॥ खड्गोछिन्नेन्दुविम्बस्रवदमृतरसप्लाविताङ्गी

सिद्धेश्वरतंत्र में भी कहा है। हे देवि ! श्रवण करो, उत्कृष्ट कालिका मंत्र कहता हूं । ॐ ह्रीं, ह्रीं, हुं, हुं, क्रीं, क्रीं, क्रीं, दक्षिणे कालिके क्रीं, क्रीं, क्रीं, हुं, हुं, ह्रीं, ह्रीं, स्वाहा। यह द्वाविंशत्यक्षरा विद्या साक्षात् कालिका है। इसका नाम महाविद्या है। यह तीनों भुवन में ही सिद्धि प्रदान करती है । माया बीज द्वारा देवी की षडङ्ग कल्पना करै। इस के ऋषि भैरव, छंद अनुष्टुप् और देवता कालिका है ॥

कालीतंत्र में अन्य प्रकार कहा है। यथा–जिसके द्वारा निर्वाणमुक्ति लाभ होती है, वही सिद्धविद्या महाविद्या कीर्तन करता हूं। देवी की हृदयस्थिता यह विद्या महादेव ने स्वयं पहिले कही है। मैं इसके ही ज्ञानके प्रभाव से त्रिभुवन की सृष्टि स्थि-ति और संहार करता हूं। प्रथम प्रणव उच्चारण करके फिर हृल्लेखा बीज अर्थात् "ह्रीं" यह पद प्रयोग करै। फिर रतिबीज अर्थात् 'क्रीं' विन्यस्त करके भगान्वित अर्थात् एकार संयुक्त प पञ्चम अर्थात् म मिलाकर स्वाहा के सहित अन्वित (युक्त) करै। इस का साकल्य में प्रयोग यही है। ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा। इसका नाम विद्याराज्ञी है। कालीतन्त्र में इसकी समान विद्या परमगुप्त रूपसे रक्षित हुई है। बीज इसका बीज और हृल्लेखा इसकी शक्ति है। षड् दीर्घ मायाबीज द्वारा प्रणव युक्त करके कल्पना करै। अनन्तर अष्टाङ्गन्यास करके देवीका ध्यान करनेसे साक्षात् शिव होता है। इसकी पूजादि समस्त दक्षिण कालिकाकी पूजाके समान करनी चाहिये। इसका ध्यान यथा—

त्रिनेत्रा सव्ये पाणौ कपालाद्गलदसृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती। दिग्वस्त्रा बद्धकांची मणिमयमुकुटाद्यैः संयुता दीर्घजिह्वा पायान्नीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढ़पादा ॥ जपेद्विंशतिसाहस्रं सहस्रैकेण संयुतम्। होमयेत्तद्दशांशेन मृदुपुष्पेण मन्त्रवित् ॥ त्रिकोणं कुण्डमासाद्य सिद्धविद्यः शिवो भवेत्। पूजनं च प्रयोगं च दक्षिणावदुपाचरेत् ॥ एकाक्षर्या महाकल्प समानं सर्वमेव वा। रक्तपद्मस्य होमेन साक्षाद्वैश्रवणो भवेत् ॥ विल्वपत्रस्य होमेन राज्यं भवति निश्चितम्। रक्तप्रसूनहोमेन वशयेदखिलं जगत् ॥ पीतपुष्पस्य होमेन स्तम्भयेत् विश्वमप्यय। मालतीपुष्पहोमेन साक्षाद्वाक्पति सन्निभः॥ कृष्णपुष्पस्य होमेन शत्रून् मारयतेऽचिरात्। अत्र सर्वस्य होमेन संख्या स्यादयुतं किल ॥ अस्याः स्मरणमात्रेण महापातक कोटयः। सद्यः प्रलयमायान्ति साधकः खेचरो भवेत् ॥

अथ कालिकामन्त्रान्तरं तदुक्तं स्वतन्त्रे—

श्मशानकालिकामन्त्रं शृणुष्वावहिता शिवे!। वाणीं मायां ततो लक्ष्मीं कामवीजं ततः परम् ॥ कालिकासंपुटत्वेन चतुष्कं बीजमा-

---

खड्ग खंडित इन्दु खण्ड से जो अमृतरस विगलित होता है तिसके द्वारा उसका सर्वाङ्ग प्लावित हैं। उनके तीन नयन हैं। सव्य हस्त में नरकपाल है। उस कपाल से जो रुधिर गिरता है वह मुक्तकेशहुई उसको पान करती हैं. वह दिग्वस्त्रा हैं, उसकी कमर तगड़ी के द्वारा अलंकृत है, उसके मुकुटादि मणिमयहै. उसकी जिह्वा अतीव उज्ज्वल भाव युक्त है। उसकी आभा नीलकमलकी समान है, उसके दोनों चरण प्रत्यालीढ हैं। इस मंत्रसे एकविंशतिसहस्र अर्थात् इक्कीस हजार जप करै। इसका दशांश मृदु पुष्प द्वारा होम करै। त्रिकोण कुण्ड बनाकर इस प्रकार होम करनेसे विद्या सिद्ध और शिवस्वरूप लाभ होता है। लाल कमल से होम करने पर साधक साक्षात् वैश्रवण (कुवेर) हो जाता है। वेलपत्र के द्वारा होम करने से निसंदेह राज्य लाभ होता है, लाल पुष्पके द्वारा होम करनेसे समस्त जगत् वशीभूत होता है। पीले पुष्प द्वारा होम करने से विश्व संसार स्तम्भित होता है। मालती पुष्पके द्वारा होम करने से साक्षात् वाक्पति की समानता लाभ होती है! काले पुष्प के द्वारा होम करने से शत्रुकुल को तत्काल निर्मूल कर सकता है। इस स्थल में सबकी होम संख्या अयुत (दश हजार) है इसके स्मरणमात्र से ही करोड करोड महापातक तत्काल नष्ट होते हैं और साधक खेचरत्व लाभ करता है॥

स्वतंत्र कालिका का महामंत्र कहागया है, यथा — हे शिवे! श्मशानकालिका का मंत्र मन लगाकर श्रवणकरो ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं यहएकादशाक्षर मंत्र, श्मशानकालिका का

लिखेत् । एकादशार्णा देवेशि ! चतुर्वर्गप्रदायिनी ॥ ऋषिर्भृगुर्बृहच्छंदो देवता कालिका परा । श्मशानाद्या चाद्यां माये बीजशक्ती महेश्वरि !॥ कीलकं कामबीजंतु शृणु पूजाविधिं प्रिये ! चतुर्भिस्त्रिश्चतुर्वर्णैर्विद्यामंत्रं षडङ्गकम् ॥ विन्यस्य ध्यानं कुर्वीत कालिकायाः समाहितः । अञ्जनाद्रिनिभां देवीं श्मशानालयवासिनीम् ॥ त्रिनेत्रां मुक्तकेशीं च शुष्कमांसातिभीषणाम् । पिङ्गाक्षीं वामहस्तेन मद्यपूर्णकपालकम् ॥ सद्यः कृत्तशिरो दक्षहस्तेन दधतीं शिवाम् । स्मितवक्त्रां सदा चाममांसचर्वणतत्पराम् ॥ नानालङ्कारभूषाङ्गीं नृत्योन्मत्तां सदासवैः । एवं ध्यात्वा जपेद्देवीं श्मशाने तु विशेषतः ॥ गृहे वापि गृहस्थश्च मत्स्यैर्मांसैः सुशोभनैः । नग्नो भूत्वा महापूजां कुर्याद्रात्रौ विशेषतः ॥ पद्मं चाष्टदलं वृत्तं तद्बाह्ये धरणीतलम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं मध्ये मूलं समालिखेत् ॥ दलेष्वष्टासु विलिखेत् कवर्गाद्यष्टवर्गकम् । धरण्यां विलिखेदाद्यं चतुष्कञ्च चतुष्ककम् ॥ पूर्वादि चोत्तरांताशां मध्ये देवीं प्रपूजयेत् । ब्राह्म्याद्याः पूजयेन्मातृदलेष्वष्टासु पूर्ववत् । भैरवानसिताङ्गाद्यान् धरण्यां पूजयेत् प्रिये !

मंत्र है । इसके द्वारा चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम मोक्षकी प्राप्ति होतीहै । इसके ऋषि भृगु छन्द बृहत् देवता परात्पररूपिणी कालिका वाक्बीज और मायाशक्ति और कीलक कामबीज है । हे प्रिये ! इसकी पूजा विधि का वर्णन करता हूं, सुनो चार, दो तीन अथवा चारों वर्ण के द्वारा षडङ्ग विद्या मंत्र विन्यस्त कर समाहित हो देवी कालिका का ध्यान करै वह अञ्जन पर्वत की समान, श्मशानालयवासिनी त्रिनेत्रा, मुक्तकेशी, शुष्कमांसा, अतिभयंकर और पिङ्गाक्षी हैं । उनके वामहस्त में मद्यपूर्ण कपाल दक्षिण हाथ में सद्य छिन्न मस्तक, और उनका बदन मण्डल स्मितविकसित (प्रसन्नता से खिलाहुआ) है । वह सर्वदा आम मांस चर्वण करती हैं, वह अनेक गहनों से भूषिताङ्गी और राशि राशि आम मांस पान करके सदा नृत्य में उन्मत्त हैं । इस प्रकार ध्यान करके जप करना चाहिये । विशेषतः श्मशान आश्रय करके जप करै । अथवा गृहस्थ घर में भी शोभित मत्स्य और मांस प्रदान पूर्वक नग्न होकर महापूजा करै । रात्रि में इस प्रकार पूजा करना ही विशेष विधि है । अष्टदलपद्म और उसके बाहर चतुर्द्वार युक्त धरणी तल में मूल अंकित करै । अष्टदल में कवर्गादि अष्टवर्ग लिखकर धरणी म आद्य चतुष्क प्रत्येक में अंकित करै मध्य में पूर्वादि उत्तर दिक् में देवी की पूजा करनी चाहिये । पूर्व की समान अष्ट मातृदल में ब्राह्मी इत्यादि की अर्चना करै । हे प्रिये ! फिर धरणीतल पर असिताङ्ग इत्यादि भैरव गणों के पूजन में प्रवृत्त होना चाहिये ॥

अथ पुरश्चरणनियमो यथा—तदुक्तं स्वतन्त्रे—

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशेन होमयेत् । वर्णलक्षं मंत्रवर्णसंख्याजपमित्यर्थः । रजस्वलां स्त्रियं गत्वा रेतोरुधिरसंयुताम् ॥ मद्यं चाष्टविधं मांसं मत्स्यं बहुविधं प्रिये ! । नैवेद्यं चात्मसात् कृत्वा कालीभक्तिपरायणः ॥ तदा भोगञ्च मोक्षञ्च लभते नात्र संशयः ॥

अथ मन्त्रान्तरम्-

कामबीजं समालिख्य कालिकायै पदं लिखेत् । नमोऽन्तेन च देवेशि ! सप्तार्णो मनुरुत्तमः ॥ सर्वाङ्ककालिका देवी अन्यत् सर्वंतु पूर्ववत् । गुरोश्चापि कृपां लब्ध्वा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥

इति महामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित
श्यामारहस्ये मंत्रभेदविवरणंनाम
षष्ठः परिच्छेदः ।

अथ सप्तमः परिच्छेदः ।

अथ विद्यामाहात्म्यम् ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे—

गुणं समस्तविद्यानां वाग्भिः स्तोतुं न शक्यते । वक्त्रकोटि-

अब पुरश्चरण—नियम कहाजाता है । यथा—स्वतंत्र में कहा है, वर्ण लक्ष मंत्र जपकर उसके दशांश में होम करै । वर्णलक्ष शब्द में मंत्र वर्ण की संख्यानुसार जप है । रजस्वला स्त्री के सहित संगत और काली के प्रति भक्तिपरायण होकर शुक्र शोणित संयुक्त मद्य आठ प्रकार का मांस, अनेक प्रकार के मत्स्य और नैवेद्य आत्मसात् (भक्षण करने) से भुक्ति (भोग) मुक्ति (मोक्ष) लाभ होती है । इसमें संदेह नहीं ॥

अब मन्त्रान्तर लिखाजाता है । प्रथम 'क्लीं' फिर 'कालिकायै' और तदुपरान्त 'नमः' शब्द प्रयोग करै । अर्थात् 'क्लीं कालिकायै नमः' साधक यह सप्ताक्षर मंत्र गुरु की कृपा से लाभ करने पर सब प्रकार की सिद्धि लाभ करने में समर्थ होजाता है ॥

इतिश्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरि विरचित
श्यामारहस्ये भाषाटीकासहितमन्त्रभेदाविवरणनाम
षष्ठपरिच्छेदसमाप्त ॥ ६ ॥

अब विद्या माहात्म्य कहाजाता है । काली तंत्र में कहा है । यथा—करोड हजार वक्त्र और करोड शत जिह्वा प्राप्त होने पर भी वाग्मी व्यक्ति समस्त विद्याओं का स्तव

सहस्त्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ॥ सर्वसिद्धिप्रदा भूमिरनिरुद्धसरस्वती तस्मात् तस्या ज्ञानमात्रात् सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥ अनिरुद्धसरस्वत्या ज्ञानमात्रेण साधकः पाण्डित्ये च कवित्वे च वागीशसमतां व्रजेत् ॥ तस्य पाण्डित्यवैदग्ध्यं विचित्रपदजल्पनात् । देवा अपि विलज्जन्ते किं पुनर्मानुषादयः ॥ अपि चेत् त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् । अनिरुद्धसरस्वत्याः समानो नास्ति वैभुवि ॥ अस्या जपो ब्रह्मजपो महाशोके महोत्सवे । महामोहे महासौख्ये महादारिद्र्यसङ्कटे ॥ योगसंसाधनं सम्यक् ध्यानमस्या न संशयः । महापदि महापापे महाग्रहनिवारणे ॥ महाभयमहोत्पाते महाशोके महोत्सवे । महामोहे महासौख्ये महादारिद्र्यसङ्कटे ॥ महारण्ये महाशून्ये महाज्ञाने महारणे । दुरापदि दुरावासे दुर्भिक्षे दुर्निमित्तके ॥ समस्तक्लेशसंघाते स्मरणादेव नाशयेत् । अस्या ज्ञानं ज्ञानमेव ध्यानमस्याश्च चिन्तनम् ॥ तस्मादस्याः समा विद्या नास्ति तन्त्रे न संशयः । श्मशानशयनो वीरः कुलस्त्रीभिर्विहारवान् ॥ कुलामृतनिषेवी च कालीतत्त्वार्थचिन्तकः । ब्रह्मादिर्भुवने तस्य समो नास्ति कुतः परः ॥ स एव सुकृती लोके स एव कुलभूषणः । धन्या च जननी तस्य येन देवी समार्चिता ॥ धनेन

नहीं करसकता । अनुरुद्ध सरस्वती सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करती है । इस लिये उनके ज्ञान मात्र से आठ प्रकार की सिद्धि संग्रह होती है । अधिक क्या साधक अनिरुद्ध—सरस्वती के ज्ञान मात्र से ही पाण्डित्य और कवित्व शक्ति में स्वयं वाक् पति की समान होता है । उसके पाण्डित्य वैदग्ध (पांडित्य की चतुरता) और विचित्र पद जल्पना से देवता गण और पंडित गण लज्जित होते हैं, मनुष्यादि की तो बात ही क्या है. कदाचित् तुम्हारी समान स्त्री और मेरी समान पुरुष हो किंतु अनि रुद्ध–सरस्वती की समान कोई नहीं है । इसका जप साक्षात् ब्रह्म जप है । ज्ञान, शोक, महोत्सव, महामोह महा सौख्य, महादारिद्रसंकट सर्वत्र ही यह जप ब्रह्म जप होता है । इसका ध्यान भी सब प्रकार समुदय योग स्वरूप है. इस में संदेह नहीं । महा आपद्. महापाप. महाग्रहनिवारण महाभय महोत्पात, महाशोक ? महोत्सव, महामोह. महासौख्य महादारिद्रयसंकट, महावन महाशून्य, पर महा ज्ञान, महारण, दुरावास, दुर्भिक्ष. दुर्निमित्त और समस्त क्लेश उपस्थित होने इसका स्मरणकरे । इसका ही ज्ञान ज्ञान है. इसका ही ध्यान आत्मचिन्तन है। इसी कारण तंत्र में इसकी समान विद्या नहीं है । जो व्यक्ति श्मशान में शयन करके वीराचार अवलम्बन और कुल स्त्रीगणों के समभिव्याहार में विहार और कुलामृत निषेवण पूर्वक काली के तत्वार्थ की चिन्ता करता है, ब्रह्मादिक भी उस की समान नहीं हो स-

धननाथश्च तेजसा भास्करोपमः । वेगेन पवनो ह्येष येन देवी समर्चिता ॥ गानेन तुम्बुरुः साक्षात् दानेन वासवो यथा । दत्तात्रेयसमो ज्ञानी येन देवी समर्चिता ॥ वन्हिरिव रिपोर्हन्ता गङ्गेव मलनाशकः । शुचि सूर्यसमः साक्षादिन्दोरिव सुखप्रदः ॥ पितृदेवसमः साक्षात् कालस्येवदुरासदः । समुद्र इव गम्भीरो निर्ऋतिरिव दुर्द्धरः ॥ बृहस्पतिसमो वक्ता धरणीसदृशः क्षमी । कन्दर्पसदृशः श्रीमान् येन देवी समर्चिता ॥ सर्वभाग्ययुतो लोके कुलज्ञानी भविष्यति । तेषां मध्येऽपि यः कोऽपि कालीसाधनतत्परः ॥ त्यजसि त्वं न कदाचित् पुमांसं परमं प्रियम् । मादृशन्तु क्वचित् काले त्यजसि त्वं शुचिस्मिते । ॥ किन्तु कालीज्ञानिनञ्च त्यक्ष्यसि न कदाचन । न हि कालीसमा पूजा न हि कालीसमं फलम् ॥ न हि कालीसमं ज्ञानं न हि कालीसमं तपः । ये गुणाः परमेशस्य पञ्चकृत्यविधायिनः ॥ ते गुणा सन्ति सर्वेऽपि कालीतत्त्वस्य ज्ञानिनः॥ कालिकाहृदयज्ञानी कालीसाधन तत्परः देववत् मानुषो भूत्वा लभेत् मुक्तिं चतुर्विधाम् । इति ते कथितं

करते अन्यकी तो बातही क्या है ? वही व्यक्ति सुकृती, वही कुलभूषण और उसी की जननी धन्य है वही धन में कुबेर के समान, तेज में सूर्य के समान वेग में पवन के समान, गान में तुम्बुरू के समान, दान में वासवकी समान, और ज्ञान में दत्तात्रेय की समान, होता है और वही व्यक्ति अग्नि की समान शत्रुविनाश करता है, गंगा की समान मल नाशकरता है, चन्द्रमा की समान सुख देता है, अग्नि की समान पवित्रता साधन करता है । हे शम्भो ! वह व्यक्ति यमकी समान काल को भी दुराक्रम्य वागीश्वर की समान गंभीर निर्ऋति की समान दुर्द्धर बृहस्पति की समान वक्ता धरणीकी समान क्षमा शील और कामदेव की समान स्त्री गणों को मनोहर होता है । आहा ! संसार में यही सौभाग्य है कि - मनुष्यको लोक में कुल ज्ञानी होना चाहिये और इस के अतिरिक्त-काली साधन में तत्पर होना चाहिये । हे शुचिस्मते ! यद्यपि तुम मेरी समान व्यक्ति को किसी समय त्यागकरदो, किन्तु अपने परमप्रिय पुरुषको कभी नहीं छोड़ती हो और जो व्यक्ति कालीज्ञान युक्त है अर्थात् जिसको काली का ज्ञान है,उसका भी तुम कभी त्याग नहीं करती हो । काली की समान पूजा नहीं, कालीकी समान फल नहीं, काली की समान ज्ञान नहीं और काली की समान तपस्या नहीं है. साक्षात् परमेश्वर का पंचकृत्य विधान करने से जो समस्त गुण उत्पन्न होते हैं, कालीतत्व के भी वही सब गुण हैं इसमें अन्यथा नहीं है । जो व्यक्ति कालीहृदय ज्ञानी और सत्य

सम्यक् कालिकातत्वमुत्तमम् ॥ अनेन सम्यगास्थाय सर्वकामफलं लभेत् ॥

इति श्यामारहस्ये विद्यामाहात्म्यकथनं नाम
सप्तम परिच्छेदः ॥

अथ अष्टमः परिच्छेदः ।

अथ आचारक्रमो लिख्यते तदुक्तं कालीतन्त्रे—

ईश्वर उवाच ।

अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत्कृतेऽमृतमश्नुते । सर्वभूतहिते युक्तः समयाचारपारगः ॥ अनित्यकर्मसंत्यागी नित्यानुष्ठान तत्परः । परायां देवतायाञ्च सर्वकर्मनिवेदकः ॥ अन्यमन्त्रार्चनश्रद्धा मन्य-मन्त्रप्रपूजनम् । कुलस्त्रीवीरानिन्दाञ्च तया वेश्योपसङ्गमम् ॥ स्त्रीषु रोषं प्रहारञ्च वर्जयेत् मतिमान् सदा । स्त्रीमयञ्च जगत् सर्व चिन्तयेत् साधकोत्तमः॥ स्त्रीद्वेषो नैव कर्त्तव्यो बिशेषात् पूजनं स्त्रियः। जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योद्र्ध्वं जपं चरेत् ॥ स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् विशेषात् कुलजां शुभाम् ॥ भक्षंस्ताम्बूलमद्यांश्च भक्ष्य-द्रव्यान् यथारुचीन् । मांसमत्स्यदधिक्षौद्र पयः शाकाद्य मैत्त्वम् ॥

साधन में तत्पर है, वह मनुष्य होकर भी देवताकी समान होकर चार प्रकार की मुक्ति लाभ करता है । यह मैंने तुम्हारे निकट कालिकातत्वका वर्णन किया ॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीपूर्णानन्दगिरिविरचित
श्यामारहस्येभाषाटीकासहितविद्यामाहात्म्यकथननाम
सप्तमपरिच्छेदसमाप्त ॥ ७ ॥

अब आचार क्रम लिखाजाता है । कालीतन्त्र में कहा है । यथा-ईश्वर (शंकर) ने कहा—अनन्तर जिसके द्वारा अमृत भोग कियाजाता है उसी आचार क्रमको कहता हूं । सर्व भूतोंके हितानुष्ठान में आसक्त और समयाचार परायण होना चाहिये, अनित्यकर्म त्याग और नित्यकर्म के अनुष्ठान में तत्परताका अवलम्बनकरे, परदेवता में समस्त कर्म निवेदन करे अन्य मंत्र की अर्चना में श्रद्धा, अन्य मंत्र की पूजा, कुल-स्त्री और वीर व्यक्ति की निंदा, उन में वेश्योपहारण स्त्री गणों के प्रति क्रोध दिखाना और उनको प्रहरण इन सब बातों का सर्वदा परित्याग करे, समस्त जगत् का स्त्री, मय देखे, और स्वयं भी स्त्री मयहो, स्त्री गणों के प्रति दोष परित्याग करे; विशेष प्रकार से उनकी पूजा करे, जपस्थान के ऊर्द्ध भाग में महा शंख निवेशित करके जप करे, स्त्री के एवं विशेष करके कुलजा और शुद्ध स्वभाव स्त्री के सहित

भक्ष्याद्यशेष भक्ष्याणि दत्वा तत्र जपं चरेत् । दिक्कालनियमो नास्ति स्थित्यादिनियमस्तथा॥न जपे कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वपि। स्वेच्छानियम उक्तो हि महामन्त्रस्य साधने ॥ वस्त्रासनस्थानदेह स्पर्शादिगेहबाधनात्॥ नास्त्यशुद्धिरिह क्वापि निर्विकल्पं मनश्चरेत् । सुगन्धि श्वेत लौहित्यकुसुमैरर्चयेत्ततः । वन्यैर्मरुकाद्यैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः ॥ पेयं चर्व्यं तथा चोष्यं भक्ष्यं भोगं गृहं सुखम् । सर्वंच युवतीरूपं भावयेद् यतमानसः ॥ कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्य्यात् समाहितः । यदि भाग्यवशेनैव कुलदृष्टिस्तु जायते ॥ तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत् । बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा सुन्दरीं तथा ॥ कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विभावयेत् । तासां प्रहारं निन्दाञ्च कौटिल्यमप्रियं तथा॥ सर्वथा न च कर्त्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत् । स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणम् ॥ स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्य मन्यथा स्वस्त्रियामपि । विपरीतरता सातु भविता हृदयोपरि ॥ नाधर्मो जायते सुभ्रु ! किंच धर्मो महान् भवेत् । स्वे-

संगतहो उस को स्पर्श कर ताम्बूल, मद्य, यथा रुचि भक्ष्य द्रव्य, मांस, दधी क्षौद्र दुग्ध, ऐक्षव, और भक्ताादि अनेक प्रकारके खाद्य स्वयं भक्षण और उस को प्रदान करके जप करे। इस विषय में दिक् काल का नियम और स्थित्यादि की भी व्यवस्था नहीं है, बलि और पूजा में भी इसी प्रकार कालादि का नियम नहीं है, केवल मनको निर्विकल्प (एकाग्र) करना चाहिये किसी प्रकार द्वैधभाव का आश्रय न करे, सुन्दर गंध युक्त श्वेत और लाल वर्ण के कुसुमसे एवं विल्व और मरुवकादि समस्त पुष्पद्वारा पूजा करै, तुलसीके द्वारा पूजा न करै, चर्व्य चोष्य लेह्य, पेय भोग और सुख; व गृह जिसमें मन आसक्तहो, उन सब को युवती रूप में भावना करै, यदि कुलजा स्त्री दिखाई दे तो सावधान होकर उसको नमस्कार करे, यदि भाग्यवश कुल दृष्टि संघटित हो, तो समकाल के समय ही उस की मन मन में पूजा करनी चाहिये। वह बाला हो यौवनोन्मत्ता, वृद्धा, सुन्दरी, कुत्सित और दुष्टा, जो कोई क्यों नहो, नमस्कार करके चिन्ताकरै। उसको कभी प्रहार न करै, निन्दा न करै, उनको कुटिलता न दिखावे अप्रिय अनुष्ठान न करै, भली भांति इन सब कार्यों को दूर करै, दूर न करने से सिद्धि में विघ्न होता है, स्त्री गणही देवता, स्त्री गण ही प्राण, और स्त्री गणही विभूषा हैं, इस कारण सर्वदा स्त्री संगी होना चाहिये, अन्यथा अपनी स्त्री का संसर्गी हो, उस स्त्री के हृदयोपरि विपरीतरताहोने से भी कुछ अधर्म नहीं होता; वरन महान् धर्म संचित होता है इस विषय में स्वेच्छाचार लिखा गया है, परमइष्ट

च्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेत् हृष्टमानसः॥ इत्याचारपरः श्रीमान् जप-पूजादितत्परः पानतः कुलतन्वींनां परतत्त्वे प्रलीयते ॥

कौलतन्त्रेऽपि—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कौलिकाचरणं यथा । पाने भ्रान्तिर्भवेद् यस्यघृणा स्याद्रक्तरेतसोः शुद्धौ चाशुद्धता भ्रांतिः पापशङ्का च मैथुने । स भ्रष्टः पूजयेद्देवीं चण्डीमंत्रं कथं जपेत् ॥ रोगी दुःखी भवेद्देवि ! रौरवे नरके वसेत् । पंचमात्तु परं नास्ति शाक्तानां सुखमोक्षयोः । भावरूपा च या देवी रेतःप्रीता सदानघ! । रेतसा तर्पणंतस्या मद्यैर्मांसैः समं प्रिये ! ॥ केवलैः पंचमैर्देवि ! सिद्धो भवति साधकः । ध्यात्वा कुण्डलिनीं शक्तिं रमन् रेतो विमुञ्चयेत् ॥ अमन्त्रा च यदा नारी रसाद् यत्नात्तु लभ्यते । आत्मदेहस्वरूपेण तत्कर्णे मंत्रमुच्चरेत् ॥ ततश्च शक्तिरूपा स्यात् भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । रम्भा च उर्वशी मुख्या या नारी गगने भुवि ॥ पाताले वा स्थिताया च तस्या नाथस्तु कौलिकः॥ तस्यापि वर्ज्या या नार्यस्तस्याः शृणु विधिं प्रिये ! गुरुरेव शिवः साक्षात् तत्पत्नी परमेश्वरी । मनसा कर्मणा वाचा रमणं

चित्त से आचरण करै, इस प्रकार आचार परायण और पूजादि में तत्पर होकर; कुलाङ्गनागणों का पान करने से परम तत्त्व में लयको प्राप्त होता है ॥

कौलतन्त्र में भी कहा है । हे देवि ! श्रवण करो, कौलका चरण कीर्त्तन करता हूं । पान में भ्रांतिमान, शोणित और शुक्र में घृणामान, शुद्धि में अशुद्धज्ञानवान् और मैथुन में पाप शङ्कावान् होने से, सर्व्वथा भ्रष्ट होजाता है देवीका पूजा में और उसके मन्त्र जप में फिर अधिकार नहीं रहता, रोग और दुःख समस्त सदा आक्रमण करते हैं, रौरव नरक में सदा वास होता है । पञ्च मकार की अपेक्षा शाक्तगणों के सुख और मोक्ष साधन का अन्य उपाय नहीं है । हे अनघे ! देवी चण्डिका भावरूप हैं इस लिये सर्व्वदा ही रेतः प्रिय हैं । इसीलिये मद्य और मांस की समान रेतःद्वारा उन का तर्पण करै । हे देवि ! साधक केवल पञ्चमकार तत्त्व द्वाराही सिद्धि लाभ करता है । कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करके, रमण करता हुआ, रेतः विसर्ज्जन करै, मंत्रहीन रमणी के रस और यत्न बल से प्राप्त होने पर, आत्म देह स्वरूप उसके कानमें मन्त्र उच्चारण करै, तो वह शक्तिरूप होकर भोग और मुक्ति प्रदान करती हैं, आकाश, पाताल अथवा पृथ्वीमें रम्भा और उर्व्वी प्रमुख जो सम्पूर्ण वाराङ्गना हैं, कौलिकही उनके नाथ हैं । तिनमें उन वर्ज्जनीय रमणी की विधि श्रवण करो । गुरुही साक्षात् शिव और उनकी पत्नीही साक्षात् महेश्वरी है । अतएव काय मन बचन से उनके सहित

तत्रत्रर्जयेत् ॥ तस्य देवपदे भक्तो मुक्तिं प्राप्य परां व्रजेत् । गुरोः स्नुषा गुरोः कन्या तथा च मन्त्रपुत्रिका ॥ एतस्या रमणं वर्ज्यं ब्रह्मघ्नं मानसेऽपि च । कौलिकस्य च पत्नी च सा साक्षादीश्वरी शिवे ! तस्या रमणमात्रेण कौलिको नारकी भवेत् । मातापि गौरवाद्वर्ज्या अन्या वा विहिताः स्त्रियः ॥ भूतियागे च कर्त्तव्ये विचारो मंत्रवित्तमैः । अन्यस्थाने विचारे च देवीशापः प्रजायते ॥ शिवहीना च या शक्तिर्दूरं तां परिवर्जयेत् । अभिषेकाद् भवेत् शुद्धिर्मन्त्रोच्चारणतः श्रुतौ ॥ पंचमेन च देवेशि ! सर्वपापैः प्रमुच्यते । केवलेनाद्ययोगेन साधको भैरवो भवेत् ॥ द्वितीयेन महेशानि ! पूजको ब्रह्मरूप भाक् । केवलेन तृतीयेन महाभैरवतां व्रजेत् ॥ चतुर्थेन तु तत्वे न भुवि पूज्यैकनायकः परे च परतां याति मम तुल्यः परेश्वरि ! पंचमेन भवेद्योगी सर्वसिद्धिपरायणः इतीदं कथितं देवि ! सुगोप्यअतियत्नतः ॥ न देयं पशवे देवि ! कुलनिन्दारताय च । कुलाचारगृहं गत्वा भक्त्या पापविशुद्धये॥ याचयेदमृतं ज्ञानं तदाभावे जलं पिबेत् । कुलाचारो हि यच्छक्त्या दत्तं पात्रन्तु भक्तितः ॥ नमस्कृत्य प्रगृह्णीयात् अन्यथा नरकं व्रजेत् ॥

संसर्ग परित्याग करै । गुरु की पुत्रवधू, गुरु की कन्या, अथवा गुरुकी मंत्रपुत्रिका, इनका भी संसर्ग वर्ज्जन करै,मन मनमें भी संसर्गी होनेसे ब्रह्महत्याके पातक का भागी होता है । हे शिवे ! कौलिककी पत्नी भी साक्षात् महेश्वरी है, अतएव उसके संसर्गमात्र से कौलको नरक गामी होना होता है, जननी को भी गौरव सहित वर्जन करै जननी की समान सम्पूर्ण विहित स्त्री भी वर्ज्जनीय हैं । भूतयाग के समयही विचार करै । अन्य स्थल में विचार करने से देवी शाप देती है । जो शक्ति शिव हीन है, उसको दूरसे ही विसर्ज्जन करै । अभिषेक और कर्ण में मन्त्र दान करने से शुद्धि संघटित होती है । हे देवेशि ! पञ्चमकार तत्त्व द्वाराही सर्वप्रकार का पाप दूर होता है । केवल आदि योग सेही साधक भैरव होजाता है द्वितीय योग में पूजा करने से ब्रह्म का स्वरूप प्राप्त होता है केवल तृतीय द्वारा आराधना करने से, महाभैरव होजाता है, चतुर्थ तत्त्व द्वारा पूजा करने से, एक नायक एवं मेरी समान होजाता है, पञ्चतत्व द्वारा पूजा करने से सर्व्व सिद्धि परायण योगी होता है । हे देवि ! मैंने जो यह कहा, अति यत्न से और अत्यन्त गुप्तरूप से इसकी रक्षा करै । हे देवि ! पशु और कुलनिन्दक को इसका दान न करै । कुलाचार गृह में गमन करके पाप शुद्धि के लिये भक्ति सहित ज्ञानरूप अमृत की प्रार्थना करै । उसके न होने से जल पान करै । कुलाचार शक्ति के द्वारा जो पात्र भक्तिपूर्वक दान करै । नमस्कार के पुरस्कार में उसे

अन्यत्रापि—

वृथा कालं न गमयेत् द्यूतक्रीड़ादिना सुधीः । गमयेद्देवतापूजाजपयागस्तवादिना ॥ गुरोःकृपालापकथास्तोत्रागमविलोकनैः । गमयेदनिशं कालं न वदेत् परदूषणम् ॥ प्रत्यक्षे वा परोक्षे वा प्रत्यहं प्रणमेद् गुरुम् । गुरोरग्रे पृथक् पूजामौद्धत्यञ्च विवर्जयेत् ॥ दीक्षां व्याख्यां प्रभुत्वञ्च गुरोरग्रे न कारयेत् । गुरुशय्यासनं यानं पादुकोपानहौ तथा॥ स्नानोदकं तथाच्छायां लंघनं न कदाचन। श्रीगुरुं कुलशास्त्राणि पूजास्थानानि यानि च ॥ भक्त्या श्रीपूर्वकम् देवि ? प्रणम्य परिकीर्त्तयेत् । गुरुनाम न भाषेत जपकालादृत प्रिये!॥श्रीनाथदेवस्वामीति विवादे साधने वदेत् उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् मन्त्रदः पिता ॥ तस्मान्मन्ये च सततं पितुरप्यधिकं गुरुम् । कुलाचारम् गुरुं देवं मनसापि न निन्दयेत् ॥ कुलस्त्रीवीरनिन्दाञ्च वर्जयेत् मतिमान् सदा। अन्तः शाक्ता वहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मता ॥ नानामूर्त्तिधराः कौलाः विचरन्ति महीतले ॥ निगमे तु—

गुरुणाखोक्तितः शिष्य उत्तिष्ठेदासनं त्यजेत् । गुरुणा सदसद्वापि यदुक्तम् तन्न लंघयेत् ॥ रमसं मैथुनं भिथ्या यो वदेदान्तिके गुरोः ।

श्रद्धा सहित ग्रहण करै इस के अन्यथा करने से, नरक में गमन करना होता है। अन्यत्र भी कहा है— सुबुद्धि व्यक्ति द्यूतक्रीडादि के द्वारा वृथा काल व्यतीत न करै देवताकी पूजा जप याग और स्तवादि द्वारा उसको बितावे। अधिक क्या गुरुकी कृपा अलापवार्ता स्तोत्र और आगम विलोकन इत्यादि द्वारा सर्वदा काल बिताने में प्रवृत्त होवे; पराये दूषणको दूर करै। प्रत्यक्ष अथवा अपरोक्ष में प्रतिदिन गुरुको प्रणाम करै। गुरुके सन्मुख में पृथक् पूजा और औद्धत्य त्याग कर और कभी दीक्षा व्याख्या और प्रभुत्व प्रकाश न करै। गुरुकी शय्या, आसन यान, पादुका, उपानह स्नानकाजल, छाया इन सबको कभी उल्लंघन न करै। श्री गुरु, कुलशास्त्र, पूजास्थान इन सबको भक्ति सहित प्रणाम करके, श्रीपूर्वक परिकीर्त्तन करै। हे प्रिये! जप समय के अतिरिक्त और किसी समय गुरुका नाम उच्चारण न करै। विवाद और साधन समय में श्रीनाथ देवस्वामी इसप्रकार कहना चाहिये। जनक और ब्रह्मदाता इन दोनों में मन्त्रदाता ही श्रेष्ठ है इसलिये गुरुको पिता की अपेक्षा भी सदा अधिक मान करना चाहिये। कुलाचार और गुरु इनकी मन २ में भी निंदा न करै, बुद्धिमान व्यक्ति सर्वदा कुल स्त्री और वीरगणों की निन्दा परित्याग करै। कौलगण अन्तर में शाक्त बाहिर शैव और सभा में वैष्णव इस प्रकार विविध मूर्त्ति धारण करके पृथ्वी में

स याति नरकम् घोरं भैरवेण च भाषितम्। संक्रांतिर्नवमी पूर्णा चाष्टमी च चतुर्दशी। एकादशी व्यतीपाते कर्मलोपं न कारयेत् ॥ तत्त्वहीनं कृतं कर्म जपकर्म च निष्फलम्। शाम्भवी कुप्यते तेभ्यो ब्रह्महत्या दिने दिने ॥

भावचूड़ामणौ च–

एकाकी निर्जने देशे श्मशान निर्जने वने। शून्यागारे नदीतीरे निःशङ्को विहरेत् मुदा ॥ वीराणां जपकालस्तु सर्वकालः प्रशस्यते। सर्वदेशे सर्वपीठ कर्त्तव्यं नात्र संशयः ॥

अन्यदुक्तम्—

स्वकुलान्ते पुरश्चर्या कार्या रात्रौ च नान्यथा। वेदहीने द्विजे जात्या यथा न श्रुतिसंस्क्रिया ॥ विष्णुभक्तिं विना देवि ! भक्तिर्नैव यथा भवेत्। शक्तिज्ञानं विना मुक्तिर्यथा हास्याय कल्पते ॥ गुरुं विना तथा तंत्रे नाधिकारः कथञ्चन। पतिहीना यथा नारी सर्वकर्मविवर्जिता ॥ कुलं विना तथा दिव्यो वीरो वा मम साधकः। नाधिकारीति कौलेषु तस्माद् यत्नपरो भव ॥ अविनीतं कुलं यस्य स कथं

विचरण करैं। निगम में कहा है, गुरु के दर्शन मात्र से ही शिष्य आसन त्याग करके उठ खड़ा हो। गुरु जो कहे सत् वा असत् होने से भी, इसका उल्लंघन न करै। गुरु के निकटस्थ मैथुन और मिथ्या कहने से, घोर नरक में गमन करना होता है। स्वयं भैरव ने भी यह कहा है। संक्रान्ति, नवमी पौर्णिमा, अष्टमी चतुर्दशी, एकादशी और व्यतीपात इन सम्पूर्ण में कर्त्तव्य कर्मका लोप न करै। तत्वहीन कर्म और फल हीन जप करने से शाम्भवी देवी कुपित होती हैं। और दिन दिन ब्रह्महत्या का भी पातक सञ्चित होता है। भावचूडामणि में कहा है–अकेले निर्जन स्थान में, निर्जन श्मशान में, शून्यगृह में, नदी पुलिन में निःशंक और मनके आनन्द में विहार करै। वीरगणों का जप काल सर्व काल में ही प्रशस्त है, सब स्थान एवं समस्त पीठ में करना चाहिये, इसमें सन्देह नहीं। प्रकारान्तर में भी उद्देश किया है यथा स्वकुलान्त में पुरश्चरण करै। रात्रि में उसको न करना चाहिये इस के अन्यथा न करै वेदहीन ब्राह्मण में जिस प्रकार श्रुति का संस्कार नहीं होता, विष्णुभक्ति हीन व्यक्ति में जिस प्रकार भक्ति नहीं होती, शक्ति ज्ञान विना जिस प्रकार मुक्ति हास्य का कारण होती है, गुरु के अतिरिक्त तंत्र में भी ऐसे ही किसी प्रकार अधिकार नहीं उत्पन्न होता। पतिहीन स्त्री जिस प्रकार किसी कार्य की नहीं, वीर अथवा मेरा साधक किसी प्रकार कुल विना भ्रष्ट होता है किसी प्रकार कौल में अधिकारी नहीं होता

मम पूजकः । तस्माद् यत्नात् तथा कार्यं यथास्याद विनयान्वितम् ॥ इति ॥

तन्त्र चूडामणौ च—

विष्णुभक्तो यदा देव ! कुलदीक्षापरो भवेत् । पुत्रदारधनं तस्य नाशयामि न संशयः ॥ कुलं देवं द्विजं हित्वा वैष्णवं देशिकं यदि । करोति कुलशिष्योऽसौ भ्रष्टो भवति साधकः । हविरारोपमात्रेण वन्हिर्दीप्तो यथा भवेत् । कुलदेवमुखात् तद्वत् तथा दीप्तो भवाम्यहम् । दीक्षणात् पूजनाद्धोमात्तथा दृष्टय वलोकनात् । यत्किञ्चित् ज्ञानमात्रेण पशुना निर्जितोमृतः ॥ साधकस्य महापापं दत्त्वा तस्य हराम्यहम् । पशोर्विद्यां समासाद्य यदि पूजापरो भवेत् ॥ तस्य वक्त्रं समालोक्य कुल वक्त्रं विलोकयेत् । पशूपदिष्टं यत्किंचित् क्रियते कुलसाधकैः ॥ तत्तत्कर्म महादेव ! अभिचाराय कल्प्यते । यदि दैवात् पशोर्विद्यां लभ्यते कुलजैर्बुधैः ॥ द्विजस्य कौलिकीं प्राप्य पुनर्विधा मुपालभेत् । अज्ञानाद् यत् कृतं कर्म नालोच्य कुलकौलिकीम् ॥ क्षमस्व देवि ! तत्पापं हर देवि ! कृपां कुरु । एवं प्रार्थ्य पुनर्दीक्षां कुर्यात् साधक सत्तमः ।

इसलिये यत्न परायण होवे जो कुल विनय हीन है, वह किस प्रकार मेरे पूजक हो सकते हैं ? अतएव जिससे विनयान्वित होजाय, यत्न पूर्वक उसको ही करैं ॥

तन्त्र चूड़ामणि में कहा है । हे देवि ! विष्णु भक्त के कुल दीक्षापरायण होने से मैं निःसन्देह उसकी स्त्री, पुत्र और धन विनाश करती हूं कुल देव ब्राह्म को त्याग करके, वैष्णव को गुरु करने से, साधक को निश्चय ही भ्रष्ट होना पड़ता है । घृत के आरोपण मात्रसेही अग्नि जिस प्रकार प्रज्वलित हो उठती है मैं कुल देव के मुखसेही उसी प्रकार जाग्रत् होती हूं । पशुके निकट विद्या ग्रहण करके; पूजापरायण होने से, उसका वदन देख कर कुल चक्र अवलोकन करै । कुल साधक पशुगणों को जो कुछ उपदेश करैं, हे महादेव ! वह समस्तभी अभिचार रूप से परिणत होता है । यदि दैवात् कुलज व्यक्तिगण पशुके निकट विद्या लाभ करले तो पुन र्वार कौलिक ब्राह्म के आश्रय में विद्या ग्रहण करैं । अज्ञान वशतः कुल कौलिक आलोचना करके जो किया है, हे देवि ? क्षमाकरके वह पाप हरण पूर्वक कृपा वितरण करो, इस प्रकार प्रार्थना करके, पुनर्वार दीक्षित होवें । इसीसे प्रकारान्तर में कहा है । यथा—मन और वाक्यद्वारा कुलाकुलगुरुकी निंदा करने से उस को पातक उत्पन्न

अन्यदुक्तं तत्रैव—

मनसा वचसा देव ! कुलाकुलगुरुं यदि । निन्दां करोति पापो यस्तस्योपरि च जायते ॥ एतत् शास्त्रप्रसङ्गन्तु एतत् पुस्तकदर्शनम् । पशोरग्रे न कर्त्तव्यं प्राणान्तेऽपि कदाचन ॥ कृत्वा सूर्यमुखं दृष्ट्वा स्मर्त्तव्यः कुलनायकः । पशुना यः सहालापः सहशय्या सहासनम् ॥ संसर्गश्चैव मेधात्र कुलीनस्य महात्मनः । पातकं न तु चैतेषां संचये पुण्यराशयः ॥ प्रभवन्ति न तीर्थानि न गङ्गा न च काशिका । महाविद्याजपाद्देव चत्वारि पातकानि च ॥ नश्यन्ति च न संसर्गः क्षयं याति कदाचन । अज्ञानात् पशुसंसर्गो यदि दैवात् प्रजायते ॥ तदा द्वादशवर्षाख्यं व्रतार्थं यत्नमाचरेत् । कुलीनायाः समीपस्थः कुलसेवापरायणः ॥ उच्छिष्टभोजी तन्नाम जापी च तत्पतेरपि । तदा चैतां समाभ्यर्च्य यत्नैश्च परितोष्य च ॥ शुचिर्भूत्वा परां विद्यां गृहीत्वा शुद्धिमाप्नुयात् । व्रताशक्तो यदि भवेत् सुवर्णं कुलतोषकृत् ॥ दद्यात् कुलाय पापानां क्षयार्थं कुलसाधकः । ज्ञानात् संसर्गमासाद्य शुद्धिं प्राप्नोति नैव च ॥ पशुभ्यो भाषणाच्चैव योनिमालभ्य साधकः । नाना क्लेशसमायुक्तो नरकान् प्रतिपद्यते ॥ न चैवं दीक्षयेन्नाम न

होता है। यह श्रेष्ठ शास्त्र और इस पुस्तक का दर्शन पशुगणों को प्राणान्त होनेपर भी न करावे। कराने से सूर्यमुख दर्शन करके कुलनायक का स्मरण करे। महात्मा कुलीन, पशु के सहित आलाप, शयन, अवस्थान और संसर्ग करने से, उन दोनों में जो पातक उत्पन्न होता है, वह क्षय होकर किसी क्रम से पुण्य संचय नहीं होता, तीर्थ गङ्गा और काशी भी उसको क्षय नहीं करसक्ती। अधिक क्या महाविद्या का जप करने से भी उल्लिखित चारों पातक क्षयको प्राप्त नहीं होते। अज्ञान वशतः दैवात् यदि संसर्ग संघटित हो तो द्वादश वर्षाख्य व्रतका आचरण करने के लिये यत्न करे। कुलीन के समीपस्थ और कुल सेवा परायण होकर, उसकी और उसके पति की उच्छिष्ट भोजन और नामजप सहित भक्ति पूर्वक उस की पूजा और परितोष विधान एवं पवित्र होकर, पर विद्या ग्रहण करने से, शुद्धि लाभ होती है। व्रत में असमर्थ होने से, कुल साधक कुल और पापक्षयार्थ सुवर्ण दान करे। ज्ञान पूर्वक संसर्ग करने पर किसी मत से भी शुद्धि लाभ नहीं होती। साधक पशु के सहित सम्भाषण करने से योनि आलभन पूर्वक नाना क्लेश भोग करके नरक परम्परा को प्राप्त होते हैं। यान मन, और वाक्य द्वारा भी पशुशास्त्राङ्ग पूजा करने से महापापी कुल पांशुल और त्याज्य होता है। निर्जीव काष्ठ, लोष्ट्र, शर्करा, तृण सर्व्वही में चिन्तिता होती हूं। केवल

चान्यदर्शनञ्चरेत् । मम शास्त्रकथाञ्चाग्रे प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ कर्मणा मनसा वाचा पशुशास्त्राङ्गपूजनम् । प्रकुर्वन्ति महापापास्त्याज्याश्च कुलपांशुलाः ॥ निर्जीवकाष्ठे लोष्ट्रे वा शर्करायां तृणेऽपि वा । सर्वत्र चिन्तिता चाहं न पशोर्मित्रविग्रहे ॥ चेतनाधिष्ठितं सर्वं सुखं दुःखं प्रकल्पितम् । तत्रैव चेतनाभावान्नियमो नास्ति तादृशः ॥ प्रसन्ना तेन गोसव्या कुलीनैः सिद्धिहेतवे ।

अन्यदुक्तं तत्रैव-

दीक्षायां कुलपूजायां शिष्यत्वे यदि वा गुरौ । लज्जापरं कुलं तत्र नित्यापि नित्यनिद्रिता ॥ अधस्तादृष्टिमात्रेण तस्य विद्या ह्यधोमुखी । निमीलनान्मृता विद्या बोधनान्मारयेद् ध्रुवम् ॥ पार्श्वावलोकनेनैव व्याधि दारिद्र्यपीड़िता । चतुर्दिगवलोकेन उच्चाटनगता भवेत् ॥ एतादृशं कुलं देव ! यदि कुर्यात् कथंचन तदा कुलगुरुं प्रार्थ्य कार्यंवीचयं ततः ॥ उपदेष्टा यदादेव! तदा पुत्री तु कन्यका पूजार्हाच तदा देवी तदामाता नसंशयः ॥ सर्वथा पितृपुत्रीभ्यां मूल-

---

पशु के मित्र विग्रह में नहीं । दीक्षा कुल पूजा शिष्यत्व और गुरु इन सब में कुल यदि लज्जा परायण होकर अधोदृष्टि करै तो उसकी विद्या अधोमुखी होती है। नेत्र बन्दकरने से विद्या में मृत्यु होती हैं, बोधन अर्थात् आत्मा गौरव अवलंबन करने से नष्ट होजाता है पार्श्व अवलोकन करने से व्याधि और दारिद्र्य पीडा उपस्थित होती है, चारों ओर अवलोकन करने से उच्चाटन गत होना पडता है। हे देवि ! यदि किसी भांति से इसप्रकार घटनाहो, तो कुलगुरुकी प्रार्थना करके उनको देखें। अन्य शास्त्रश और पशु इन से कभी न कहै, कहने से गुरु शिष्य दोनों को मैं शाप देती हूं। शिवागम में कहा है, चक्रेश्वर विचार विहीन होकर शक्तिकी उच्छिष्ट पान करने से घोर नरक में गमन करता है और कुलमार्ग से पतित होता है । इसलिये विचार करके शक्तिकी उच्छिष्ट यत्न सहित पान करै। भ्रांति रहित होकर तत्वपान और आनन्द करना चाहिये। शक्ति शिव और शिवही शक्ति हैं, और शक्तिही ब्रह्म, शक्तिही विष्णु शक्तिही इन्द्रादि देवगण, शक्तिही चन्द्र और समस्त, ग्रह, फलतः

योगेन दृश्यते। तत्कृते पापबुद्ध्या वै उभौ नरकगामिनौ ॥ चुम्बके अन्यशास्त्रज्ञे पशुग्रामे च भैरव ! । न वक्तव्यं न कर्त्तव्यं न च वाच्यं कथञ्चन ॥ एवं कृते गुरौ शिष्ये ममशापो भविष्यति ।

शिवागमे च—

शक्त्युच्छिष्टमविचार्य्य पिबेच्चक्रेश्वरो यदि ॥ घोरञ्च नरकं याति कुलमार्गे पतेद्ध्रुवम् । तस्माद्विचार्य यत्नेन शक्त्युच्छिष्टं पिबेत् सुधीः आनन्दं कारयेद्वीरस्तत्त्वं निर्भ्रान्तितः पिबेत् । शक्तिः शिवः शिवः शाक्तः शक्तिर्ब्रह्मजनार्दनः ॥ शक्तिरिन्द्रावधिः शक्तिः शक्तिश्चन्द्रो-ग्रहो ध्रुवम् । शक्तिरूपं जगत् सर्वं यो न जानाति नारकी ॥

वीरतन्त्रेऽपि—

स्नानादिमानसं शौचं मानसः प्रवरो जपः । पूजनं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ॥ सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् । न विशेषो दिवा रात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि ॥ सर्वदा पूजयेद्देवीं सुस्नातः कृतभोजनः । महानिश्यशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत् ॥

सम्पूर्ण जगत्ही शक्तिरूप है। जो व्यक्ति यह नहीं जानते, वही नारकी हैं। वीरतन्त्र में भी कहा है, मानस जपही जप, मानस स्नानही स्नान मानस शौचही शौच, मानस पूजाही पूजा और तर्पणादिही तर्पण है सम्पूर्ण कालही शुभकाल है, अशुभ काल किसी काल में भी नहीं है। दिन, रात्रि, सन्ध्या और महारात्रि किसी में भी दोष नहीं है। स्नान और भोजन करके सर्वदा देवीकी पूजा करै। महारात्रि में अप-वित्र प्रदेश में मन्त्रोच्चारण के सहित बलिप्रदान करै इसके द्वारा दिन में भी पञ्चतत्त्व से पूजा करै, पवित्र होनेपर फिर जो कहा है, हे वीरवन्दते ! रात्रि में ही पूजा करै। यह स्वतंत्र का बचन है। स्वतंत्रमें यह भी कहा है, शासन बशतः दिनमें पूजा न करै हविष्याशी और पुरश्चारी होकर जो व्यक्ति लक्ष जप करता है, इसमें दिनकी पूजामात्र पशुकी समान है। स्वतंत्रका यह वचन पुरश्चरण विषयक है छिन्नमस्ता

एतेन दिवसेऽपि पञ्चतत्त्वेन संपूजनं कार्य्यमिति सूचितम् । यत्तु।
रात्रावेव महापूजा कर्त्तव्या वीरवन्दिते ! ।

इति स्वतन्त्रवचनम् ।

न दिने सर्वथा कार्य्या शासनात् मन्त्रसुव्रते ! । हविष्याशी दिवा लक्षं पुरश्चारी तु यो जपेत् । तत्र मात्रं दिवा पूजा पशुवद्बुधवन्दिते !

इति स्वतन्त्रवचनम्, तत्तु पुरश्चरणविषये बोद्धव्यमिति । तत्र रात्रावेव इति शब्दस्वरसात् । सामान्याधिकारपर इति भ्रमः । काली तन्त्रादिस्वरसाच्च । तत्तु जपेन कालनियमम् इति पुरैव लिखितम् ।

एवं छिन्नमस्तातन्त्रेऽपि—

सिद्धमन्त्रे न दोषः स्यान्नाशौचे नियमेऽपि च । न कल्पना दिवारात्रौ न च सन्ध्यावसानकम् ॥ सदैव पूजयेन्मन्त्री मैथुने तु विशेषतः ।

किन्तु—न शश्येत् पतितां नग्नामुन्मत्तां प्रकटस्तनीम् ॥ दिवसे न रमेन्नारीं तद्योनिं नैव वीक्षयेत् ॥

कुलार्णवेऽप्येवम् । तत्प्रकरणत्वात् पुरश्चर्णे वा इति ।

अथ रुद्रयामले ।

पशोः सम्भाषणाद्देवि ! मन्त्रसिद्धिर्न जायते । पशुस्तु द्विविधो देवि ! दीक्षितोऽपि भवेत् पशुः दीक्षितश्च कुलाचार निन्दको द्विविधः पशुः । गोलकेन सहालापात् स्पर्शात् सम्भावसंस्कृतात् ॥ न सिध्यति

तंत्र में भी कहा है, सिद्ध मंत्र में अशौच वा अनियम होने से दोष नहीं है । उसमें दिन रात्रि वा सन्ध्यावसान कल्पना भी नहीं है । सर्वदाही पूजा करे ॥

रुद्रयामल में कहा है—हे देवि ! पशु सहित सम्भाषण करने से मंत्र सिद्धि नहीं होती । पशु द्विविध हैं दीक्षित भी पशु होता है, दीक्षित और कुलचार निंदक यह दो प्रकार के पशु हैं. हे महेशानि ! गोलोक के सहित आलाप उसको स्पर्श और उसके सद्भाव करने से भी मैं सत्य २ कहता हूं, कि सिद्धि लाभ नहीं होती । जिनके मन में दुवधा है, उसको भी सिद्धि नहीं होती । जप करने से सिद्ध होता है, इसलिये इसको परित्याग करके जप करे, तो सिद्धि लाभ होती है । हे कुलेश्वरी ! वीरहस्ता,

महेशानि ! सत्यं सत्यं वदाम्यहम् । विकल्पिता न सिध्यन्ति जपात् सिध्यन्ति लोकदाः ॥ तस्मादेतत् परित्यज्य सिद्धिः स्यात् केवलाज्जपात् । वीरहत्या वृथापानं वीरजायानिषेवणम् ॥ महापातकमित्याहुः कौलिकानां कुलेश्वरि ! । अर्थाद्वा कामतो वापि लौल्यादपि च यो नरः लिङ्गयोनिरतो मंत्री रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरिविरचिते
श्यामारहस्ये पुरुषार्थ साधनाचार विवरणनामा
अष्टमः परिच्छेदः ।

अथ नवमः परिच्छेदः ।

अथ कुण्डगोळ्वादिग्रहणविधिः ।

तदुक्तम् तन्त्रान्तरे ।

आनीय प्रमदां मत्तां दीक्षितां यौवनान्विताम् । स्वकान्तां परकान्तां वा घृणालज्जाविवर्जिताम् । परांमुखोपविष्टस्तु निशायामर्द्धरात्रके । हेतुयुक्तं सताम्बूलं दत्त्वा न्यासान् विधाय च ॥ मौली कुन्तल कर्षणं नयनयोराचुम्बनं गण्डयोर्दन्तेनाधरपीड़नं हृदि हतिर्मुष्ट्या च

वृथापान, और वीरपत्नी गमन यह कई कार्य कौलिक गणों के महापाप कहकर परिगणित हैं। जो व्यक्ति अर्थ काम और लोभ वशतः लिंगयोनि में रत होता है वह रौरव नरक में गमन करता है ॥

इतिश्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरि विरचित
श्यामारहस्येभाषाटीकासहितपुरुषार्थसाधनाचारविवरण
नामअष्टमपरिच्छेदसमाप्त ॥ ८ ॥
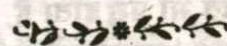
अब कुण्ड गोलोद्भवादि ग्रहण विधि कहीजाती है । तन्त्रान्तर में कहा है । यथा-अपनी स्त्री हो, अथवा पराई स्त्री हो, मत्त दीक्षित, यौवनान्वित और घृणा लज्जा रहित, स्त्रीको लाकर परांमुख बैठाल हेतु युक्त ताम्बूल प्रदान सहित वक्ष्यमाण मंत्र

नाम्नो मगे। कक्षा कण्ठकपोलमण्डलकुचश्रोणीषु देया नखाः।सीमंते लिखनं नखैरुरसिजं गृह्णीतिगाढं ततः॥ कुर्वीताविरतं मनोभवगृहे मातङ्गलीलामिति॥ जंघांगुष्ठपदोगुल्फहननं चान्योन्यतः कामिनोः॥ अ ई क्षुं ह्रीं ब्लें अमुकीं द्रावय स्वाहा इति विन्यसेत्। ऐं ह्रीं चपले चल च्चित्तान्तु रेतो मुंच द्वयं पठेत्॥ ब्लुं क्लीं क्रीं क्लीं देवेशि ! द्राविणीबीजमुत्तमम्। तस्यां योनीन्स्त्रेद्रियां मैथुनं कारयेत् प्रिये!॥ शुद्धमन्त्रौषधेनैव योनिप्रमथनं चरेत्। मथ्यमाने पुनस्तस्यां जायते तत्त्वमुत्तमम्॥ गृह्णीयात् तत् प्रयत्नेन द्रव्यं कुलोद्भवम् शुभम्। नि शङ्कमाहितं द्रव्यं गृहीत्वा तेन पूजयेत्॥ सान्निध्यं जायते देवि! सर्वकाममुपालभेत्। कुण्डोद्भवामृतम् द्रव्यं कथितं दुर्लभम् मया॥

पञ्चमीयामलेऽपि—

चर्व्यं चोष्यं निवेद्याथ वस्त्रालङ्करणादिकम्। पूजयेदक्षतैः शुक्रैस्तस्या मदनमन्दिरम्॥ भावयेत् कामतत्त्वेन तासु तत्त्वं न चोत्सृजेत्। शुद्धमंत्रौषधेनैव मथयेन्मदनालयम्॥ मथ्यमाने पुनस्तस्या जायते तत्त्वमुत्तमम्। गृह्णीयात् तत् प्रयत्नेन द्रव्यं कुण्डोद्भवम् शुभम्॥

से न्यास करै। यथा—अ ई इत्यादि। तदीय कुलगृह में विद्यान्यास करके मैथुन धर्म में प्रवृत्त होना चाहिये। फिर शुद्ध मंत्रौषधी के द्वारा उस रति गृह को मथै। मथने से उसमें उत्तम तत्व उत्पन्न होता है। इसकाही नाम कुण्डोद्भव द्रव्य है। यह पवित्र द्रव्य अत्यन्त यत्न सहित ग्रहण करै। इस में किसी प्रकार की शंका न करै। ग्रहण करने के पीछे उसके द्वारा पूजा करने से देवी का सान्निध्य (निकटता) लाभ और संपूर्ण कामना पूर्ण होती हैं। यह मैंने इस कुण्डोद्भव अमृत का वर्णन किया। यह अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ है। पंचमी यामल में कहा है—चर्व, चोष्य, वस्त्र और अलंकारादि निवेदन करके अक्षत और शुक्र द्वारा उस के कुल मंदिर की पूजा और काम तत्त्व द्वारा भावना करै। उस में कभी तत्त्व उत्सर्जन न करै। शुद्ध मंत्रौषध द्वारा तदीय कुल गृह मथित करै। मथन करने से उस में पुनर्वार उत्तम तत्व उत्पन्न होता है। वह कुण्डोद्भव शुभ द्रव्य यत्न पूर्वक ग्रहण करै।

अत्र शुद्ध मंत्रौषधका वृतान्त कहते हैं। कुलोड्डीश में कहा है। यथा—'ह्रीं आगच्छ शुक्र स्तम्भन कारिणि स्वाहा" यह मंत्र उच्चारण पूर्वक सूर्य के उपराग समय में चमेलीकी जड़ लावे। अनन्तर उसका धारण करके शुक्र स्तम्भन समाचरण करै। हे देव! इसी प्रकार विधानानुसार गोलोद्भव द्रव्य भी ग्रहण करै। कुलजा, दीक्षीत, मत्त, पति-

अथ शुद्धमन्त्रौषधं यथा तदुक्तं कुलोड्डीशे—

मयागच्छ पदं शुक्रस्तम्भनकारिणि ठद्वयम् ॥ अनेनार्कोपरागे च जातीमूलं समानयेत् । एतद्धृत्वा साधकेन्द्रः शुक्रस्तम्भनमाचरेत् ॥ इति । गोलोद्भवं तथा देव ! गृह्यते च विधानवित् । कुलजां दीक्षितां मत्तां पतिहीनां विचक्षणाम् ॥ शक्तियोग्यां स्वरूपाञ्च अनपत्यां समानयेत् । सुंदरीं शोभनां दिव्यां पीनोन्नतपयोधराम् ॥ द्विरष्टवर्षदेशीयां सदा कामाभिलाषिणीम् । पूर्वोक्तक्रमयोगेन कृत्वा न्यासादिकं ततः ॥ तत्त्वं प्रगृह्य यत्नेन पूजार्थं साधकोत्तमः । इदं गोलोद्भवं द्रव्यं देवतासृष्टिकारकम् ॥ अनेन पूजयेद् यो हि सर्वकाममुपालभेत् । स्वयम्भू कथयिष्यामि पूजार्थं साधकोत्तमः ॥ पूर्ववन्न्यासवर्य्यंतु कार्यंदेवि ! सुंदरि । तस्यास्तु मदनागारे पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥ स्वयमक्षोभितो भूत्वा साधकः पञ्चमीं यजेत् । स्वेच्छा ऋतुमती शक्तिः साक्षाद्देवि सुरेश्वरि ! ॥ तस्याः पुष्पं स्वयं यत्तद्रक्षणीयं प्रयत्नतः । वस्त्रालङ्कारपुष्पेण शक्तिञ्च पूजयेत् सदा । यथा काले तथा पुष्पं स्वयं तद्गोपयेत् सकृत् । गृहीत्वा तत्प्रयत्नेन स्वयम्भू कुसुमम् चरेत् ॥ स्वयम्भूपुष्पयोगेन साक्षतेन समर्चयेत् । विद्यां स्वप्नावतीं जप्त्वा क्षिप्रमाकर्षणादिकम् ॥ देवताश्च महानागा राक्षसा दानवाश्च ये राजानश्च स्त्रियः सर्वा नित्यं वश्या भवन्ति हि ॥

हीन विचक्षण, शक्तियोग्या, स्वरूपा, अनपत्या, सुन्दरी शोभना, दिव्यपीनोन्नतपयोधरा, षोडशवर्ष देशीय, और सर्वदा कामाभिलाषिणी रमणीको लाकर, पूर्वोक्त क्रमयोगानुसार न्यासादि विधान और फिर पूजाके अर्थ यत्न पूर्वक तत्व ग्रहण करै। इसका ही नाम गोलोद्भव द्रव्य है। यह देवताओंका भी सृष्टि कारक है। जो व्यक्ति इसके द्वारा पूजा करता है, उसकी समस्त कामना पूर्ण होती है। अब स्वयम्भू का कथन करते हैं साधकोत्तम पूजाके अर्थ पूर्वकी समान न्यास चय विधान करै। उसके कुलागार में परमेश्वरीकी पूजा और स्वयं क्षोभ रहित होकर पंचमीकी पूजा करै देवी शक्ति इच्छानुसार ऋतुमती होती है। उनके उस पुष्प की स्वयं अत्यन्त यत्न सहित रक्षा करै। वस्त्र, अलंकार और पुष्प द्वारा सर्वदा शक्ति की पूजा करनी चाहिये। शक्ति स्वयं यथा समय में वह पुष्प सकृत् गुप्त करती हैं। यत्न पूर्वक उसको ग्रहण करके स्वयंभू कुसुम रूपमें व्यवहार करै। शीघ्रता सहित आकर्षणादि जप करके अक्षत सहित स्वयम्भू द्वारा स्वप्नावती विद्याकी पूजामें प्रवृत्त होना चाहिये। तो देवगण, महानागगण, राक्षसगण, दानवगण, राजागण, और स्त्रीगण आदि नित्य सभी वशीभूत होते हैं।

मुण्डमालायाम् ।

स्वयम्भू कुसुमं देवि ! त्रिविधं भुवि जायते। आषोड़शादनूढ़ाया उत्तमा सर्वसिद्धिदा ॥ बलात्कारेण ऊढ़ाया मध्यमा भोगवर्द्धिनी । रजोयोगवशादन्या चाधमा फलदायिनी ॥

तन्त्रचूड़ामणौ च—

शृणु वत्स ! कुलद्रव्यमाहात्म्यं परमं शुभम् यत् प्राप्य कुलदेवेन लभ्यते वाञ्छितं महत् ॥अमावस्या तिथौ देवी स्वयम्भू मध्यवर्त्तिनी। अमृतं वर्षते सा तु त्रिदिनं पृथिवीतले ॥ तस्यां तिथौ कुलदेवि ! यदि विद्यां समुचरेत् । पूर्वसेवा भवत्यत्र मन्त्रुच्चारणमेव हि ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलं वीक्ष्य जपं कुरु । दृष्ट्या च अमृतं देवगलितं परिगृह्य च ॥ साधयेत् साधनं सर्वं कुलाचारस्य सिद्धये । शिवहीना यदा शक्तिः सर्गादौ वर्षते यतः ॥ तदेव परमं द्रव्यं स्वयम्भूकुसुमाख्यकम् । स्वयम्भूकुसुमं द्रव्यं त्रैलोक्ये चापि दुर्लभम्॥क्वचिद् गन्धर्वराजेन लभ्यते वा नराधिपैः । यदि तल्लभ्यते देव ! लाक्षारससमन्वितम् । कस्तूरीकुंकुमाक्तञ्च वटींकृत्वा सुगोपयेत् । मन्त्रराजं समालिख्य पूजयेद् यदि साधकः ॥ एतेनाक्तयोगेन मधुमतीसिद्धिमानयेत् । सुप्तादिदोषयुक्ता

मुण्डमाला में कहा है, हे देवि ! पृथ्वी में तीन प्रकार स्वयम्भू कुसुम उत्पन्न होता है। प्रथम सोलह वर्ष पर्यन्त अनूढा। इसके द्वारा उत्तमा सिद्धि लाभ होती है। दूसरा बलात्कार सहित ऊढा, यह मध्यम सिद्धि विधान करता है। तीसरा रजो योगसे उत्पन्न, इसके द्वारा अधम सिद्धि लाभ होती हैं। तंत्र चूड़ामणि में कहा है, हे वत्स ! कुल द्रव्यका माहात्म्य श्रवण करो। जिसके प्राप्त होने से कुल देव महत् वांछित लाभ करते हैं। देवि ! अमावस्या तिथि में स्वयम्भू मध्य वर्त्तिनी होकर तीन दिन पृथ्वी तल में अमृत की वर्षा करती हैं। दृष्टि द्वारा वह देव गलित अमृत ग्रहण करके कुलाचार सिद्धिके लिये समस्त साधन का साधन करै। शक्ति शवहीन होकर सृष्टिकी आदिमें वर्षण करती हैं, इसी लिये उस परम द्रव्यको स्वयम्भू कुसुम कहते हैं। यह स्वयंभू कुसुम त्रिभुवन में दुर्लभ है। गंधर्वराज अथवा राजा लोग कदाचित् ही उसको प्राप्त होते हैं। हे देव ! यदि उसको लाभ किया जाय, तो उसकी लाक्षारस, कस्तूरी और कुंकुम से संयुक्त वटी करके अतीव गुप्तभाव से रक्षा करै। साधक मंत्र राज लिखकर यदि इसकी पूजा करता है तो देवी मधुमती सिद्धि समाधान करती है। अधिक क्या, जो सम्पूर्ण मंत्र और विद्या सुप्तादि दोष युक्त कहकर परिगणित हैं; इस प्रयोग से वह

ये मन्त्रा विद्याश्च कीर्त्तिताः॥ प्रबुद्धाश्च तत्प्रयोगेण यावत् सा पुनरागता। ततः प्रयोगं विद्यानां मन्त्रादीनाञ्च कारयेत्॥ एवं प्रबुद्धा भवति नैव तादृक् कदाचन। एतत् त्रयाणां मध्ये तु स्वयम्भूकुसुमं महत्॥

श्रीक्रमेऽपि—

कस्तूरीकुंकुमं रक्तचन्दनागुरुकादिकम्। नानासुगंधिकं दत्वा एकीकृत्य तु साधकः॥ एतेनाक्षतयोगेन पूजयेत् परमेश्वरीम्। स्वयम्भूकुसुमैः पूजां प्रत्यहं यः समाचरेत्। तस्य मधुमतीसिद्धिरधीना देवि! जायते॥

अथ दूतीयजनविधिः—

याममात्रगते रात्रौ कुलगेहगतः पुमान्। ताम्बूलपूरितमुखो धूपामोदसुगन्धिभि॥ रक्तचन्दनलिप्ताङ्गो रक्तमाल्यानुलेपितः। रक्तवस्त्रपरीधानो लाक्षारुणगृहेस्थितः॥ रक्तमाल्येन संवीतो रक्तपुष्पविभूषितः॥ पञ्चीकरणसङ्केतैः पूजयेत् कुलनायिकाम्॥

कुलनायिका यथा। तदुक्तं तत्रैव—

नटी कपालिनी वेश्या पुक्कसी नापिताङ्गना। रजकी रञ्जकी

सम्पूर्ण प्रबुद्ध होती हैं। इसीलिये विद्या और मंत्र सबका प्रयोग करना चाहिये। तो वह समस्त इसी प्रकार प्रबुद्ध होते हैं, इन तीनोंमें स्वयंभू कुसुमही प्रधान है। श्रीक्रममें भी कहा है, कस्तूरी, कुंकुम, लालचंदन अगर इत्यादि अनेक प्रकारके सुगंधिक एकीकृत और दान करके अक्षत योग में परमेश्वरी की पूजा करै, जो व्यक्ति प्रति दिन स्वयंभू कुसुम द्वारा पूजा करता है मधुमती सिद्धि उसके आधीन होती हैं॥

इसके उपरान्त दूतीपूजादि लिखते हैं। रात्रिके याममात्र वीतने पर धूपामोद सुगन्धि सहित ताम्बूल मुखमें पूर्ण करके रक्तचन्दन से लिप्तांग रक्तमाल्य से अनुलेपित रक्तपुष्प से अलंकृत, और रक्तवस्त्र से आवृत होकर, कुलगृह में गमन करके लाक्षारुण गृह में अवस्थान पूर्वक पंचीकरण संकेत द्वारा कुलनायक की पूजा करै। कुलनायिका यथा उसमेंही कहा है। नटी, कपालिनी, वेश्या, पुक्कसी, नापितांगना, रजकी रञ्जकी

चैव सैरिन्ध्री च सुभाषिणी ॥ घटिका घटिका चैव तथा गोपालकन्यका । विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव वराङ्गनाः ॥ गुरुभक्ता देवभक्ता घृणालज्जाविवर्जिताः । संगोपनरताः प्रायस्तरुण्यः सर्वसिद्धिदा ॥ एवं यथोदितां प्रसूनतूलिकोपरि संस्थाप्य पूजामारभेत् ।

तदुक्तं तत्रैव—

अद्वैताचारसम्पन्नां घृणालज्जाविवर्जिताम् । सदनुष्ठाननिरतां सात्विकीं भक्तिसंयुताम् ॥देवताभावसंयुक्तां गुरुभक्तां दृढव्रताम् । ईर्षालस्येन रहितां समयां भक्तवत्सलाम् ॥ चातुर्य्यौदार्य्यदाक्षिण्यकरुणादिकलान्विताम् । रूपयौवनसम्पन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम् ॥ सदा परिगृहीतां वा यद्वा सङ्केतमागताम् । अथवा तत्क्षणायातां मदनानलतापिताम् ॥ विलिप्तां रक्तगन्धेन रक्ताम्बरविभूषिताम् । सुगन्धिबद्धकुसुमां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ स्वधूपधूपितां तन्वीं दूतीकर्मणि योजयेत् । एवं भूतां यजेत्ताञ्च प्रसूनतूलिकोपरि ॥ व्यङ्गाङ्गीं विकृताङ्गीं वा सविकल्पकमानसाम् । वर्षीयसीं पापरतां क्रूरामत्यन्तलोलुपाम् ॥ अभक्ता मनसां दीनां वर्जयेत् साधकोत्तमः । समानीय कुलं सोऽपि गुरुभक्तमनन्तरम् ॥ स्नातां शुद्धदुकूलादि अनुलेपनशोभि

सैरिन्ध्री, घटिका और गोपालकन्या इन सबमें ही भली भांति, वैदग्ध्य युक्त, वरांगना गुरुभक्त, देवभक्त, घृणा लज्जा रहित, संगोपनरत और प्रायः सबही तरुणी और सब हो सब सिद्धिप्रद होती हैं । इस प्रकार प्रसूनतूलिका के ऊपर स्थापन करके यथोक्त विधान से पूजा का आरम्भ करै । उसमें ही कहा है । यथा, अद्वैताचारयुक्त घृणा लज्जा रहित सद्अनुष्ठान निरत, सत्वगुणान्वित, भक्तिसम्पन्न, देवता के प्रति सद्भाव शालिनी, गुरुभक्ति परायण दृढ़व्रत, ईर्षारहित, आलस्य विहीन भक्तवत्सल, चातुर्य्य (चतुरता) औदार्य (उदारता) दाक्षिण्य और कारुण्यादि सम्पन्न रूप यौवन विशिष्ट शील सौभाग्य शालिनी, सर्वदा परिगृहीत अथवा संकेत प्राप्त (मार्गमें प्राप्त हुई) किंवा तत्क्षणात् उपस्थिता (तत्काल प्राप्त हुई) कामानल—सन्तापित रक्तगन्ध से विलिप्त रक्तवस्त्रसे विभूषित, सुगन्धित कुसुमबद्ध, सर्वाभरण—सुशोभित स्वधूपधूपित, कृशतनु, ऐसी स्त्रीको दूती कार्य्य में नियोजित और प्रसूनतूलिकाके ऊपर पूजा करै । जिसका अंगविकृत, वा व्यंगभावयुक्त जिसका मन द्वैतभाव युक्त, जिसको लाभ अधि

नम् । स्वलंकृतंगतं श्रान्ति स्वागतं चासनं तथा ॥ निवेश्य तूलिका-मध्ये प्रसूनेन सुगन्धिना । चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुंकुमादिभिः ॥ समाकीर्णे स्वपर्य्यङ्के पूजयेत् कुलनायिकाम् । अङ्गन्यासकरन्यासौ प्राणायामस्ततः परम् ॥ विधायमातृकान्यासं कुलाङ्गेऽपि प्रविन्यसेत्। ततः पूर्वोक्तविधिना घटार्घ्यस्थापनादिकम् । विधाय तद्वराङ्गेषु पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥

तदुक्तं तत्रैव–

पूजयेदपि पर्य्यङ्कमध्ये मण्डूकमग्रतः । कालाग्निरुद्रमाधारशक्ति कूर्ममनन्तकन् ॥ वराहं पृथिवीं कन्दं मृणालं केशराण्यपि । पद्मञ्च कर्णिकाञ्चैव मण्डलञ्च समर्च्चयेत् ॥ धर्मं वैराग्यमैश्वर्यं ज्ञानमज्ञानमेव च ।अनैश्वर्यं च वैराग्यमधर्ममपि पूजयेत्॥ आत्मतत्त्वं ज्ञानतत्त्वं परतत्वञ्च पूजयेत् । गन्धपुष्पाक्षतादीनि दत्वा तत्रैव धूपयेत् ॥ तस्योपरि कुलं स्थाप्यं पूजानुष्ठानमेव च । पूजयेच्च ततस्तस्यां पंचकामान् समाहितः ॥ ह्रीं चैव कामबीजं क्लीं कन्दर्पो हुं च मन्मथः । ब्लुं मकरकेतनश्चैव स्त्रीं चैव हि मनोभवः ॥ ओंकारादिनमोऽन्तं च कुसुमैर्गन्धसंयुतैः । अर्चयित्वा

प्रबल, जिसकी प्रवृत्ति पापमें आसक्त जिसके हृदयमें कुटिलता, जिसकी भक्ति, जिस का मन अति दीन और जिसकी अवस्था अधिक हुई है, इस प्रकारकी रमणीको वर्ज्जन करै। अनन्तर गुरुभक्त कुल आनयन होकर श्रम दूर करने से उसको स्वागत पूर्वक बैठाले। इसके उपरान्त तूलिका में निवेशित करके सुगन्धित, कुसुम, चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी, और कुंकुमादि द्वारा समाकीर्ण पर्य्यङ्क में कुलनायककी पूजामें प्रवृत्त होवे। प्रथम अङ्गन्यास और करन्यास, फिर प्राणायाम, तिसके पीछे मातृकान्यास, विधान करके कुलाङ्ग में भी न्यास करै, अनन्तर पूर्वोक्त विधानसे घट अर्घ्य स्थापनादि विधान करके तिसके वराङ्ग में परमेश्वरी की पूजा करनी चाहिये। उसमें ही कहा है, यथा—पर्य्यङ्क में प्रथम मण्डूकका। फिर कालाग्नि, रुद्र, आधार शक्ति, कूर्म, अनन्त, वराह, पृथिवी कन्द, मृणाल, केशर समूह, पद्मकर्णिका और मण्डल इन सबकी अर्च्चना एवं धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, ज्ञान अज्ञान, अनैश्वर्य, अवैराग्य और अधर्म इनका पूजा करै। फिर आत्मतत्व, ज्ञानतत्व और परतत्वकी पूजा करकेगन्ध, पुष्प और अक्षतादि दान करके उससे ही धूपित करै, अनन्तर उसके ऊपर कुल और पूजानुष्ठान करके समाहितहो इसमें पञ्चकाम की अर्च्चना करनी चाहिये। ह्रीं क्लीं इत्यादि मंत्रसे गन्ध

चतुर्दिक्षु पूजयेत् कुलनायकः ॥ वटुकं भैरवंचैव दुर्गांच क्षेत्रपालकम् ॥

तन्त्रान्तरे च-

वाग्भवं कामबीजं च स्त्रीबीजं कामराजकम् । हसक्लेमात्मकं दत्वा आधारशक्तिमुच्चरेत् श्रीपादुकां ततो दत्वा पूजयामि वदेत्ततः । अनेन मनुना तस्या ललाटे सुमनोहरम् ॥ त्रिकोणं तत्र संलिख्य सिन्दूराद्यैर्वरानने ! ॥

उत्तरतन्त्रे च-

तस्या मूर्ध्नि त्रिकोणंच यन्त्रमालिख्य साधकः । महाप्रेतासनं मध्ये अधो बालांच पूजयेत् ॥ मौली गणेशं केशाग्रे कुलाध्यक्षं ललाटके दुर्गां भ्रुवोस्तथा लक्ष्मीं रसनायां सरस्वतीम् ॥ स्तनद्वये वसन्तं च मदनं च प्रपूजयेत् । मुखे सुधाकरं पृष्ठे ग्लुं बीजानन्तरोदिते ॥ दक्षिणांशं समाश्रित्य आशिरश्चरणावधि । पूज्याः कामकलास्तस्य साधकाङ्गेषु साधकः ॥ श्रद्धाप्रीतीरतिश्चैव भूतिः कान्तिर्मनोरमा । विमला मोदिनी घोरा मदनोत्पादिनी मदा ॥ मोहिनी दीपनी चैव शोधिनी शाङ्करी तथा ॥ रञ्जनी चैव मदना कला स्वरविभूषिता ॥ ततश्चन्द्रकलाः पूज्या आशिरश्चरणावधि । पूष्ठा वशा च सुमना रतिः

पुष्पादि द्वारा पूजा करके चारों ओर वटुक, भैरव, दुर्गा, और क्षेत्रपालादि की पूजा करै । तन्त्रान्तर में भी कहा है-प्रथम "ऐं क्लीं" इत्यादि प्रयोग करके आधार शक्तिका उच्चारण और फिर श्रीपादुका पद प्रयोग करके "पूजयामि" कहकर । इस मंत्र से उस के ललाट में सिन्दूरादि द्वारा सुमनोहर त्रिकोण लिखकर इत्यादि । उत्तर तंत्रमें भी कहा है तिसके मस्तक में त्रिकोण यन्त्र लिखकर मध्यमें प्रेतासनके अधोभाग में बाल के मौलि में गणेश के केशाग्र में कुलाध्यक्ष के ललाट में दुर्गा के दोनों भौओं में लक्ष्मी को जिह्वा में सरस्वती के दोनों स्तनों में वसन्त के और मदन के मुख में पूजा करै और पृष्ठ में "ग्लुं" बीजका उच्चारण करना चाहिये । अनन्तर इसके दक्षिणाँशको आश्रय करके चरणसे मस्तक पर्य्यन्त कामकला सबकी पूजा करै. श्रद्धा, प्रीति रति, भूति कान्ति विमला मोदिनी, घोरा, मदनोत्पादिनी, मदा, मोहिनी, दीपनी, शोधनी शङ्करी, रञ्जनी और मदना इनका नाम कला है । चरण से मस्तक पर्यन्त उन उन चन्द्रकला की भी पूजा करनी चाहिये, पूष्ठा, वशा, सुमना, रति, प्रीति धृति, सिद्धि, सौम्या, मरीचि

श्रीर्तिर्भूतिस्तथा ॥ सिद्धिः सौम्या मरीचिश्च तथा चैवांशुमालिनी । मदिरा शशिनीच्छाय तथा सम्पूर्णमण्डला ॥ तुष्टिश्च अमृता चैव पूज्याश्चन्द्रकला इमाः । स्वरैरेव प्रपूज्या हि सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥

ललिताव्याख्यादीपिकायान्तु—

भगे तदीये विद्यन्ते नाड्यस्तिस्रः प्रधानिकाः एका तु नाडिका सौरी चान्द्री चान्या च नाडिका ॥ आग्नेयी चापरा ज्ञेया पूजयेत्ताश्च साधकः । अम्बु स्रवति चान्द्री हि पुष्पं स्रवति भानवी॥ बीजं स्रवति चाग्नेयी तास्तु नामभिरर्चयेत् वाग्भवाद्यैर्नमोयुक्तः पूजयेत् सुप्रसन्नधीः ॥

उत्तरतन्त्रेऽपि—

पूजयेन्मदनागारे रक्तगन्धेन चर्चितं । भगमालामनुं प्रोच्य त्रितारानन्तरं तथा ऐं ह्रीं श्रीं हुं क्लुं क्लिन्ने ततः परम् । सर्वाणीति भगानीती वशमानय मे ततः । स्त्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं क्लीं भगमालिन्यै नमः स्वाहा पूजयित्वा तु तच्चक्रं गन्धैः पुष्पैस्तथाक्षतैः । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैः कुलसाधकः ॥ विधाय नन्दितां तांच तदुच्छिष्टं स्वयं हरेत् । अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः स्वशिरस्तदनन्तरम् मूलमन्त्रं ततः ओं ह्रीं नमः शिवाय ततः परम् । यजेत्त तत्पुरा घोरे सद्योजातेश्वरानपि ॥ निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या च तदनन्तरम् । शान्तिश्च शान्त्यतीता च षडङ्ग

अंशुमालिनी, मदिरा शशिनी, छाया, सम्पूर्ण मण्डला तुष्टि अमृता यह चन्द्रकला करे सर्वकार्यार्थ सिद्धि के लिये, स्वर द्वारा इनकी पूजा करे । ललिता व्याख्यादीपिका में कहा है, उनके वरांग में तीन प्रधान नाड़ी है पहली का नाम सौरी, दूसरी का नाम चान्द्री और तीसरी का नाम आग्नेयी है । साधक उसकी पूजा करे, चान्द्री, नाड़ी जल, सौरी पुष्प और आग्नेयी बीज श्रवण करती हैं, प्रत्येक का नाम उच्चारण करके पूजा करे । प्रसन्नचित्त से वाग्बीजादि नमः शब्द की सहायता से पूजा करनी चाहिये । उत्तर तंत्र में भी कहा है, तिसके वरांग को रक्त, गन्ध द्वाराचर्चित करके, उसमें भगमाला उच्चारण पूर्वक 'ऐं ह्रीं' इत्यादि मंत्र प्रयोग के सहित पूजा करे । इस प्रकार गन्ध, पुष्प अक्षत, धूप, दीप और विविध नैवेद्य द्वारा तिस के चक्रकी पूजा और उसको आनन्दिता करके, उसको उच्छिष्ट स्वयं भोजन करे । तदनन्तर गंध और पुष्पादि द्वारा अपना मस्तक अर्चित करे । अनन्तर मूल मंत्र और 'ओं ह्रीं नमः शिवाय' कहकर सद्योजातेश्वर गणों की भी पूजा करे । फिर निवृत्ति, प्रतिष्ठा विद्या, शांति, शान्त्यतीता, षडङ्ग और त्रिकोण, इन सबकी पूजा करे । अन्यत्र भी कहा है कि;

तदनन्तरम् ॥ समग्रमविद्यामुच्चार्य्य त्रिकोणं चैव पूजयेत् ।

अन्यत्रापि—

इहाप्यावाहनं नास्ति जीवन्यासोऽपि नैव च ।
अथैतां विधिना षोडशोपचारैः इष्टदेवीं प्रपूजयेत् ॥

तदुक्तं उत्तरतन्त्रे—

अवधूतेश्वरीं कुब्जां कामाख्यां समयामपि । राजेश्वरीं कालिकाञ्च तथा दिक्करवासिनीम् ॥ महाचण्डेश्वरीं तारां पूजयेत्तत्र साधकः । तदनुज्ञां ततो लब्ध्वा दत्त्वा ताम्बूलमुत्तमम् ॥ शिवञ्च तत्र निःक्षिप्य गजतुण्डाख्यमुद्रया ।

गजतुण्डा मुद्रा यथा—

अंगुष्ठानामिकामध्या योन्याकारेण योजयेत् । गजतुण्डाकृतिंदेवीम् इत्याह भगवान् हरः ॥

अत्राप्यारम्भे त्यागे च धर्माधर्महरीत्यादि मन्त्रत्रयं गृह्यवचनान्तरदर्शनात् तद्यथा—

शिवशक्तिसमायोगो यत्र यत्र प्रजायते । तत्र तत्र स्वयं ग्राह्यो धर्माधर्मादिको मनुरिति ।

ततोऽष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा अक्षुब्धो जपेत् ।

इस में आवाहन और जीवन्यासभी नहीं है। अनन्तर यथा विधि षोड़शउपचार द्वारा इष्टदेवी की पूजाकरनी चाहिये। उत्तर तंत्रमें भी कहा है, अवधूतेश्वरी कुब्जा, कामाख्या, समया, राजेश्वरी, कालिका दिक्करवासिनी, महाचण्डेश्वरी, और तारा, इनकी पूजा करनी चाहिये। फिर उनकी आज्ञा ग्रहण और श्रेष्ठ ताम्बूल दान करके उसमें गजतुण्डाख्य मुद्रा द्वारा शिव निक्षेप करै। गजतुण्डा मुद्रा। यथा—अंगुष्ठ, अनामिका और मध्यमा योनिके आकारमें योजना करै। तो गजतुण्डा कृति होती है। भगवान शिवने देवीसे इस प्रकार कहा है, इस स्थानमें आरम्भ और त्यागके समय धर्माधर्म रूप हवि द्वारा, इत्यादि मंत्र प्रयोग करना चाहिये। गृह्य वचनान्तर देख करही इस प्रकार कहा जाता है। यथा—जिस जिस स्थल में शिव शक्तिका समायोग हो उस उस स्थल मेंही धर्माधर्मादि मंत्र का प्रयोग करै। अनन्तर क्षोभ रहित होकर अष्टोत्तर सहस्र वा अष्टोत्तर शत जप करै। उत्तर तंत्र में कहा है कि क्षोभ रहित होकर अधि-

तदुक्तम् उत्तरतन्त्रे—

प्रजपेत् चोभरहितश्चाष्टोत्तरसहस्रकम् । शतमष्टोत्तरं वापि अलुब्धस्थिरमानसः ॥ जपान्ते तज्जपं देव्यै समर्प्य तदनन्तरम् । लुब्धां मनोभवेत्सुखैः पूजयेत् सुचिरां रसात् ॥ गलच्चक्रदलं तस्माद् गृहीत्वा कुण्डगोलकम् । अर्घ्यस्थापनयन्त्राङ्कं चन्दनादिषु योजयेत् ॥

ज्ञानार्णवे विशेषो यथा—

शिवशक्तिसमायोगो योगं एव न संशयः । चीत्कारो यन्त्ररूपस्तु वचनं स्तवनं भवेत् ॥ आलिङ्गनन्तु कस्तूरी कर्पूरं चुम्बनं भवेत् । नखदन्तक्षतान्यत्र पुष्पाणि विविधानि च ॥ मैथुनं तर्पणं विद्धि वीर्यपातो विसर्जनम् ॥ इति ।

कुलार्णवे च—

आलिङ्गनं चुम्बनं च स्तनयोर्मर्दनं ततः । दर्शनं स्पर्शनं योनेर्विकाशं लिङ्गघर्षणम् ॥ प्रवेशः स्थापनं शक्तेर्नवपुष्पाणि वर्जयेत् ॥

रुद्रयामलेऽपि—

संयोगाज्जायते सौख्यं परमानन्दलक्षणम् । कुलामृता प्रयत्नेन गृह्णीयाद् दुर्लभं नरः ॥ तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत्त्रिपुरां पराम् । सान्निध्यात् तत्क्षणाद् याति प्रीता सिद्धिं प्रयच्छति ॥ समस्तदेवतानाञ्च तर्पणञ्च

कृत और स्थिर चित्तसे अष्टोत्तर सहस्र वा अष्टोत्तर शत जप करना चाहिये । जपके अन्तमें वह जप देवी को समर्पण करके फिर मनोभव सुख के आवेश से लुब्धभावा कुल नायिकाकी पूजामें प्रवृत्त होवे । तिसके गलच्चक्रदल और कुंडगोलक ग्रहणकरके चन्दनादि मे अर्घ्य स्थापन यंत्राङ्क योजना करै । ज्ञानार्णव में विशेष निर्देश किया है । यथा—शिव शक्तिका समायोग ही योग है इसमें संशय नहीं । शीतकार साक्षात् यंत्र वचन स्तव कस्तूरी आलिंगन, कपूर, चुम्बन, विविध पुष्प नखदन्त क्षत, एव तर्पण, मैथुन और वीर्य पात विसर्जन, जाने । कुलार्णव में कहा है, आलिंगन, दर्शन, स्पर्शन, इत्यादि नव पुष्पको त्याग करना चाहिये । रुद्रयामल में कहा है, संयोग से ही परमानन्द स्वरूप सौख्य उत्पन्न होता है । प्रयत्न सहित कुलामृत गृहण करै । क्योंकि वह सहजमें प्राप्त नहीं हो सकता । उसी दिव्य अमृतसे देवी त्रिपुराका तर्पण करै । तो वह व्यक्ति देवीके सान्निध्य से तत्काल सिद्धि लाभ करता है । अधिक क्या इस अमृत के द्वारा समस्त देवता, गुरुवर्ग, और साधकगणों का सर्वदा तर्पण होता है । उस

सदामृतैः। गुरूणां साधकानां च सर्वेषां तर्पणं भवेत् ॥ तेनामृतेन दिव्येन सर्वे तुष्टा भवन्ति च। यत्कामं कुरुते मन्त्री तत्क्षणादेव सिद्ध्यति ॥

समयार्णवे च—

कुलामृतं समादाय ततोऽर्घ्ये वा क्षिपेत् बुधः ॥

इति महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्री पूर्णानन्दगिरिविरचिते श्यामारहस्ये कुसुमोत्पादनं नाम नवमः परिच्छेदः।
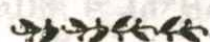
अथ दशमः परिच्छेदः।

अथ सामान्यसाधनम्। तदुक्तं कालीतन्त्रे-

अथोच्यते कालिकायाः सामान्यं साधनं प्रिये!। कृतेन येन विधिना पलायन्ते महापदः ॥ शिवाबलिश्च दातव्यः सर्वसिद्धि-मभीप्सुभिः। महोत्पाते महायोगे महादोषे महाग्रहे ॥ महापदि

अमृतसे ही सब संतुष्ट होते हैं। साधक जो कामना करै वही तत्काल सिद्ध कर सक्ता है। समयार्णव में भी कहा है—कुलामृत ग्रहण अर्घ्य निक्षेप करै ॥

इतिश्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानंदगिरिविर-चित श्यामारहस्ये पं० हरिशंकरजी शास्त्री कृत भाषाटीका सहित कुसुमोत्पाद नाम नवम परिच्छेद समाप्त ॥ ९ ॥
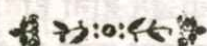
अथ सामान्य साधन कहा जाता है। कालीतंत्र में कहा है, हे प्रिये? अब कालिका का सामान्य साधन कहता हूं। इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करने से समस्त महा आपदा पलायन करती हैं संपूर्ण सिद्धिकी कामना करने वाले इस शिवा बलि प्रदान करैं। महोत्पात, महायोग, महादोष, महाग्रह, महाकापद, महादुख, महाविग्रह

महायुद्धे महाविग्रहसंकुले । महादारिद्र्यशमने महादुःस्वप्नदर्शने ॥ महाशान्तौ महारण्ये महास्वस्त्ययने तथा । घोराभिचारशमने घोरोपद्रवनाशने ॥ कूटयुद्धादिशमने कूटशत्रुनिवारणे । राजादिभयशान्त्यर्थं राजक्रोधोपशान्तये ॥ न ददाति बलिं यस्तु शिवायाः शिवतृप्तये । स पापिष्ठो नाधिकारी कुलदेव्याः प्रपूजने ॥ कुलीनं नावमन्येत कुलजां परिपूजयेत् । कुलजेषु प्रसन्नेषु कालिकासन्निधिर्भवेत् ॥ अहो धन्यवतां लोके जानाति कुलदर्शनम् । तेषां मध्ये च यः कोऽपि कुलदेवीं समर्चयेत् ॥ कुलाचारविहीनो यः पूजयेत् कालिकां नरः । स स्वर्गमोक्षभागी च न स्यात् सत्यं न संशयः ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं बलं पुष्टिमहद्यशः । कविता भुक्तिमुक्ती च कालिकापादपूजनात् ॥

कुलचूड़ामणौ–

कुलवारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः । योगिनीपूजनं तत्र प्रधानं कुलपूजनम् ॥ यथा विष्णुतिथौ विष्णुः पूजितो वांछितप्रदः । तथा कुलतिथौ दुर्गा पूजिता वरदायिनी ॥

अथ कुलवारादयो यथा तदुक्तं यामले—

रविश्चन्द्रो गुरुः सौरिश्चत्वारश्च कुला मताः ॥ सोमशुक्रौ कुलाख्यौ

महा दरिद्रता, महा दुःस्वप्न, महा शान्ति, महारण्य (महावन) महास्वस्तयन, घोर अभिचार, घोर उपद्रव कूटयुद्धादि कूटचक्र, राजादिभय, वा राजादि का क्रोध; इन सबकी शान्ति और निराकरण के लिये शिवाबलि देनी चाहिये । जो व्यक्ति शिव की तृप्तिके लिये शिवा बलिप्रदान नहिं करते; उन पापियों का कुलदेवता की पूजामें अधिकार नहीं है। कुलीन का अपमान न करे, कुलजा की पूजा करें । कुलजागणोंके प्रसन्न होने से देवी कालिकाका सान्निध्य लाभ होता है । अहो ! जो व्यक्ति कुल दर्शन से अवगत हैं । उनकी संसार में धन्यवान पुरुषोंमें गणना होती है । और उनमें जो कोई देवीकी अर्चना करता है, वही श्रेष्ठ है । कुलाचार विहीन होकर, कालिकाकी पूजा न करने से स्वर्ग और मोक्षके लाभसे वञ्चित होना होता है । मैं सत्यही कहता हूं इसमें कोई संदेह नहीं है, कालिकाकी पद पूजा करने से आयु आरोग्य ऐश्वर्य बल, पुष्टि महायश, कविता, भोग और मोक्ष लाभ होती है । कुलचूड़ामणि में कहा है । कुलवार की कुलाष्टमी विशेष करके चतुर्दशी में योगिनी की पूजा ही प्रधान कुल पूजा है । विष्णु तिथि में विष्णु की पूजा करने से वह जिस प्रकार वांछित प्रदान करते हैं । कुल तिथिमें दुर्गाकी पूजा करने से वह उसी प्रकार वरदायिनी होती हैं । कुलवारादि यथा –यामल में कहा है रवि, चन्द्र, गुरु, सौरि, यह चार वार कुलवार कहकर परि·

तु बुधवारः कुलाकुलः । द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलमुदाहृतम् ॥ विषमाश्चाकुलाः सर्वाः शेषाश्च तिथयः कुलाः । वारुणार्द्राभिजिन्मूलं कुलाकुलमुदाहृतम् ॥ कुलानि समधिष्ठानि शेषाण्यकुलानि च । तिथिवारे च नक्षत्रे अकुलस्थायिनो जनाः ॥ कुलाख्ये जापको नित्यं साम्यं चैव कुलाकुलम् ॥ एवं कुलवारादिकं ज्ञात्वा साधकः कर्म कुर्यात् ।

अथ शिवाबलिप्रकारः तदुक्तं कुलचूड़ामणौ–

बिल्वमूले प्रान्तरे वा श्मशाने वापि साधकः । मांसप्रधानं नैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत् ॥ कालिकालीति वक्तव्ये तत्रोमा शिवरूपिणी । पशुरूपा समायाति परिवारगणैः सह ॥ भुक्त्वा रौति यदैशान्यां मुखमुत्तोल्य सुस्वरम् । तदैव मङ्गलं तस्य नान्यथा कुलदूषणम् ॥ अवश्यमन्नदानेन नियतं तोषयेत् शिवाम् । नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पितृतर्पणम् ॥ तथैव कुलदेवीनां नित्यता कुलपूजने ॥ पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने ॥ एकया भुज्यते यत्र शिवयादेव भैरव ! । शिवाभावेन तस्याशु सर्वं नश्यति निश्चितम् ॥ जपपूजाविधानानि यत्किञ्चित् सुकृतानि च । गृहीत्वा

गणित हैं, भौम और शुक्रवारको भी कुलवार कहा जाता है। बुधवार कुलाकुल विख्यात है। द्वितीया, दशमी, षष्ठि यह कई तिथि भी कुलाकुल शब्दमें निर्दिष्ट हैं। सम्पूर्ण शेष तिथियां कुल तिथि हैं इनमें जो विषम हैं, जिस प्रकार तृतीया और पंचमी, यह सबही अकुल हैं, वारुण, अभिजित्, आर्द्रा मूल इन सब नक्षत्रोंको कुलाकुल कहते हैं, साधक इस प्रकार कुलवारादि से अवगत होकर, कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त होवे ॥

अब शिवाबलि प्रकार कहा जाता है। कुलचूड़ामणि में कहा है, यथा—बेल की जड़, प्रान्तका श्मशान, इन सब स्थलों में सन्ध्या काल के समय मांस प्रधान नैवेद्य निवेदन करनी चाहिये 'उस समय 'कालि कालि' इस प्रकार वाक्य प्रयोग करने से शिव रूपिणी उमा पशु रूपसे परिवार गणों के सहित वहां समागत होती हैं। वह तत्समस्त भक्षण करके उनके ऐशान दिक् में मुख उत्तोलन पूर्वक सुस्वरमें शब्द करने से मंगल है, नहीं तो कुलदूषण है सदा अन्नदान द्वारा अवश्य शिवाका सन्तोष विधान करे। नित्यश्राद्ध सन्ध्यावन्दन, पितृतर्पण, कुल देवी गणोंकी पूजा यह सब कार्य नित्य साधन करे। जो व्यक्ति निर्ज्जनमें पशुरूप देवी शिवाकी अर्च्चना नहीं करता, और जिस स्थलमें एकमात्र शिवा भक्षण करे, शिवाके अभाव में उसका सम्पूर्ण विनष्ट

शापमादाय शिवा रोदिति निर्जने ॥ एकया भुज्यते यत्र शिवया देव भैरव ! । वाञ्छनाद्द्विगुणं कर्म सगुणं साधयेत्ततः॥ तेन सर्व प्रयत्नेन कर्त्तव्यं पूजनं महत् । राजादिभयमापन्ने देशान्तरभयादिके ॥ शुभाशुभानि कार्य्याणि विचिन्त्य बलिमाहरेत् । गृहणदेवि ! महाभागे ! शिवे ! कालाग्निरूपिणि ! ॥ शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृहण बलिं तव । एवमुच्चार्य्य दातव्यो बलिः कुलजनप्रियः ॥ यदि न गृह्यते वत्स ! तदा नैव शुभं भवेत् । शुभं यदि भवेत्तस्य भुज्यते तदशेषतः ॥ एवं ज्ञात्वा महादेव ! शांतिस्वस्त्ययनं चरेत् । कुलाचारं दक्षिणाख्यं कथितं तव सुव्रतम् ॥न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं यदीच्छेच्छुभमात्मनः। निर्जने चैव कर्त्तव्यं न चैवं जनसन्निधौ॥न पितुःसन्निधाने वा न मातुः सुतसन्निधौ । किं वा पक्षिपतङ्गादिदर्शने नैव कारयेत् ॥ पाताले मण्डले वापि गह्वरे वा सुयन्त्रिते । कुलपुष्पं कुलद्रव्यं कुलपूजां कुले जपम् ॥ कुरुं कुलपतिञ्चापि कुलमालां कुलाकुलम् । कुलचक्रं कुलध्यानं सर्वथा न प्रकाशयेत् ॥ प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् प्रकाशाद् बन्धनादिकम् । प्रकाशान्मन्त्रनाशःस्यात् प्रकाशादेव हिंसनम् ॥ प्रकाशान्मृत्युलाभः स्यात् न प्रकाश्यं कदाचन । पूजाकाले च देवेशि ! यदि कोऽप्यत्र गच्छति ॥ दर्शयेद्वैष्णवीं मुद्रां विष्णुन्यासं त

होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अधिक क्या शिवा उसका जप, पूजा, और विधान एवं सुकृति इत्यादि जो कुछ है। वह सम्पूर्ण ही ग्रहण और शाप प्रदान करके निर्जन में रोदन करती है। इस लिये सर्व प्रयत्न से शिवा की पूजा करै। राजादि का भय उपस्थित और देशांतर भय संघटित होने से शुभाशुभ समस्त कार्य्य की भली भांति से चिंता करके बलि आहरण करै। हे शिवे ! तुम्हीं कालाग्नि स्वरूपिणी तुम्हीं महाभाग, और तुम्हीं स्वप्रकाश और दिव्य लीलाविग्रह मयी हो। तुम यह बलि ग्रहण करो, और शुभाशुभ फल व्यक्त करके कहो। इस प्रकार उच्चारण करके, बलि प्रदान करना चाहिये हे वत्स ! शिवा यदि बलि ग्रहण न करे तो शुभ नहीं होता। और यदि वह सम्पूर्ण भक्षण करै, तो वह मंगल होता है, हे महादेव ! इस प्रकार अवगत होकर, शान्ति स्वस्त्ययन करै। तुम्हारे निकट यह दक्षिणाख्य कुलाचार कीर्त्तन किया। अपनी हितकामनाकी अभिलाष होने से किसीसे भी इसको न कहे। निर्ज्जनही में विधान करै। मनुष्यके समीप न करै। अधिक क्या पिताके समीप भी न करै। माताके और पुत्रके समीप भी न करै। अथवा पक्षी और पतंगादिके साक्षात् में भी इसको न करै। कुल पुष्प कुलपूजा कुल द्रव्य, कुलजप, गुरु, कुलपति, कुलमाला, कुलाकुल, कुलचक्र,

थान्तरम् । प्रकाशाद्यदि गुप्तिः स्यात् तत्प्रकाशे न दूषणम् ॥ गोपनाद्यदि व्यक्तः स्यात् न गुप्तिः साभिधीयते । कदाचिदङ्गहानिस्तु न च व्यक्तिः कदाचन ॥

अथ समयाचारः । तदुक्तं तत्रैव ।

शृणु पुत्र ! रहस्यं मे समयाचारसम्भवम् । येन हीना न सिध्यन्ति जन्मकोटिसहस्रशः ॥ मानवः कुलशास्त्राणां कुलचर्य्यानुसारिणाम् । उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः ॥ परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा । पर्वते विपिने चैव निर्जने शून्यमण्डपे ॥ चतुष्पथे कलामध्ये यदि दैवाद् गतिर्भवेत् । क्षणं ध्यात्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद् यथासुखम् ॥ गृध्रं वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्य्यादलक्षितम् । क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बुकीं यमदूतिकाम् ॥ कुररं श्येनभूकाकौ कृष्णमार्जारमेव च । पूर्णोदरि ! महाचण्डे ! मुक्तकेशि ! बलिप्रिये ! ॥ कुलाचारप्रसन्नास्ये ! नमस्ते शङ्करप्रिये ! । श्मशानस्थं शवं दृष्ट्वा

कुलध्यान, यह समस्त सर्वथा प्रकाश न करै । प्रकाश करनेसे सिद्धिमें विघ्न होता है धन्धनाद संघटित होता है, मंत्र विनष्ट होता है । हिंसा आपतित होती है, और मृत्यु लाभ होती है । इस लिये किसी प्रकारसे प्रकाश न करै । हे देवेशि ! यदि कोई पूजा कालमें तहां गमन करै तो उसको वैष्णवी मुद्रा और वैष्णवी न्यास दिखलावे । इस प्रकार प्रकाश बशसे यदि गुप्त किया जाये, तो उसमें कोई दोषका विषय नहीं हो सकता । और गोपन करने से यदि प्रकाश हो जाय तो गोपन न करै । कदाचित् अंग हानि होने पर भी प्रकाश न करै ॥

अब समयाचार लिखते हैं । कुलचूडामणि में कहा है हे पुत्र ! मेरे प्रति समयाचार रहस्य श्रवण करो । जिसके न होनेसे करोड़ सहस्र जन्म में भी सिद्धि लाभ करने की सामर्थ उत्पन्न नहीं होती । सर्वदा सर्वत्र उदार चित्त और वैष्णव आचार में तत्पर होवे किसी के निन्दा करनेसे उसको सहन करै, सर्वदा मनुष्यके उपकारमें रत होवे । पर्वत निर्जन वन, शून्यमण्डल और चौराहे में यदि दैवात् गमन किया जाय तो क्षणकाल ध्यान करके मंत्र जप और प्रणाम करने के पीछे यथा सुखमें गमन करे । गृध्रका दर्शन करनेसे देवी महा कालीको गुप्तरूपसे नमस्कार करै । क्षेमङ्करी, जम्बूका, यमदूतिका, कुरर, श्येन, भूकाक आकृष्णमार्जार अर्थात् काली बिल्लीका दर्शन करने से इसप्रकार मंत्र कहै. हेपूर्णोदरि ! तुम्ही महाचण्डा, मुक्तकेशी बलिप्रिया और शङ्कर की प्रिया हो, तुम्हीं कुलाचार प्रसन्नास्या हो । तुमको नमस्कार है श्मशान और शव देखने पर प्रदक्षिणाके क्रमसे अनुगमन करके प्रणाम पूर्वक वक्ष्यमाण मंत्र कहनेसे सुख

प्रदक्षिणमनुव्रजन् ॥ प्रणम्यानेन मन्त्रेण मन्त्री सुखमवाप्नुयात् । घोरदंष्ट्रे ! कठोराक्षि ! किञ्चिशब्दप्रणादिनि ! ॥ घुष्टघोररवास्फाले ! नमस्ते चितिवासिनि! रक्तवस्त्रां रक्तपुष्पां विलोक्य त्रिपुरात्मिकाम्॥ ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमाविमं मन्त्रमुदारयन् । बन्धूकपुष्पसङ्काशे ! त्रिपुरे भयनाशिनि!॥भाग्योदयसमुत्पन्ने? नमस्ते वरवर्णिनि!॥ कृष्णवस्त्रं तथा पुष्पंराजानं राजपुत्रकम्॥ हस्त्यश्वरथशस्त्राणि फलकान् वीरपौरुषान् । महिषं कुलदेवं च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम् ॥ जयदुर्गां स्मरेन्मन्त्री शत विघ्नैर्न लिप्यते । जयदेवि ! जगद्धात्रि ! त्रिपुराद्ये ! त्रिदैवते ! ॥ भक्तेभ्यो वरदे ! देवि ! महिषघ्नि ! नमोऽस्तुते । मद्यभाण्डं समालोक्य मत्स्यं मांसं वरस्त्रियम् । दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणम्य विमृषेन्मनुम् । घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये । नमामि वरदे देवि ! मुण्डमालाविभूषिते ! ॥ रक्तधारासमाकीर्णवदने ! त्वां नमाम्यहम् । एतेषां दर्शने देवि ! यदि नैवं प्रकुर्वते ॥ शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते । एतेषां मारणोच्चाटौ हिंसनं वाग्भवादिभिः ॥ कुरुते यदि पापात्मा मद्भक्तः स कथं भवेत् । प्रधानांशसमुद्भूता एते कुलजनप्रियाः ॥ डाकिन्यश्च तथा सर्वा मदंशाः शृणु भैरव ! । लब्ध-

लाभ होता है । मंत्र यथा— हे चिति-वासिनी ! तुम्हारी दाढ़ें अत्यन्त भयंकर हैं, तुम्हारे नेत्र अति कठोर हैं । तुम किंचित् शब्दसे गर्जन और घुष्ट घोर रवसे आस्फालन करती हो । तुमको नमस्कार है । रक्तवस्त्रा और रक्तपुष्पा त्रिपुरात्मिका के दर्शन करने से दण्डकी समान भूमिमें वक्ष्यमाण मंत्रसे प्रणाम करै । त्रिपुरे ! तुम भयनाशिनी हो, वन्धूक पुष्पकी समान तुम्हारी आभा है । हे वर वर्णिनि ! भाग्य उदय होने से ही तुम्हारा आविर्भाव हुआ है, तुमको नमस्कार है । कृष्णवस्त्र, पुष्प राजा, राजपुत्र हस्ती, अश्व, रथ, शस्त्र, फलक, वीर पौरुष और महिष. इन सबके देखने पर महिष मर्दिनी जय दुर्गाका स्मरण करै, तो साधक शतविघ्नसे भी आक्रान्त नहीं होता तिस काल इस प्रकार मंत्र कहै, हे देवि! जगद्धात्री तुम्हारी जय हो । हे त्रिपुरे ! तुम्हीं आद्य देवता हो । तुम्हीं त्रिदेवता हो । तुम्हीं भक्तोंको वर देती हो । तुमने ही महिषासुर का विनाश किया है । तुमको नमस्कार है । मद्यपात्र, मत्स्य, मांस और वरस्त्री के देखने पर देवी भैरवीको प्रणाम करके यह मंत्र कहै हे देवि वरदे ! हे मुण्डमाला विभूषिते ! मैं घोर विघ्न विनाश और कुलाचार समृद्धि के लिये तुमको नमस्कार करता हूं । हे देवि ! तुम्हारा वदन मण्डल रुधिर धारासे समाकीर्ण है । तुमको नमस्कार करता हूं हे देवि इनका दर्शन होने पर यदि शक्ति मंत्र पुरस्कृत करके इस प्रकार अनुष्ठान न किया जाय, तो उसकी सिद्धि हानि होती है यदि पापात्मा वाग्भवादि द्वारा इसका मा-

सिद्धिसमायोगात् डाकिनीहिंसनं यदि ॥ अथवा दानवानाञ्च मद्भक्तानां विशेषतः । बटुकानां भैरवाणां तस्य सिद्धिर्न जायते ॥

इति श्रीमहामहोपाध्याय श्री परमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरिविरचिते श्यामारहस्ये दशमः परिच्छेदः ।

अथ एकादशः परिच्छेदः ।

अथ मन्त्रसिद्धिप्रकारो लिख्यते ।

तदुक्तं वीरतन्त्रे—

अथातः संप्रवक्ष्यामि गुरुसिद्धिपरम्पराम् । रहस्यं मंत्र सिद्धेस्तु पुरश्चर्यादिभिर्विना ॥ गोपितं कोटिशास्त्रेषु इदानीं प्रकटीकृतम् । एवं ज्ञात्वा विशेषज्ञो गोपयेत् प्रीतये मम ॥ एतत् प्रकाशनात् लोके महाहानिः पदे पदे ॥

शिवशिखिसितभानुं पञ्चमान्त्यस्वराढ्यं द्वितयमिदमपूर्वं बीजमुग्रप्रभायाः । क्षणमपि स्वमणीनां मण्डलान्तर्विभाव्य क्षपयति दुरदृष्टं वादिराट् जायते सः ॥ १ ॥ स जयति रिपुवर्गान् वादिराज्ञो विवादे

रण, उच्चाटन और हिंसन करै, तो वह किस प्रकार से हमारा भक्त हो सकता है ? हे भैरव ! सुनो । संपूर्ण कुलजन प्रियव्यक्ति मेरे प्रधान अंशसे उत्पन्न हैं, और समस्त डाकिनी मेरी ही अंश हैं । सिद्धियोग में प्राप्त होने पर यदि कोई डाकिनीगणोंकी अथवा दानवगण और विशेष कर मेरे भक्तगण, बटुकगण और भैरवगणों की हिंसा करता है, तो सिद्धिलाभ से वंचित रहता है ।

इति महामहोपाध्याय श्रीपरमहंस परिव्राजक श्रीपूर्णानन्द गिरि विरचित श्यामा रहस्य भाषाटीका सहित सामान्य साधन नाम दशम परिच्छेद समाप्त ॥ १० ॥

अब मंत्र सिद्धि की विधि लिखते हैं । वह विधि वीरतन्त्र में लिखी है । अब इसके अनन्तर विशेष सिद्धिकी परंपरा वर्णन करते हैं । पुरश्चरण आदि न करने से मन्त्र सिद्धि अवश्य गुप्त रह जाती है । जो विधि करोड़ों तन्त्र शास्त्रोंमें छिपी पड़ी थी उसीको अब प्रगट करते हैं । ऐसा जान कर विद्वान को चाहिये मेरी प्रीति के लिये इसे गुप्त ही रक्खे । क्योंकि—इसे प्रकाशित करने से संसार में पग पग के ऊपर विशेष हानि होगी । उग्र प्रभाव संपन्न भगवती का दूसरा यह अपूर्व बीज मंत्र है, कि शिव शिखी शुक्र और सूर्य इनके अन्त में छठे स्वर का संयोग करके और मणिमय मण्डल के मध्य छिन भर भी ध्यान करके जो देखता है वह वाग्मी हो जाता है ॥ १ ॥ वह व्यक्ति राजा के समक्ष किसी प्रकार के वाद विवाद में शत्रु वर्गका जप करता है,

लसति च रमणीनां चित्तचौरश्चिरायुः । कलयति कविराजैरप्रदृष्टं सुकाव्यं मधुमतिरपि हेया किं पुनः सिद्धसङ्घाः ॥ २ ॥ कुलयुवतिसुयोनौ मन्त्रवर्णान् विलिख्य निखिलनिगमवर्णान् सुप्तदोषादिदृष्टान् । विदित गुरुकुलांतर्वाक्यवर्त्मोविधिज्ञो मनुपुटितसुधीन् साधयेद्दान्तचेताः ॥ ३ ॥ कुलपथमनुसन्ध्यां योऽपि तासां स्वभूमौ तव जननि ! जनोयं तर्पयेत्तीर्थतोयैः । रुधिरमवसुपुष्पैर्गन्धमाल्यानुलेपै रचितयुवतिवेशस्त्वांच्छया ध्यायेत सः ॥ ४ ॥ परिचरति समस्तैर्न्याससपूर्वैः प्रसिद्धैस्तव परिकरजालैर्योनिचक्रे प्रपूज्य । सुविमलकुलजां त्वां ह्रीघृणावर्जितां यः स्वयमपि रचिताङ्गः क्षोभकृद्योगिनीनाम् ॥५॥ पशुरिपुकुलचक्रं संस्पृशन्मध्यशाखां कुलपतिकुलनाथष्ठद्वयं योजयित्वा । मनुपुटितविमृग्यं योजयेत्तद्बहिर्यो जननि ! तव कलानां कोविदां कामरूपः ॥ ६ ॥ कुमतिरहितचित्तः संलिखेत्तां त्रिधा मे विगतभयविवादध्वान्तजालः सुधांशुः । तव चरणतलांतर्धूलिजालैर्विशालैः चिरकलितवपुस्तद्धर्मभिर्देवपूज्यैः ॥ ७ ॥ परिचरति स विज्ञो मोक्ष-

---

चिरंजीव होकर विलासवती स्त्रियोंका चित्त चोर बनकर सदा प्रसन्न रहता है। और विशेष क्या कहै बड़े बड़े कवीश्वरों को भी दुष्प्रधर्ष ऐसे काव्य बनाने में समर्थ हो जाता है ॥ २ ॥ सुन्दर कुलीन युवती स्त्री के......स्थान में मन्त्र के अक्षरों को लिखकर और स्वप्न दोष आदि में देखे हुए समस्त निगमाक्षरों को गुरुकुलमें कहकर ब्रह्ममार्ग विधिको जान कर और अपने चित्त को अच्छी तरह दमन करके मनुवर्णों से संपुटित कर भली प्रकार साधन करै ॥ ३ ॥ जो व्यक्ति नित्य संध्या के समय कुल क्रमागत विधि के अनुसार उनके उसी स्थान में हे मातः ! यह तुम्हारा दास तीर्थानीत जलों से तर्पण करता है। और गुड़हल के फूल और गन्ध मालादि चंदन से स्त्री का वेष बनाय तुम्हारा ध्यान करै ॥ ४ ॥ जो पुरुष न्यास पूर्वक समस्त तुम्हारी पूजा की सामग्री से ......चक्र में पूजन करके सुन्दर कुल में उत्पन्न हुई लज्जा और दया रहित तेरा ध्यान करता है वह योगियों के भी चित्तमें क्षोभ करता है ॥ ५ ॥ हे जननि जो साधक मध्यशाखा का स्पर्श कर पशु रिपु कुल चक्र की कुलपति कुलनाथ और दोष—ट से युक्त कर और मनुवर्ण से अन्यथा युक्त कर पूजन करता है वोह काम रूप व्यक्ति तुम्हारी कलाओं को जानता है ॥ ६ ॥ अपने चित्त से कुमति को दूरकर उसे तीन प्रकार लिखे और अपने चित्त से भय विषाद और कपट जाल को दूर कर तुम्हारे चरणपांशु को शरीरमें लिप्त कर देवपूज्य प्रकार से पूजन करै ॥ ७ ॥ जो सा-

स्योधिपश्च मदनमदवधूनां वीजमुद्धृत्य शक्तिम्। तदनु काठनवीज ज्ञानचक्रं तदन्तर्यदि जपति मदन्तर्भावमासाद्य सद्यः ॥ ८ ॥ सुरनगरगतिज्ञैः सिद्धवृन्दैः प्रपूज्य शिवभृगुमदपृथ्वीशक्तियुक्तःस्वासिद्धम्। हरिहरचतुरास्यस्वस्वभूतिं प्रसूतं परमवररसज्ञः क्षोभकृत् कामिनीनाम् ॥ ९ ॥ रतिपतिरपि वाचां श्रीपतिः सार्वभौमः मृगमदकठिनाधः कामबीजं तदग्रे। भुवनभयविनाशः क्षोभिणीं योजयित्वा जपति यदि सकृद्वा चिन्तते वीरसिंहः ॥ (कुलयुवतिकुलान्तः क्षोभकृत् कामभावः) ॥ १० ॥ पाठान्तरम्।

मदनमदलताधः शक्तिबीजं नियोज्य स्मरहरहरिरूपी कामरूपः कुबेरः। रिपुकुलहरिणाक्षी लोचनाम्भोजविम्बइ् विपुलजलनिषेकात् खण्डितांतस्थतापः॥११॥शिवमृगमदमूलं लोभमूलंसमूलं भजति यदि गुरूणां वर्त्ममूलं विमृग्यन्। नधिरपि निशिनाथो गीष्पतिः क्षुद्रचेताः यदि भवति तदेतन्मुख्यमुर्वीपतित्वम् ॥ १२ ॥ वरुणरण विवर्ज्यं प्राणमेकं विवर्ज्यं तदुपरि मृगचिन्हं द्वन्द्वमेतद्भवान्याः। निखिलमनुवरेण्यं मोक्षदानैकदक्षं सदसदभयधमा क्षेपहृन्मन्त्रराजम् ॥ १३ ॥ अनलशिरसिधर्मं वादिराजं स्वतन्त्रम् भवसमनयुक्तं बीजमेतद्भवान्याः। क्षितयमपि

तब वह अपने का......संबन्धी मनोरथ सिद्धि को शीघ्रही प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥ देवलोक में जानेके तई समर्थ ऐसे सिद्धों के द्वारा पूजनीय शिव भृगु मद और पृथ्वी की शक्ति से युक्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर की निज२ विभूति से विभूषित सिद्ध यन्त्र की पूजा करनेसे स्त्रियोंकेबराबर भावको जानकर उनके चित्तको क्षुभित करदेता है ॥ ९ ॥ फिर जो व्यक्ति काम बीजको स्थापित कर 'भुवनभयविनाशक्षोभणी' यह संयुक्त कर एक बार बार भी जप करता अथवा ध्यान करता है वोह काम तुल्य सुन्दर लक्ष्मीवान् और समस्त भूमिका अधिपति हो जाता है ॥ १० ॥ स्त्रियों की...यंत्रके नीचे शक्ति बीजको नियुक्त कर काम विष्णु और महादेव का इच्छानुसार रूप बनाके अधिक जल से स्नान करनेके कारण शरीर का सन्ताप शान्त कर ॥ ११ ॥ जो व्यक्ति ध्यान करता है वह क्षुद्रभी विशेष धनी और विद्वान् हो जाता है विशेष क्या उसे सार्वभौम पदवी भी प्राप्त हो जाती है ॥ १२ ॥ वरुण रण रहित एक प्राणको छोड़ फिर भवानीके द्वन्द्व रूप उसके ऊपर मृगचिन्ह लिख कर सम्पूर्ण मन्त्रों में श्रेष्ठ मोक्ष देने में निपुण ऐसे मन्त्रराज का जप करै ॥ १३ ॥ अग्नि बीजका उसके ऊपर स्थापन कर भवानीका बीज मन्त्र जपने से सब ऋद्धियें प्राप्त होती हैं इसकी गुरुता को केवल शिवजी वर्णन कर

विमानं वक्तुमशो महेशः किमिह कमलजन्माजन्मधारासहस्रैः ॥१४॥ इह भजति य एनं मन्त्रराजं सुभाग्यैः भवति जननि ! युष्मत्पादपद्मोत्थजन्मा । त्यजसि परपुमांसं मादृशं क्वापि काले न खलु न पुनरर्घ्यं तस्य किञ्चित् कदाचित्॥ १५॥ विहितगुरुमुखाद्वा बालकाद्वा पशोर्वा लिखितमपि सुबुद्ध्या प्राप्य कस्मादकस्मात् । स्मररिपुपुरपारे मोक्षचर्याश्च पारे परमपदविलीनः सर्वसौभाग्यभोगैः ॥ १६ ॥ अनलपुरविभागे कालिकावक्त्रबीजं तदपि यदि विदध्यादन्तं सान्तवर्णम् । नयनयुतलकारं मस्तके नामयुक्तं तदनु विकटदंष्ट्रासोत्कटं बीजयुक्तम् । जपति यदि समस्तं गुह्यगुह्यातिगुह्यं त्रिजगति किमिहास्ते क्लेशलभ्यं कथञ्चित् ॥ १७ ॥ क्रमपठितमपूर्वं सर्वमेवानुबध्यं मनुमपि परवाच्यं तस्य मध्यस्थरूपम् । भजति यदि चिदानन्दात्मधृक्केवलोऽसौ विपिनभुवि मनुष्यः कौतुकी कामदेवः ॥ १८ ॥ इति ते कथितं सर्वं रहस्यं परमाद्भुतम् । यथानुक्रमतो लोके किं न साधयति योगिराट् ॥

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंस विरचिते श्यामारहस्ये
मन्त्रसाधनोपाय एकादशः परिच्छेदः ।

सके हैं और ब्रह्मा तो सहस्रों जन्म में भी वर्णन नहीं कर सके ॥ १४ ॥ हे माता जो पुरुष तुम्हारे इस सर्वोत्तम मन्त्र का जप करता है वह अवश्यही तुम्हारे चरण कमलों में प्राप्त हो जाता है और जो पुरुष तुम्हारा मन्त्र जप करने से विमुख हैं उनकी सुगति का कोई उपाय नहीं ॥ १५ ॥ विधानसे अथवा गुरु बालक वा अज्ञानीके मुखसे सुनकर अथवा अपनी बुद्धि से लिखकर किंवा चाहे जिस प्रकार से प्राप्त करके इस मन्त्र को जप करने से संपूर्ण सौभाग्यको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ अनलपुर विभागमें कालिका मुखबीजको लिखकर फिर पूर्ण अन्त्यवर्ण लिखै फिर दो लकार लिखै पुनः मस्तकोपरि नाम को युक्त करै तो जप करनेसे उसे कुछभी दुष्प्राप्य नहीं रहता ॥ १७ ॥ इस अपूर्व मन्त्रको क्रमसे पढ़कर मध्य में मनुवर्णका ध्यान करै और निर्जन बनमें जप तो वह मनुष्य कामदेव की समान कौतुकी होजाता है ॥ १८ ॥

हमने यह परम अद्भुत रहस्य तुमसे वर्णन किया इसके द्वारा योगी पुरुष भला क्या सिद्ध नहीं कर सका अर्थात्-सब कुछ सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १९ ।

इति महामहोपाध्याय श्रीपरमहंस परिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरि
विरचित श्यामा रहस्य भाषाटीका सहित मन्त्रसाधनोपाय
एकादशः परिच्छेदः ॥ ११ ॥
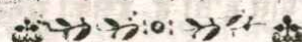
अथ द्वादशः परिच्छेदः ।

अथ काम्यप्रयोगो लिख्यते ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे-

अथ काम्यविधिं वक्ष्ये येन सर्वत्र सर्वगः । साधकः साधयेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ॥ कुलागारं पुष्पितायाः दृष्ट्वा यो जपने नरः । अयुतैकप्रमाणेन साधकः स्थिरमानसः ॥ केवलं गुप्तभावेन स तु विद्यानिधिर्भवेत् ॥

अयुतैकप्रमाणेति दिनत्रयं व्याप्य अयुतं जपेदित्यर्थः । इदन्तु रात्रावेव कर्त्तव्यं न तु दिवसे विविधविधिनिन्दाश्रुतेरिति ।

संस्कृताः प्राकृताः सर्वा लौकिका वैदिकास्तथा । वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य न चान्यथा ॥

कुलसर्वस्वेऽपि-

ऋतुमत्या भगं पश्यन् यो जपेदयुतं नरः । अनुकूलाहि तद्वाणी गद्यपद्यमयी भवेत् ॥ छन्दोबद्धा परा वाणी तस्य वक्त्रात् प्रजायते ॥

अथ कालीतन्त्रे—

अथवा मुक्तकेशश्च हविष्यं भक्षयेन्नरः । प्रजप्य चायुतं प्राज्ञ एतदेव फलं लभेत् ॥ नग्नां पररतां पश्यन् अयुतं यस्तु साधकः । प्रजपेत् स भवेत् सद्यो विद्याया वल्लभः स्वयम् ॥ तस्य दर्शनमात्रेण

अब काम प्रयोग लिखा जाता है। कालीतंत्र में कहा है। इसके उपरान्त काम्यविधि कहता हूं। जिसके द्वारा साधक सर्वत्र सर्वज्ञ होकर सर्व देवगणों को भी दुर्लभ सिद्धि साधन करता है। जो साधक पुष्पिता का कुलागार दर्शन करके स्थिर चित्त द्वारा एक अयुत केवल गुप्त भावसे जप करता है. वह विद्यानिधि होता है। यहां एक अयुत परिमाण शब्द से तीन दिन व्यापी अयुत जप करै, यही अर्थ है यह रात्रि में ही करै, दिन में नहीं। क्योंकि दिन में विविध विधि निन्दा श्रुति हैं इस प्रकार जप करने से संस्कृत, प्राकृत, लौकिक, वैदिक, सभी साधक के वशीभूत होते हैं, इसमें अन्यथा नहीं होता। कुलसर्वस्व में भी कहा है, ऋतुमती का कुलागार देखकर अयुत जप करने से गद्यपद्यमयी छन्दोबद्ध उत्कृष्ट और अनुकूलवाणी वक्त्र से (मुख से) निकलती है। कालीतन्त्र में कहा है, अथवा मुक्तकेश होकर हविष्य भक्षण और अयुत जप करने से इसी प्रकार फल लाभ होता है। जो साधक पररताका दर्शन करके अयुत जप करता है, वह शीघ्र

वादिनः कुण्ठतां गताः । गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ॥ तन्नाम्ना सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः । तस्य वाक्यपरिचयात् जड़ा भवन्ति वाग्मिनः ॥

सारसर्वस्वेऽपि ।

नग्नां परस्त्रियं वीक्ष्य यो जपेदयुतं नरः । सभवेत् सर्वविद्यानां पारगः सर्वदैव हि ॥ कवित्वं जायते तस्य वाचा जीवसमो भवेत् । अथवा मुक्तकेशश्च हविष्यं भक्षयेन्नरः । प्रजपेदयुतं तावदेवं प्रतिनिधिर्भवेत् । धनकामस्तु यो विद्वान् महदैश्वर्य्यकामुकः ॥ बृहस्पतिसमो यस्तु कवित्वं कामयेन्नरः । अष्टोत्तरशतं जप्त्वा कुलमामंत्र्य मन्त्रवित् ॥ मैथुनं यः प्रयात्येषः स तु सर्वफलं लभेत् । लतारतेषु जप्तव्यं महापातकमुक्तये ॥ लता यदि न संसर्गः तदा रेतः प्रयत्नतः । समुत्सार्य्य जपेन्मन्त्री धर्मकामार्थसिद्धये ॥ महाचीनद्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः । रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सैव कल्पलता भवेत् ॥ महाचीनद्रुमलतावेष्टनेन च यत् फलम् । तस्यापि षोड़शांशेन कलां नार्हन्ति ते शवाः । शवासनाधिकफलं लतागेहप्रवेशनम् ॥

विद्याबल्लभ होता है । उसके दर्शनमात्र से ही वादीगण कुण्ठित होते हैं सभा में उस के मुखसे गद्यपद्यमयी वाणी निकलती है । उसके नाममात्र से सुधीगण सानन्दचित्त हो प्रणाम करते हैं उसके वाक्य के परिचयमात्र से ही संपूर्ण वाग्मीं जड़ होते हैं । सारसर्वस्वमें भी कहा है, नग्न परस्त्री का दर्शन करके अयुत जप करने से, सर्व्वदाही संपूर्ण विद्या का पारग, कवि और बृहस्पति की समान होजाता है । अथवा मुक्तकेश होकर, हविष्य भक्षण पूर्व्वक, अयुत जप करने से, उक्तरूप प्रतिनिधित्व लाभ होता है, जो व्यक्ति धन काम और अतिशय ऐश्वर्य्य काम एवं बृहस्पति की समान कवित्व की कामना करता है । अष्टोत्तरशत जप और कुल आमंत्रण करके, मैथुन करता है, उसकी समस्त कामना ही सफल होती हैं । लतारत में महापातक छुड़ाने के लिये जप करना चाहिये, लता का यदि संसर्ग न हो तो यत्नसहित शुक्र समुत्सारण पूर्वक धर्म्म कामार्थ सिद्धि के लिये जप करै । साधकोत्तम रात्रि कालमें महा प्राचीन द्रुमलता वेष्टित होकर यदि मन्त्र जप करै, तो कल्पलता होती है, महाप्राचीन द्रुमलता वेष्टन द्वारा जो फल लाभ होता है, शवमें उस के षोडशांशका एकांश भी नहीं होसक्ता, लतागृह में प्रवेश करने पर शवासन की अपेक्षा भी अधिक फल लाभ होता है ।

अथ विशेषो यथा। तदुक्तं कुलचूड़ामणौ—

रजोऽवस्थां समालोक्य तन्मूलेष्विष्टदेवताम्। पूजयित्वा महारात्रौ त्रिदिनं पूजयेन्मनुम्॥ लक्षपीठफलं देव! लभते नात्र संशयः। वेतालपादुकासिद्धिं खड्गसिद्धिञ्च भैरव!॥ अञ्जनं तिलकं गुप्तिं साधयेत् साधकोत्तमः॥

प्रजपेदिति। प्रतिदिनमष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः।

यत्र जापे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः। तत्रैव गणना प्रोक्ता गजाष्टकसहस्रकम्॥ पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्य सहस्रं यदि नित्यशः। तदा वादी सुसिद्धान्तः हतः क्षितितलं विशेत्॥ पर्वते हस्तमारोप्य निर्भयः शुद्धमानसः। कवित्वं लभते सोऽपि अमृतत्वञ्च गच्छति॥ पद्मं दृष्ट्वा तथा विन्दुं खञ्जनं शिखिनं तथा। चामरं रविविम्वञ्च तिलपुष्पं सरोवरम्॥ त्रिशूलं वीक्ष्य जप्त्वा च शतशः शुद्धमानतः। सुप्रसादं सुवचनं सुलोचनं सुहास्यकम्॥ सुवेशं सुभगं गन्धं सुजनं सुखमेवच। लभते च यथासंख्यं शृणु पार्वति! सादरम्। महाचीनक्रमेणैव देवीं ध्यात्वा प्रपूज्यच॥ तद्द्रुमोद्भवपुष्पेण पूजयेद्भक्तिभावतः। स भवेत् कुलदेवश्च कुलक्रमगतः शुचिः॥ ब्रह्मतरोर्महापद्मे देवीं ध्यात्वा यथाविधि। तत् सुधारसधारेण तर्पयेन्मातृकानने॥ तिथिक्रमेणसंख्याभिर्लताभिर्वेष्टितां यदि। तदा मासेन

इस विषय में विशेष यह है यथा—कुलचूड़ामणिमें कहा है, रजोवस्था रमणीको देखकर महारात्रि काल के समय उसके मूल में इष्ट देवता की पूजा करके तीन दिन मन्त्र की आराधना करे। हे देवि! इसमें लक्षपीठ फल लाभ होता है इसमें सन्देह नहीं है और साधक इसके द्वारा वेतालसिद्धि, पादुकासिद्धि, खड्गादिसिद्धि, अञ्जन और तिलकसिद्धि एवं गुप्त साधन करता है। इस स्थल में प्रति दिन अष्टोत्तरशत जप करना चाहिये, यही अभिप्रेत है। जिस जप में वा जिस होम में मनिषिगणों ने जपसंख्या निर्द्देश नहीं की है, उस में अष्टोत्तर सहस्र जप करना चाहिये यही समझै। पृथिवी को ऋतुमति देखकर नित्य सहस्र जप करने पर, सुसिद्धांत वादी भी पराहत होकर क्षितितल में प्रवेश करते हैं, और पर्व्वत में हस्तारोपण कर के, निर्भय और शुद्धचित्त होकर कवित्व और अमृत लाभ करते हैं, पद्म विन्दु, खञ्जन, शिखी, चामर, रविविम्ब, तिलपुष्प, सरोवर और त्रिशूल दर्शन करके शतशः शुद्धचित्त से यथासंख्या जपकरने पर, सुप्रसाद, सुलोचन, सुहास्य, सुवेश, सुभग, सुगन्ध, सुजन, और सुखलाभ किया जाता है, हे देवि! सादर श्रवण करो। महा-

सिद्धिः स्यात् सहस्रजपमानतः ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि दृश्यते । तदैव महती सिद्धिर्देवानामपि दुर्लभा ॥ जपकल्पंमहादेवि! शृणुष्व कमलानने ॥ स्वयं कर्त्तुमशक्तश्चेत् सम्प्रदायविदोऽथवा ॥ देशिकेन पुरश्चर्य्यां कारयेन्मन्त्रसिद्धये ॥

तथाच योगिनीहृदये—

तस्माज्जपं स्वयं कुर्याद् गुरुं वा कारयेद्बुधः । गुरोरभावे विप्रञ्च सर्वप्राणिहिते रतम् ॥ गृहीत्वा भाग्यतो मन्त्रमिमं सद्गुरुवक्त्रतः । पुरश्चर्य्यामवश्यं हि कुर्वीत विजितात्मनः ॥

उत्तरतन्त्रेऽपि—

सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं पुरश्चरणमुत्तमम् । अन्यथा नाधिकारः स्यात् तस्य पूजादिषु प्रिये ! ॥ कारयित्वा पुरश्चर्य्यां मन्त्रिणं शास्त्रवेदिनम् । वस्त्रालङ्कारवसुभिः प्रीणयेद् देवताधिया । ततोऽस्य मन्त्रसिद्धिः स्याद् देवता च प्रसीदति ॥

अथ कुलसारे—

एवंविधविधानेन पुरश्चारी भवेन्नरः । लक्षसंख्यं जपेद्देवि ! होमं

प्राचीन क्रमानुसार, देवी का ध्यान और पूजा करके, उस वृक्षोद्भव पुष्पद्वारा भक्तिभाव से पूजा करनी चाहिये । तो कुलदेव कुलक्रमागत, और सर्वदा शुद्ध सत्त्व होजाता है, ब्रह्मतरु के महा पद्ममें देवीका यथाविधि ध्यान करके तदीय सुधारस धारा से मातृकानन में तर्पण करै । तिथिक्रमानुसार लतावेष्टित होकर, संख्याक्रम से सहस्र जप करनेपर, एक महीने में सिद्धिलाभ होती है । अष्टमी और चतुर्दशी में द्विगुण प्रमाण जप करने से देवगणों को भी दुर्लभ महती सिद्धि प्राप्त होजाती है । हे महादेवि ! जप कल्प श्रवण करो स्वयं जप करने में समर्थ होनेपर मन्त्रसिद्धि के लिये गुरुद्वारा पुरश्चरण कराले, योगिनीहृदयमें कहा है, इसलिये स्वयं जप करै, अथवा गुरुद्वारा करावे गुरु के अभाव में संपूर्ण प्राणियोंके हित में निरत ब्राह्मणके द्वारा करालेवे, भाग्यवशतः सद्गुरुके मुखसे मंत्र ग्रहण करके अवश्य पुरश्चरण करै, उत्तरतन्त्र में भी कहा है. सर्वस्व देकर विहित विधान से पुरश्चरण करै, न करने से पूजादि में अधिकार नहीं होता, शास्त्रवित् मंत्री द्वारा पुरश्चरण कराके देवता बुद्धि से वस्त्र, अलङ्कार और धन द्वारा उसको प्रसन्न करै, तो मंत्रसिद्धि और देवता भी प्रसन्न होते हैं ।

कुलसार में कहा है, इस प्रकार विधानानुसार पुरश्चरण करके लक्ष संख्या जप और उसका दशांश होम करै । विल्वपत्र अथवा नीलपद्म, शर्करा, घृत, और मधु

कुर्य्यात्दशांशतः ॥ विल्वपत्रेण वा देवि ! तथानीलाम्बुजेन च । शर्कराघृतयुक्तेन मधुयुक्तेन वा पुनः ॥ एवं हुत्वा ततो देवि ! तर्पणञ्च तथा पुनः । तर्पयेत् शुद्धदुग्धैश्च तथा च विमलैर्जलैः॥ कुम्भाख्यमुद्रया देवि ! अभिषेकं स्वमूर्द्धनि । ब्राह्मणान् भोजयेद्द्रव्यैः पदार्थैः षड्रसैरपि।विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद् यतः। गोभूहिरण्यवसुभिस्तर्पयेद्देशिकः सुधीः ॥ देशिकाय ततो देवि ! दक्षिणा विभवावधि । दातव्या परमप्रीत्या कार्य्यसिद्धिमभीप्सुभिः॥ देशिके परितुष्टे च तुष्टाः स्युः सर्वदेवता । एवंविधं जपं कृत्वा सर्वसिद्धिमुपालभेत् ॥

अथ जपनियमः । तदुक्तं कुलार्णवे ।

लक्षमात्रं जपेद् यस्तु महापापैः प्रमुच्यते । लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मभवान्यपि । महापातकमुख्यानि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ चतुर्लक्षं जपेद्देवि ! महावागीश्वरो भवेत् । कुबेर इव देवेशि ! पञ्चलक्षात् न संशयः ॥ षड्लक्षजपमात्रेण महाविद्याधरो भवेत् । सप्तलक्षजपान्मन्त्री खेचरी मेलको भवेत् ॥ अष्टलक्षं जपन्मन्त्री देवपूज्यो भवेन्नरः ।अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायको भवति प्रिये ! ॥ वरदास्तस्य राजानः योषितस्तु विशेषतः नवलक्षप्रमाणानि यो जपेत्

युक्त करके होम करना चाहिये, हे देवि ! इस प्रकार होम और तर्पण करके पुनर्वार शुद्ध दुग्ध द्वारा तर्पण और विमल जल द्वारा कुम्भमुद्रा के संयोग से स्वकीय मस्तक में अभिषेक, और षड्विध रसयुक्त द्रव्य द्वारा ब्राह्मणों को भोजन करावे. ब्राह्मणगणों की आराधना मात्र से अङ्गहीन भी सांग होता है. गो भूमि, स्वर्ण और धन द्वारा तर्पण करना चाहिये । अनन्तर देशिक को जिस प्रकार विभव है, तदनुसार कार्य्यसिद्धि की अभिलाषासे परम प्रीतिपूर्व्वक दक्षिणा देवे । देशिकके परितुष्ट होनेपर संपूर्ण देवता तुष्ट होते हैं इस प्रकार जप करने से सर्व्वसिद्धि संग्रह होती हैं ।

इसके उपरान्त जप नियम कहते हैं । कुलार्णव में कहा है लक्षमात्र जप करने से समस्त महापातक दूर होते हैं, दो लक्ष जप करने से, सप्तजन्म समुद्भूत सम्पूर्ण पाप दूर होते हैं और सम्पूर्ण महापातक भी दूर होते हैं इसमें संदेह नहीं हे देवि ! चार लक्ष जप करने से महावागीश्वर होजाता है पांच लक्ष जप करने से कुवेर की समान लाभ होता है. इसमें संदेह नहीं । छः लक्ष जप करनेसे खेचरी मेलकत्व लाभ होती है। अष्ट लक्ष जप करने से, देवगण भी पूजा करते हैं. और अणिमादि अष्टसिद्धि का नायक होजाता है । नरपतिगण विशेषतः योषिद्गण बरदान करते हैं । नव लक्ष प्रमाण से यह कालिका मन्त्र जप करने से, साक्षात् स्वयं हर्त्ता कर्त्ता रुद्रमूर्ति

कालिकामनुम ॥ रुद्रमूर्त्ति स्वयं कर्त्ता हर्त्ता साक्षान्न संशयः । सर्वैर्वन्द्यः सदा सुस्थः सर्वसौभाग्यवान् भवेत् ॥ यत्र वा कुत्रचिद्भागे लिङ्गं स्यात् पश्चिमामुखम्। स्वयम्भूर्वाणालङ्गं वा वृषशून्यं जलस्थितम्॥ पश्चिमायतनं वात्र इतराश्चापि सुव्रते ! । शक्तिक्षेत्रेषु गङ्गायां नद्यां पर्वतमस्तक । पवित्रे सुस्थले देवि ! जपेद्विद्यां प्रसन्नधीः ॥

अथ यामले—

एवं कृतपुरश्चर्यः स्वयं वा गुरुणाऽथवा । सर्वकाम समृद्धिः स्यात् प्रयोगानथ चारयेत् ॥

भैरवतन्त्रेऽपि—

महापीठे शिवक्षेत्रे शून्यागारे चतुष्पथे । पूजयित्वा गन्धपुष्पै-र्धूपदीपानुलेपनैः ॥ कालिकां परमेशानीं जपेदयुतमानकम् । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां संक्रान्त्यां पूर्णिमातिथौ ॥ भौमकुह्व्यां विशेषेण स्वयं वा गुरुणाऽथवा । जपेत्सहस्रमानं तु साष्टं शतमथापिवा ॥ होमये-न्मधुरोपेतैः पायसैः सर्वसिद्धये ॥

कुलसर्वस्वेऽपि—

कारयित्वा स्वस्त्ययनं द्विजेनागमवेदिना । प्रतोष्य दक्षिणाभिस्तं वसेत् कल्पायुतं दिवि ॥

होजाता है । इसमें सन्देह नहीं, और सम्पूर्ण ही वन्दना करते हैं. सर्वदा ही स्वास्थ्य सुख भोग करता है । और सर्वविध सौभाग्यही संगृहीत होता है । लिग, बाह्यलिंग अथवा स्वयम्भूलिंग, पश्चिम मुख विराजमान हों इस प्रकार जो कोई स्थान हो, और शक्तिक्षेत्र, गंगाक्षेत्र, पर्वत शेखर और पवित्र सुस्थल में प्रसन्नचित्त से मन्त्र-जप करे ॥

यामलमें कहा है—इस प्रकार स्वयं वा गुरुकी सहायतासे पुरश्चरण कराकर सर्व-विधि काम समृद्धि संग्रह पूर्वक सम्पूर्ण प्रयोगमें प्रवृत्त होवे । भैरवतंत्र में भी कहा है, महापीठ, शिवक्षेत्र, शून्यागार और चौराहे में गंध,पुष्प, धूप, दीप और अनुलेपन द्वारा परमेश्वरी कालिका की पूजा करके अयुत परिमाण जप करे । अष्टमी, चतुर्दशी, संक्रांति, पूर्णिमा और विशेषतः भौम अमावस्या, इन समस्त में स्वयं वा गुरुकी सहा-यतासे सहस्र वा साष्ट शत जप और सर्वसिद्धि के लिये मधुरोपेत पायस द्वारा होम करे । कुलसर्वस्वमेंभी कहाहै आगमवेदी ब्राह्मणके द्वारा स्वस्त्ययन समाहित करके दक्षिणा द्वारा उसका परितोष विधान करने से अयुतकल्प तक स्वर्गमें वास कर सकता

कुलसारसंग्रहे—

पुण्यकाले युगाद्यायां पुष्ये मूलोत्तरासु च । सुगन्धिकुसुमैर्देवीमर्चयित्वा वरानने ! ॥ जपेत् साष्टसहस्रैस्तु तर्पयेद् दुग्धखण्डकैः । महतीं श्रियमाप्नोति राजानस्तस्य किङ्कराः ॥

वीरतन्त्रे च—

आनीय देशिकं शुद्धं जितेन्द्रियञ्चापि द्विजम् । कारयेत् जपं रात्रौ पूजयित्वा महेश्वरीम् ॥ गन्धताम्बूलधूपाद्यैर्नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः । अष्टोत्तरसहस्रन्तु साष्टं शतमथापि वा ॥ प्रत्यहं कारयेद्धीमान् यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत् । पूर्णमासे तु मन्त्रज्ञं तोषयेत् धनधान्यकैः ॥ पुत्रवत् पालयत्येषा कालिका साधकं सदा । अवश्यं कालिकामन्त्रे जपो रात्रौ मतःप्रिये ! ॥ पूज्यो गुरुः सदा चास्मिन् परमोऽपि गुरुस्तथा । परमेष्ठिगुरुश्चैव परापरगुरुस्तथा ॥ उत्तरोत्तरतश्चैषां प्रशस्ता जपकर्मणि । गुरुर्न रूक्षो द्रष्टव्यो नापि लुब्धस्तथैव च ॥ इदं रहस्यं देवेशि ! नाभक्ताय प्रदर्शयेत् । कुलज्ञाय सुशीलाय वदान्याय महात्मने ॥ गुरुभक्ताय शान्ताय सर्वभूतहिताय च । प्रदद्याद् देशिको देवि ! विधानं कालिकामतम् ॥

है । कुलसारसंग्रहमें भी कहा है, पुण्यकाल, युगाद्या, पुष्य मूल, उत्तरा, इन सबमें सुगन्धि कुसुमसमूह से देवीकी अर्चना करके अष्टसहस्र जप और दुग्ध खण्ड द्वारा तर्पण करनेसे महासमृद्धि लाभ और राजागण भी सेवक होते हैं, । वीरतंत्र में भी कहा है, जितेंद्रिय, शुद्धस्वभाव, देशिकको लाकर, महेश्वरी की पूजा करके रात्रि में जप करावै । गंध, ताम्बूल, धूप और दीपादि पृथक् विधि नैवेद्य द्वारा जप करके, एक महीनेतक प्रतिदिन अष्टोत्तरसहस्र वा साष्टसहस्र जप करना चाहिये । मास पूर्ण होने पर धन और धान्य द्वारा उसी मन्त्रज्ञको सन्तुष्ट करने पर देवी कालिका साधकको पुत्रकी समान पालन करती है । हे प्रिये ! रात्रिमें कालिकाके मन्त्रको अवश्य जप करै । जप समय गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु, और परापर गुरु इनकी सर्वदा पूजा करनी चाहिये, जप कार्य्यमें इनकी उत्तरोत्तरता प्रशस्त है; गुरुको रूक्षभी न देखे, और लुब्ध भी न देखे हे देवि ! यह रहस्य अभक्तसे न कहै. कुलज्ञ, सुशील; वदान्य, महात्मा, गुरुभक्त, शान्त और सर्वभूतके हितमें निरत, इस प्रकार व्यक्तिको ही विधानानुसार यह कालिकामन्त्र प्रदान करै ॥

अथ निशायां दीक्षितायां कुलनायिकां समानीय व्यापकं न्यासं कुर्य्यात् ।

प्रथमं साधकश्रेष्ठो देवीकूटस्य मन्त्रवित् । विलिख्य मन्त्रं पूर्वोक्तं पूजयेत्कुलवर्त्मना ॥ पीठदेवीं प्रथमे च पूजयेद् गन्धपुष्पकैः। महा-भागं ततो मूलदेवीमावरणैः सह ॥ लक्षैकं तत्र जप्त्वा तु चोड्डीयानं ततोविशेत् । देवीकूटस्येति पादपद्मोपरि ।

तत्पीठे योगनिद्राख्यां पूजयित्वा ततो जपेत् ॥ निजेष्टदेवतां तत्र जपेत् लक्षं समाहितः । उड्डीयानमरुयुगमित्यर्थः ।

कामरूपं ततो ध्यात्वा तत्र कात्यायनीं जपेत् । कामरूपं प्रजापतिमित्यर्थः ।

तत्रापि लक्षमानेन जप्त्वा मन्त्रं समाहितः। ततःपूर्णगृहं गत्वा यजेच्चण्डीं ततो जपेत् ॥ पूर्णगिरौ शिरसि इत्यर्थः । यजेदिति मूलदेवीं सावरणां प्रपूज्य लक्षं जपेदित्यर्थः ॥

कामरूपान्तरे वत्स ! कामाख्यां प्रथमं यजेत् । कामरूपं विन्दुचक्रं जप्त्वा रात्रौ समाहितः ॥ संख्यापूर्त्तौ पुनःपृच्छेत् का त्वं देवि! कुलोत्तमे ! एवं कृते विस्मृतश्चेत् स्वनाम गोत्रकान्यपि ॥ तत्रेष्टदैवतैरेव शृणुष्व वरमुत्तमम् । ततः प्रणम्य देवेशीं शृणुयाद्वरमुत्तमम् ॥

अनन्तर रात्रिकालके समय दीक्षिता कुलनायिकाको बुलाकर व्यापक न्यास करै। प्रथम साधक श्रेष्ठ देवीके पादपद्मोपरि पूर्वोक्त मन्त्र लिखकर कुलवर्त्मानुसार पूजा करै। गन्ध पुष्प द्वारा आदि में पीठ देवी की अर्चना करके फिर सम्पूर्ण आवरणके सहित मूल देवीकी पूजा करै। तहाँ लक्ष जप करके उरुयुग में प्रवेश और उसी पीठमें योगनिद्राख्य की पूजा करके जप करना चाहिये। तहां समाहित होकर अपने इष्टदेव की अर्चनाके सहित लक्ष जप करै। फिर प्रजापतिका ध्यान करके कात्यायनीकी अर्चना के अनन्तर तहां लक्ष जप और फिर मस्तकमें समागत होकर चण्डीकी पूजा और जप करै। हे वत्स ! काम रूपान्तर में प्रथम कामाख्याकी आराधना करके फिर रात्रि में समाहित होकर कामरूप विंदुचक्र का जप करै। संख्या पूर्ण होने पर फिर पूंछे हे देवि कुलोत्तमे ! तुम कौन हो ? इस प्रकार पूंछने पर वह यदि विस्मित हो, ता अपना नाम और गोत्र कहै। अथवा अक्षोभित चित्त से कुलाचार परिचर्या परायण

एवं जपवशादेव पुनः पूर्वोक्तमाचरेत् । अक्षोभितकुलाचारपरिचर्य्या-परायणः। अथवा सर्वपीठेषु यजेन्महिषमर्दिनीम् ॥ ततः प्रसन्ना भवति स्वैरं कुलवरं प्रिये ! । ततो जप्त्वा मूलमन्त्रं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥

इतिपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्यामरहस्ये द्वादशः परिच्छेदः ।

अथ त्रयोदशः परिच्छेदः ।

अत्र ग्रन्थगौरवभयात् महाभयादिपीठक्रमो न लिखितः । किन्तु सर्वपीठे महिषमर्दिनीपूजायाः विहितत्वात् क्रमो लिख्यते ।

तदुक्तं कुलचूडामणौ—

भैरव उवाच—

मातर्महिषमर्दिन्याः सङ्केतं कथयस्व नः । कुलाचारस्य संसिद्धौ भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये ॥

श्रीदेव्युवाच—

सृष्टिस्थितिविनाशानामादिभूता महेश्वरी । गोप्या सर्व प्रयत्नेन शृणु तां कथयामि ते ॥ त्रैलोक्यबीजभूतान्ते संबोधनपदं ततः। सृष्टि-संहारवर्णौ द्वौ निष्ठा महिषमर्दिनी ॥

अस्यार्थः -- मदनरिपुशक्तिबीजान्ते महिषमर्दिनीपदमाभिमुख्या-र्थेनोद्धृत्य वह्निललनामुद्धरेदिति ॥

होकर समस्त पीठमें देवी महिषमर्दिनी की पूजा करे । तो वह इच्छानुसार कुलवरके प्रति प्रसन्न होती है, अनन्तर मूलमन्त्र जप करने से सर्व सिद्धि का ईश्वर होता है ॥

इति महामहोपाध्याय श्रीपरमहंस परिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरि
विरचित श्यामारहस्य भाषाटीकासहित
द्वादश परिच्छेद समाप्त ॥ १२ ॥

ग्रंथ गौरव के भय से महाभयादि पीठक्रम नहीं लिखा जाता। किन्तु सम्पूर्ण पीठ में महिषमर्दिनी की पूजा प्राप्त होजाती है। इसलिये उसका ही क्रम लिखते हैं कुलचूडामणि में कहा है, यथा—भैरव ने कहा हे मातः ! कुलाचारसंसिद्धि और भुक्ति मुक्ति प्रसिद्धि के लिये महिषमर्दिनीका संकेत निर्देश कीजिये ॥

श्री देवीने कहा, सृष्टि स्थिति विनाश की आदिभूत महेश्वरी को सर्व्व प्रयत्न से गुप्त रक्खे, मैं तुम्हारे निकट उसका विषय वर्णन करती हूं, श्रवण करो । "ह्रीं महिषमर्दिनी स्वाहा" यह अति गुह्यतर विद्या सृष्टि स्थिति विधान करती है, एवं

अतिगुह्यतराविद्या सृष्टिस्थितिविधायिनी । सर्वदेवसर्वसिद्धि-बीजभूता सनातनी ॥ न कस्मैचित् प्रदातव्या कथिता सिद्धिदा-यिनी । अत्यन्तगुरुभक्ताय शिष्याय यदि कथ्यते । तदाष्टवर्णं वक्तव्यं न बीजं नापि साधनम् ॥ साधारणी प्राणविद्या हृल्लेखा सिद्धिगो-चरा । एतत्पूर्वस्थिता देवी गुरुसिद्धिप्रणाशिनी ॥ विशेषतः कलियुगे महासिद्ध्यौघदायिनी । गुरूणां कुलनाथानां महाशापप्रदायिनी ॥ जय दुर्गा त्वया प्रोक्ता परमा सिंहवाहिनी । त्रैलोक्यबीजभूतान्ते सा परा मर्दिनी कुलम् ॥ वरं वह्निप्रियायुक्ता देवाननसमन्विता । दत्ता ते परमा विद्या केयुक्ता हृदयान्विता ॥ सर्वत्र कुलशास्त्रज्ञे ! महा-शापप्रदायिनी । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गोप्तव्येयं नवाक्षरी ॥ अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं हुनेत्ततः । नारदोऽस्य ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोगायत्र्य-मीरितम् ॥ देवता महिषघ्नीयं पूर्वं बीजं परापरा ॥

अथ अस्याः पूजाक्रमः । प्रातःकृत्यादि स्नानादिकं विधाय द्वार-देवताः पूजयेत् ॥

तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

ऊर्ध्वोदुम्बरके विघ्नं महालक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ ततो दक्षिण-शाखायां विघ्नं क्षेत्रेशमध्यतः । तयोः पार्श्वगते गंगा यमुने पुष्प-वारिभिः ॥ देहल्यामर्चयेदस्त्रं प्रतिद्वारमिति क्रमात् । ततस्त्रिविध-

सम्पूर्ण देवता और सम्पूर्ण सिद्धि की बीज स्वरूप है. मैंने जो तुम्हारे निकट यह सिद्धि दायिनी सनातनी विद्या वर्णनकी, किसी को भी इसका प्रदान न करना। जो व्यक्ति अत्यन्त गुरुभक्त है उससे यदि कहना हो तो अष्टवर्ण मंत्र कहै. बीज वा सा-धन न कहै। यह विद्या कलियुग में महासिद्धि विधान करती है, और कुलनाथ गुरु-गण को महाशाप प्रदान करती है। यह मंत्र अष्टलक्ष जप करै। जपका दशांश होम करना चाहिये। नारद इसके ऋषि, गायत्री इसका छन्द, महिषमर्दिनी इसकी देवता, और परापरा इसका पूर्व्वबीज है। इसकी पूजाका क्रम यह है, यथा—प्रातःकृत्यादि और स्नानादि करके संपूर्ण द्वारदेवता की पूजा करै। तंत्रान्तर में कहा है, गूलर की ऊर्द्धशाखा में विघ्न, महालक्ष्मी और सरस्वती की, दक्षिणशाखामें क्षेत्रेश की, मध्य में विघ्नकी और उनके पार्श्वगत गङ्गा एवं यमुना की पुष्पवारि द्वारा पूजा करके, देहली में अस्त्रकी अर्च्चना करें। इस प्रकार क्रमानुसार प्रति द्वारमें पूजा करनी चाहिये। अनन्तर तीनों विघ्नका उत्सारण, स्थापन, भूतशुद्धि और पूर्व्ववत् प्राणायाम करके

विद्योत्सारणं स्थापनं भूतशुद्धिं प्राणायामंच पूर्ववत् कृत्वा ऋष्यादि-न्यासान् कुर्यात् । तदुक्तम्—नारदऋषिर्गायत्रीच्छन्दः श्रीमहिष-मर्दिनी देवता ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिर्महिषमर्दिनीकीलकं चतुर्वर्ग इत्यभिलप्य पूर्ववत् न्यसेत् । तदा करन्यासं कुर्य्याद् यथा—ओं महिषहिंसके ! हुं फट् । अंगुष्ठाभ्यां नमः । ओं महिषशत्रो ! सर्वे हुं फट् तर्जनीभ्यां स्वाहा ओं महिषं हिंसय हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट् । महिषं हन हन देवि ! हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं । ओं महिषमर्दिनि ! हुं फट् करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् । इति न्यस्य एवं पञ्चपञ्चाङ्गेषु अङ्गन्यासं कृत्वा ऊर्द्ध्वोर्द्ध्वतालत्रयं कृत्वा दशदिग्बन्धनं कुर्यात् ।

तदुक्तं तत्रैव—

ओं महिषहिंसके ! हुं फट् हृदयाय नमो हृदि । ओं महिषशत्रो ! सर्वे हुं फट् शिर उदीरितम् ॥ ओं महिषं हिंसय हुं फट् शिखामन्त्र उदीरितम् । ओं महिषं हन हन देवि ! हुं फट् कवंच इत्यपि ॥ ओं महिषमर्दिनि । हुं फट् अस्त्राणि शृणु भैरव ! ॥

ततः पूर्ववन्मातृकान्यासव्यापकन्यासौ कृत्वा कुलकुसुमादिना वृत्तषोडशदलकेशराष्टदलाष्टवर्णयुक्तं वृत्तचतुरस्रं चतुर्द्वारकर्णिकाढ्य-बीजात्मकं यन्त्रं निर्माय पुरतः सिंहासने संस्थाप्य तत्राधारशक्त्या-दिपीठदेवताः च संपूज्य पूर्ववदर्घ्यस्थापनादिकं कृत्वा देवीं ध्यात्वा पूजयेत् ।

तदुक्तं तत्रैव—

ध्यायेत् कालीं महादैत्य युद्धासरसोन्मुखीम् । दक्षिणे चक्र

ऋष्यादि न्यास में प्रवृत्त होवे वही कहा है। यथा—नारदऋषि, गायत्रीछन्द, श्रीमहि-षमर्दिनी कीलक, और चतुर्व्वर्ग विनियोग हैं, इस प्रकार करके, पूर्व्ववत् न्यास करै। तिस समय करन्यास करना चाहिये। यथा-ओं महिषहिंसके इत्यादि। तदनन्तर पूर्व्व-वत् मातृकान्यास और व्यापकन्यास करके कुलकुसुमादि द्वारा वृत्त षोड़शदल केशराष्ट दलाष्ट वर्णयुक्त वृत्त चारों ओर चतुर्द्वारकर्णिकाढय बीजात्मक यंत्रनिर्म्माण एवं सम्मुख सिंहासन में स्थापन पूर्व्वक उसमें आधारशक्त्यादि पीठदेवता की पूजा करै और पूर्व्ववत् अर्घ्यादि स्थापन सहित उसका ध्यान करै। उसी में कहा है, यथा—महादैत्य के सहित युद्धासवरसोन्मुखी देवी कालिका का ध्यान करै। उनके

खड्गौ च बाणशूलौ तथैव च ॥ वामे शंखं तथा चर्म धनुस्तर्जनमेव च। बिभ्रतीं कालतीव्रोरुमहिषाङ्गनिषेदुषीम् ॥ पीताम्बरधरां देवीं पीनोन्नतकुचद्वयाम्। जटामुकुटशोभाढ्यां पितृभूमिसुखावहाम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसोपचारैः संपूज्य आवाहनादिकं कृत्वा षोडशोपचारैः देवीं पूजयेत्। अङ्गमन्त्रैरङ्गानि संपूज्य कामाख्यां दिशि पर्यंतं पूर्वोक्तप्रह्लादानन्दनाथादिगुरुपंक्तिं गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरूंश्च पूजयेत्। पूर्वाद्यष्टदले आं दुर्गायै ईं वरवर्णिन्यै ऊं आद्यायै एं कनकप्रभायै ऐं कृत्तिकायै ओं अभयप्रदायै औं कन्यकायै अः स्वरूपायै नम इति पूजयेत्।

तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

आदौ दुर्गां ततो वर्णां ततोऽपि आद्यकाह्वयाम्। ततः कनकप्रभाञ्चैव कृत्तिकामभयप्रदाम् ॥ कन्यकांच स्वरूपाञ्च यजेत्पूर्वादितः सुधीः ॥

कुलचूडामणौ—

अष्टपत्रे यजेद्देवीं दुर्गाद्यां दीर्घपूर्विकाम्। दीर्घशब्देन अत्र पारिभाषिकग्रहणम्। तेन आ ई ऊ ए ऐ ओ औ अः इति शारदाटीकाकारेणोक्तम्। ततो देव्या दक्षोर्द्ध्वहस्ततः पत्राग्रे यं चक्राय नमः वं

दक्षिण हस्त में चक्र, खड्ग शूल, और शव है, वाम हस्त में शंख, चर्म्म, धनु और तर्ज्जन है। वह कालकी समान तीव्र प्रकृति और विपुल पराक्रम महिषके अंग में पदन्यस्त किये हुये हैं, उनके परिधेय पीतवर्ण हैं। उनके दोनों कुच पीनोन्नत हैं। जटा और मुकुट के संसर्ग से उनकी अतिशय शोभा प्रादुर्भूत हुई है। वह पितृ भूमिका सुख विधान करती हैं इसप्रकार ध्यान करके मानस उपचार से पूजा करता हुआ आवाहनादि विधान के सहित षोडश उपचार से अर्च्चना करै। अङ्ग मंत्र द्वारा सम्पूर्ण अंगकी आराधना करके पूर्वोक्त प्रह्लादानन्द नाथादि गुरु पंक्ति, गुरु परमगुरु और परमेष्ठी गुरुकी पूजा करै। पूर्वादि अष्टदलमें "आं दुर्गायै" इत्यादि विधानसे अर्च्चना करनी चाहिये। तंत्रान्तर में कहा है, आदिमें दुर्गाकी फिर वर्णा की आद्याकी फिर तदनंतर यथाक्रमसे कनकप्रभा, कृत्तिका, अभयप्रदा, कन्यका और स्वरूपाकी पूर्वादि क्रमसे पूजा करै। कुलचूडामणि में कहा है, अष्टपत्र में दीर्घस्वर के सहित दुर्गाकी अर्च्चना करनी चाहिये। अनन्तर देवी के दक्षिण हस्त के ऊर्द्ध में पत्राग्र में

खड्गाय नमः। लं बाणाय नमः। वं शूलाय नमः वामोर्ध्वतः शं शङ्खाय नमः चं चर्मणे नमः हं तर्जनाय नमः सं धनुषे नमः इति पूजयेत्।

तदुक्तं तत्रैव—

आयुधानि पत्राशाग्रे यादिभिः क्रमशो यजेत्। ततोऽष्टदलबाह्ये ब्रह्माण्याद्यष्टशक्तीः संपूज्या चतुरस्रे पूर्वादिक्रमेण लोकपालान् तद्बहिस्तदस्त्राणि पूजयेत्।

तदुक्तं तत्रैव—

ब्रह्माण्याद्यास्ततः पश्चात् लोकपालान् ततो बहिः। तदस्त्राणि सिद्धमन्त्री प्रयोगञ्च समाचरेत्॥ ततः पुनर्देवीं संपूज्य यथाशक्ति जपं कृत्वा अर्घ्यजलपुष्पाभ्यां गुह्यातिगुह्यमन्त्रेण देव्या वामकरे जपं समर्प्य स्तुतिं कृत्वा प्रदक्षिणांष्टाङ्गप्रणामं विधाय देवीं स्वहृदि विसर्जयेदिति।

अथ पुरश्चरणनियमो यथा—

अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्ततः। ततो होमदशांशतर्पणं तद्दशांशाभिषेकं तद्दशांशं ब्राह्मणभोजनमिति पुरश्चरणाङ्गत्वाद् दक्षिणा होमद्रव्यनियमो यथा—

"यं वक्राय" इत्यादि कहकर पूजा करै इसी से यह कहा है यथा—पत्राग्र में "य" इत्यादि कहकर सम्पूर्ण आयुध की क्रमानुसार पूजा करै। अनन्तर अष्टदल के बाहिर ब्राह्मणी इत्यादि अष्टशक्ति की पूजा करके चारों ओर पूर्वादि क्रमसे सम्पूर्ण लोकपालों की और उनके बाहिर अस्त्रसमूह की अर्चना करै। इसीसे यह कहा है। यथा—प्रथम ब्राह्मणी इत्यादिकी फिर बाहिर सम्पूर्ण लोकपालोंकी और उनके अस्त्र समूह का प्रयोग विधान करै। अनतन्र पुनर्वार देवीकी पूजा करके यथाशक्ति जप सहित अर्घ्यजल और पुष्प द्वारा गुह्यातिगुह्य मन्त्रसे देवीके वामहस्त में वह जप समर्पण और स्तव करके प्रदक्षिणा के सहित अष्टांग प्रणाम के पीछे देवीको अपने हृदय में विसर्ज्जन करै॥

पुरश्चरण का नियम यथा--अष्टलक्ष मंत्रसे जप और उसका दशांश होम करके होम का दशांश तर्पण तर्पण का दशांश अभिषेक, अभिषेक का का दशांश ब्राह्मणों को भोजन करावे यह पुरश्चरण की अंगवशतः दक्षिणा है, होम द्रव्य का नियम यथा—तिल द्वारा होम करने से राजागणों को वश में किया जाता है। सिद्धार्थद्वारा होम करै, तो तत्क्षणात् मुक्त होता है।

वशयेत्तिलहोमेन नरान्नरपतीनपि । सिद्धार्थैर्जुहुयान्मन्त्री रोगैर्मुच्येत तत्क्षणात् ॥ पद्मं हुत्वा यजेत् शत्रून् दूर्वाभिः शान्तिमेव च । पलाशकुसुमैः पुष्टिर्धान्यैः धान्यश्रियं लभेत् । काकपक्षैः कृतो होमो द्वेषं वितनुते नृणाम् । मरीचहोमैर्मरणं रिपुराप्नोति सर्वदा ॥ क्षुद्राभिचारभूतादीन् ध्यात्वा देवीं विनाशयेत् ।

कुलचूडामणौ–

प्रयोगहोमसंशये सहस्रवसुसंज्ञकम् ॥ एषा विद्या महाविद्या न देया यस्य कस्यचित् । यदि भाग्यवशाद्देवि ! कुलदेवी कुलोत्तमैः ॥ दीक्षिता कुलजाभिस्तु सिद्धिदा सैव नान्यथा ॥

गुप्तरहस्योक्तं महिषमर्दिन्याः कवचं लिख्यते ।

भैरव उवाच–

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि मर्दिन्याः कवचं शुभम् । यस्याराधनमात्रेण महाभैरवतां व्रजेत् ॥ देवैर्देवत्वविषये सिद्धैः खेचरसिद्धये ! पन्नगैराक्षसैर्मर्त्यैर्मुनीभिः सेवितं सदा ॥ अस्याः कवचं महापुण्यं स्वयं वक्त्राद् विनिःसृतम् । भूप्रदेशे समे शुद्धे पुष्पप्रकरसंकुले ।

पद्म द्वारा होम करनेसे सम्पूर्ण शत्रुओंको जीता जाता है। दूर्वा द्वारा होम करनेसे शांति प्राप्त होती है। पलाश कुसुम से पुष्टि और धान्य से धान्यसमृद्धि लाभ होती है काकपक्ष द्वारा होम करने से, लाकों के प्रति विद्वेष विस्तृत किया जाता है। मरीच द्वारा होम करनेसे शत्रु की सर्वदा मृत्यु होतीहै और देवीका ध्यान करनेसे क्षुद्राभिचार भूतादि विनष्ट हो जाते हैं। कुलचूड़ामणि में कहाहै। प्रयोग और होम संशय में अष्टसहस्र जप करै। यही विद्या महाविद्या है जिस किसी को न देवे। हेदेवि! यदि भाग्यवश कुलोत्तम और कुलजागण कुल देवी को दीक्षिता करें। तो वही सिद्धि प्रदान करती है। इसके अन्यथा नहीं होता। अब गुप्तरहस्य कथित महिषमर्दिनी का कवच लिखते हैं।

भैरव ने कहा हे देवि? श्रवण करो महिषमर्दिनी का परम कवच वर्णन करता हूं, जिस की आराधना मात्र से ही महाभैरव हो जाता है। देवगण देवत्व सिद्धि के लिये, सिद्धगण खेचरत्व साधन के लिये और पन्नग राक्षस, मर्त्य और मुनिगण, स्वाभिलाष सम्पादनार्थ सर्वदा इस की सेवा करते हैं। यह महा पुण्य कवच स्वयं इनके मुख से निकला है। बुद्धिमान् साधक, सम, शुद्ध और पुष्प

कल्पयेदासनं धीमान् कोमलं कम्बलासनम् ॥ वामे गुरुं पुनर्नत्वा दक्षिणे च गणाधिपम् । मध्ये तु मर्दिनीं नत्वा सर्वं रक्षन्तु मां सदा ॥ आग्नेय्यां नैर्ऋते पातु ऐशान्यां वायवे तथा । उत्तरे पातु ललिता जिह्वाललनभीषणा ॥ कौमारी पश्चिमे पातु धनदा च दिशो दश: । शाकिनी डाकिनी पातु मर्दिनी पातु सर्वदा । कल्पवृक्ष: सदा पातु विघ्ने च रक्तदन्तिका । एतास्तु वरयोगिन्यो रक्षन्तु साधकाग्रत: ॥ पठित्वा पाठयित्वा च कवचं सिद्धिदायकम् । पठेन्मासत्रयं मन्त्री वारमेकं तथा निशि ॥ रात्रौ वारत्रयं जप्त्वा नाशयेद्विघ्नमेव च । जपन्मासत्रयं विद्यां राजानं वशमानयेत् ॥ भीतो भयात् प्रमुच्येत देवि ! सत्यं न संशय: । अप्रकाश्यमिदं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥ सत्कुलीनाय शान्ताय सुजने दम्भवर्जिते दद्यात् स्तोत्रमिदं पुण्यं सर्वकर्मफलप्रदम् ॥ कवचं यो न जानाति जपेन्महिषमार्दिनीम् । दारिद्र्यत्वं भवेत्तस्य सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ अनया सदृशी विद्या नास्ति तन्त्रेस्तु गोपिता ॥

इति कवचं समाप्तम् ।

समूह से समाकीर्ण भूमिप्रदेश में कोमल कम्बलासन कल्पना करके वाम में गुरु, दक्षिण में गणाधिप और मध्य में मर्दिनी को प्रणाम करके कहै, सम्पूर्ण मेरी सर्वदा रक्षा करो जिह्वा, ललना, भीषणा, ललिता मेरे आग्नेय, नैर्ऋत ऐशान, वायव्य, और उत्तर में रक्षा करैं। कौमारी पश्चिम में और धनदा दशोंदिशाओं में रक्षा करैं। शाकिनी डाकिनी और मर्दिनी मेरी सर्वदा रक्षा करैं। कल्पवृक्ष और रक्तदन्तिका विघ्न के समय मेरी रक्षा करैं। यह सब वरयोगिनी, साधक की अग्रत: रक्षा करैं। यह सिद्धिदायक कवच पाठ करके और पाठ कराके, तीन महीने तक रात्रि म एक बार पाठ करैं। रात्रिकाल के समय तीन वार जप करने से विघ्न नष्ट होते हैं। तीन महीने इस प्रकार जप करने से राजागणों को भी वश किया जाता है और भय से मुक्त होता है। यह सत्य कहता हूं। इस में संशय नहीं यह कवच गुप्त रक्खे प्रकाश न करै। जिस किसी को भी न देवे सत्कुलीन, शांत सुजन और दम्भरहित व्यक्ति को ही यह सर्वकर्मफलप्रद पवित्र स्तोत्र प्रदान करै। जो व्यक्ति कवच न जानकर, महिषमर्दिनी का जप करता है मैं सत्य सत्य कहता हूं उसको दारिद्र्य दु:ख उपस्थित होता है। इसकी समान सम्पूर्ण तंत्र में गुप्त विद्या दूसरी नहीं है। इति कवच समाप्त ॥

अथ स्तुतिः तदुक्तं कुलचूड़ामणौ।

भैरव उवाच।

मच्चित्ते चर चण्डि चूर्णितदुराचारप्रचण्डासवे स्वैरं दारय भूविदुर्धरदवद्रोहोर्मिमर्मास्पदः। तेनायं निरुपद्रतो निरुपमश्रीपादपद्माटवीप्रान्तानन्तवशान्तरे मम मनोहंसश्चिरं नन्दतु ॥ १ ॥ हित्वा चण्डि! हिरण्यदारणपटुप्रोद्दामन्दतांगुलिः स्फालत्कल्पसुमेरुसादरसटाटोपं नृसिंहं सुराः। मातस्तत् पशुपाशपेशलपटुश्रीपाद संसेविनं सेवन्ते करिवैरिणं किमरिभिर्भीतिर्भवेत् सेविनाम् ॥ २॥ चण्डि! त्वद्विषयान्तरक्षणपदं श्रोत्रान्तरं चोद्धतं तत्तत्त्वं पुरुष प्रकृत्यनुगतं ब्रह्मादिभिर्गीयते। तस्माद्देवि! समस्तदैवत सुधासारैकधामस्फुरत् श्रीमत्पादसरोजचुम्बनपरं मामद्य सम्भावय ॥ ३ ॥ मन्निद्रा यदि वास्तु तत्कुलपथाचाराद्वरं मास्तु वा कीर्त्तिः केशवकौशिकार्चनकरी नैवास्तु सत्सन्निधिः। मातर्ब्रह्महरिस्मरारिहुतभुग्दैत्यारिसेवापदश्रीमत्पादसरोजचिन्तनविधौ चित्तं सदैवास्तु नः ॥ ४ ॥ निर्दिष्टो-

---

अब कुल चूड़ामणि में कही स्तुति कथनकी जाती है। भैरव बोले– हे चण्डिके! आपने दुराचारी प्रचण्डासुर को चूर्णित किया है, आप मेरे मनरूपी मन्दिर में विचरण करके मेरी जिघांसा रूप मर्म स्थान की आपदाओं को दूर कीजिये। जिस से मेरा मानसहंस द्रोहियों को नष्ट करने के कारण शान्ति से आपके अनुपम (उपमा रहित) चरण कमल रूपी वन की प्राप्ति जनित आनन्द सागर में सदा आनन्दित होता रहे ॥ १ ॥ हे मैया चण्डिके! आपने हिरण्य कशिपु का उदर विदीर्ण करने में दक्ष हस्ताङ्गुलियुक्त सुमेरु पर्वत को छूने वाली जटाभार सम्पन्न नृसिंह मूर्त्ति ग्रहण की थी, देवता लोग उस मूर्त्ति की उपासना नहीं करके आप के पशुपाश पेषण दक्ष-गजासुर नाशक आकार की सेवा किया करते हैं। हे जननि! जो जिस किसी आकार में आप की सेवा करें, उन को शत्रु का भय नहीं हो सकता ॥ २ ॥ हे चण्डि! आप पुरुष प्रकृति स्वरूपिणी हैं, यह बात ब्रह्मादि देवता कहा करते हैं। मैं संपूर्ण देवगण सागर शोभायमान आप के कमलरूपी श्रीचरणों का आश्रय करने में समर्थ होऊं अर्थात् सदा आप के चरण कमलों को चूमता रहूं ॥ ३ ॥ हे माता! कौल धर्म का आश्रय करने पर कोई मेरी निन्दा करे तो करो, इस जगत् में मेरी कीर्त्ति न हो और केशव कौशिकादि देवताओं के सेवक मेरे निकटस्थ न हों तो मत हों इस में मेरी कोई हानि नहीं है, किन्तु हे जननि! ब्रह्मा इन्द्र शिव, अग्नि और विष्णु द्वारा सेवित आप के चरण कमलों की चिन्ता में मेरा चित्त निरन्तर आसक्त रहे ॥४॥

ऽस्मि यदि त्वदीयपदयुक्पूर्वापरीभावेन निर्दिष्टस्य तदा ममापि विरलं किंवास्तु सिद्धास्पदम् । तस्माद्देवि ! कृपाभवाञ्छितभवं श्रीपादपद्मद्वयं मच्चित्ते सततं हृदि प्रसरतु क्षेमङ्करि ! क्षम्यताम् ॥५॥ स्वात्मानं परिरभ्य भूतपतिरप्युन्मादमासादितः स्वैरं जीवनरक्षणे सचकृती नैवाभविष्यत् प्रभुः। दैवाद्विच्युतचन्द्रचन्दनवनप्रागल्भगर्भस्त्रवन्माध्वीपूर्णभवत्पदैककमलामोदेन नास्वादितः ॥ ६॥ हाहा मातरनादिमोहजलधिव्याहारसिद्धाखिलब्रह्मानन्दरसाभिषेकनिरसस्वान्तोदरैर्मादृशः । अस्माकं सुरवृन्दनिर्भरमनस्तापाभिभूतिक्षमश्रीमद्भक्तिरसातिदुर्दिनपरीणाहः सदा सर्पतु ॥ ७ ॥ यत्पादस्फुरदंशुजालजठराचण्डांशुकोटिस्खलत्स्वान्तध्वान्तविसारिनिर्मलचिदानन्दत्रयं—दैवतम् । स्वर्गं संसृजते स्थितिं वितनुते सृष्टिं पुनर्लुम्पते प्रोद्भिन्नाऽजननीलनीरजमहाच्चित्ते तदेवास्तु नः॥८॥या शरवन्महिषच्छलस्फुरमिलद्गर्भाब्धिधारस्फुरद्धक्कान्तः प्रसरत्समस्तमशिरो दैत्यं समालम्बते । सा दुर्गा भयदुर्गदुर्गतिहरा लम्बान्तरत्रासिनी दृप्यद्दैवत वैरिमारणपटुज्जीयाज्जयाह्लादिनी ॥ ९ ॥ नृत्यत्खेटकचामरां जनचरच्चक्राद्यखड्गावर स्फायच्छैलशिली मुखोच्छलदनल्पाजिच्छुतास्त्रायुधौ ।

हे मातः ! मैं आप के दोनों चरण कमलों का ध्यान करने में निरत हूं इस वास्ते मुझ को सिद्ध क्षेत्रादि की क्या आवश्यकता है ? मैं केवल यही प्रार्थना करता हूं कि मेरे हृदय में आप के दोनों चरण कमल सदा स्थित रहें । हे मैया ! आप क्षेमकरी हैं मेरे अपराध को क्षमा कीजिये ॥ ५ ॥ हे माता ! उन्मत्त भूतपति भी कपूर और चन्दन स्रावी मधुपूर्ण आप के चरण कमलों का बिना आस्वाद किये जीवन धारण करने में समर्थ नहीं होते, अर्थात् आपको आश्रय करके ही वे परमेश्वर बने हैं,अन्यथा वे जीवन धारण करने में समर्थ नहीं हैं ॥ ६ ॥ हे माता ! हम अनादि मोहसागर में डूब रहे हैं हमारा अन्तः करण ब्रह्मानन्द का रस चखने में असमर्थ है, अतएव जिस भक्ति रस के चखने पर देवताओं के मन का अतिशय संताप दूर हो गया है उसी भक्तिरस का आस्वाद हमारे मन में उपस्थित होवे ॥ ७ ॥ हे जननि ! तुम्हारे जिन चरण कमलों के निर्मल अंशु जाल से विमल चिदानन्द मूर्ति ब्रह्मा,विष्णु और रुद्र उत्पन्न होकर सृष्टि स्थिति और संहार कार्य करते हैं वे नीरद कान्ति चरणयुगल हमारे चित्त में निरन्तर स्थित रहें ॥ ८ ॥ हे माता ! जो इन्द्रादि द्वारा पूजित आप की ऐसी विमल मूर्ति का ध्यान करते हैं, जो पराये पुर को संक्षोभादि करने में समर्थ होते हैं अर्थात् शत्रु पक्ष का नाश कर सकते हैं और राज्य लाभ तथा वैरियों को परास्त कर सकते हैं उन की

वाञ्छावात-विसर्पिनार्त्तितशिरः साटोपदुष्टासुरत्रुट्यत्खण्डविखण्डिता-खिलशङ्कुंतक्षुत्पिपासाकुलैः ॥१०॥ काञ्चीकल्पविरामकालकलितां तीव्रोरुसम्पादकोन्माथ्यन्माहिषातिर्य्यगायतशिरः शृङ्गान्तरालस्थले । वर्णैर्वर्णसुपत्रमध्यकलिते रक्षाश्रुती मातृभिः सेव्ये चारुवराङ्गने रणमुदा चूर्णायमानां स्मरेत् ॥ ११ ॥ ऊर्ध्वाधःक्रमसव्यवामकरयोश्चक्रं दरं कर्तृका खेटं बाणधनुस्त्रिशूलभयकृन्मुद्रां दधानां शिवाम्। श्यामां नीलघनोच्चकुन्तलचयप्रोन्नद्धजूटास्फलद्धारास्फाललसत्करालवदनां-घोराट्टहासोद्भटीम् ॥ १२ ॥ एवं ये भवदेवि! मूर्त्तिमनघां ध्यायन्ति दुर्गादिभिः। शक्राद्यैरपि पूजितां परपुरक्षोभादिकं कुर्वते । राज्यं शत्रुजयः सदर्थधिषणा काव्यामृतं देशिकः स्तम्भोच्चाटनमारणादिकृतिनां तेषां स्वयं जायते॥ १३ ॥ स्तोत्रं ते चरणारविन्दयुगलध्यानावधानात्मया मंत्रोद्धारकुलोपचाररचितं गुप्तोपदेष्टा यदि । ये शृण्वन्ति पठन्ति देवि ! सहसा श्रीमोक्षकामादयस्तेषां हस्तगता भवन्ति जगतां मातर्नमस्ते जयः । इति स्तुतिःसमाप्ता ॥

चितामध्ये च यो दद्यात् बलित्रितयमुत्तमम् । कालरात्रि महाकालि ! कालिके ! घोरनिःस्वने ! । गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धि-

---

बुद्धि सदर्थ में जाती है, वे काव्यामृत का आस्वाद करनेमें समर्थ होते हैं और सरलता पूर्वक स्तंभन उच्चाटन और मारणादि कर्म कर सकते हैं ॥ ६ ॥ १३ ॥ हे जननि ! मैंने आप के दोनों चरण कमलों का ध्यान करके इस स्तोत्र की रचना करीहै हे देवि ! जो पुरुष इस को सुनते वा पढ़ते हैं उन की तत्काल सम्पद कामना पूर्ण होती है और अन्त में मुक्ति मिल जाती है । आप जगत् की माता हैं मैं आप को प्रणाम करता हूं । आप की जय हो ! ॥ १४ ॥

(इति स्तुति समाप्त)

हे कालिके ! हे महाकालि ! तुम्हीं कालरात्रि और तुम्हीं जगत्की जननी हो। मेरी यह बलि ग्रहण करो। और मुझको अत्युत्तम सिद्धि प्रदान करो। यह कहकर चिता में श्रेष्ठ विधान से तीन बलिप्रदान करें। हे सुन्दरि ! बलिप्रदान करके पञ्चगव्य द्वारा अस्थिसम्प्रोक्षण पूर्वक पीठमंत्र न्यास करे। भोजपत्र वा वटपत्र पर पीठ

मनुत्तमाम् । कालिकायं वलिं दत्त्वा पंचगव्येन सुन्दरि ! ॥ अस्थि-
संप्रोक्षणं कृत्वा पीठमंत्रं न्यसेत्ततः । भूर्जे वा वटपत्रे वा तत्र पीठमनुं
न्यसेत् ॥ पीठमास्तीर्यतस्मिन् वै न्यसेद्वीरासनं ततः । वीरासनेन
देवेशि ! रक्षां दिक्षु प्रकल्पयेत् ॥ कूर्चयुग्मद्वयं देवि ! मायायुग्मं ततः
परम् । कालिके घोरदंष्ट्रे ! च प्रचण्डे ! चण्डनायिके ! ॥ दानवान्
द्रावयेत्युक्त्वा हनेति द्वितयं ततः । शवशरीरमहाविघ्नं छेदय
द्वितयं ततः ॥ द्विठांते वर्मशस्त्रान्ते वीराद्रक्षोऽयं मनुर्मतः । अनेन
मंत्रेण लोष्ट्रं पार्श्वे दिक्षु विनिः क्षिपेत् ॥ तन्मध्ये भैरवो देवो न
विघ्नैः परिभूयते । यदि प्रमादाद्देवेशि ! साधको भयविह्वलः ॥
ततस्तैस्तैः सुहृद्वर्गै रक्षिता नाभिभूतयः । अर्केन्दुसितवाट्यालसूत्रै-
र्निर्मितवर्त्तिकाम् ॥ प्रदीपं तत्र संस्थाप्य अस्त्रं तत्र प्रपूजयेत् । हते
तस्मिन् महादीपे विघ्नैश्च परिभूयते ॥ तदधश्चास्त्रमन्त्रेण निखनेत्
कुलदीपकम् । तत्तत् कल्पविधानेन भूतशुद्ध्यादिकं चरेत् ॥ षोढां
वा तारकं वापि विन्यस्य पूजनं ततः । मन्त्रध्यानपरो भूत्वा जपेन्मं-
त्रमनन्यधी ॥ एकाक्षरी यदि भवेत् दिक्सहस्रं ततो जपेत् । द्व्यक्षरे
चाष्टसाहस्रं त्र्यक्षरे त्वयुतादूर्ध्वकम् ॥ अतः परन्तु मंत्रज्ञो गजांतक-
सहस्रकम् ॥ निशायान्तं समारभ्य उदयांतं समाचरेत् ॥

मंत्र न्यस्त करना चाहिये । उसमें पीठ आस्तीर्ण करके वीरासन न्यास करै । हे देवेशि!
उसी वीरासनद्वारा चारों ओर रक्षा कल्पना करके प्रथम दोनों कूर्च अनन्तर "कालि-
काघोरदंष्ट्रे प्रचण्डचण्डे नायिके दानवान् द्रावय हन हन शवशरीर महाविघ्नं छेदय
छेदय स्वाहा फट्" इस प्रकार प्रयोग करै । इसका नाम पीठमन्त्र है । इस मंत्र द्वारा
पार्श्व में और संपूर्ण दिशाओं में लोष्ट्र निक्षेप करै । तो फिर समस्त विघ्न आक्रमण
नहीं करसक्ते । हे देवेशि ! साधक यदि प्रमादवशतः भयविह्वल हो, तो उन्हीं २
सुहृद्वर्गों से रक्षित होता है । फिर अभिभूत नहीं होता । तिस काल अर्केन्दु सित
वाट्याल की वर्त्तिका प्रदीप और अस्त्र तहां संस्थापन करके पूजा करनी चाहिये ।
उस प्रदीपके विनष्ट होनेपर विघ्न परम्परा पराभूत करते हैं । उसके अधोभाग में
अस्त्रमंत्र से कुलदीप खनित और तत्तत् कल्प विधानानुसार भूतशुद्धि इत्यादि करै ।
एवं षोढा अथवा तारक न्यास करके फिर पूजा में प्रवृत्त और मंत्र ध्यान परायण
होकर अनन्य चित्त से जप करै । एकाक्षरी होनेपर दस हजार जपे द्व्यक्षरी होनेपर
अष्टसहस्र त्र्यक्षरी होनेपर अयुतार्द्ध और इसके उपरांत आठ हजार जपकरै । प्रातः
कालसे उदयास्त पर्यंत जप करना चाहिये ॥

अन्यत्रापि—

पंचोपचारेण पुरतो देवतां परिपूजयेत्। यद्यसत्यमयं वापि नेत्रे वस्त्रेण बन्धयेत् ॥ ततोऽर्द्धरात्रिपर्यन्तं यदि किंचिन्न पश्यति। जयदुर्गामेननार्घ्यं तनैव सर्षपान् क्षिपेत् ॥

जयदुर्गामन्त्रो यथा।

तदुक्तं बृहन्मत्स्यसूक्ते—

तारो दुर्गे युगं रक्षि ततो ढांतं सलोचनम्। द्विठान्ता जयदुर्गेयं विद्या वेद्या दशाक्षरी ॥ तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवः सृष्टिकारकः। पितृणां स्वर्गतुष्ट्यर्थं मर्त्यानांतु स रक्षकः ॥ भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः। इति क्षिप्त्वा तिलानात्मचतुर्भागे शिवादितः॥ ततः सप्तपदं गत्वा पुनस्तत्रैव संविशेत्। देवं तत्रापि संपूज्य पूजयेन्मनुमुत्तमम् ॥ निर्भयः प्रजपेद् यावत् सिद्धिरग्रे भवेन्नरः। तत् सत्यं कारयित्वा च वरयेद्वर मुत्तमम् ॥ यदा बलिं प्रार्थयते नरं कुंजरमेव वा। दिनांतरे च दास्यामि स्वीकृत्य च गृहं व्रजेत्। परेऽन्हि च ततो दद्यात् पिष्टेन नवकुंजरान् ॥

अन्यत्र भी कहा है—पंच उपचार से देवी की भली भाँति पूजा करै। यदि असत्य भय हो, तो वस्त्र द्वारा दोनों नेत्र बंद करै। अन्तर यदि अर्द्धरात्रि पर्यंत कुछ न देखा जाय, तो जय दुर्गा का मंत्र उच्चारण करके उसके द्वारा अर्घ्य प्रदान कर समस्त सरसों बखेरे। जय दुर्गा का मंत्र, यथा—वृहत् मत्स्यसूक्त में कहा है, प्रथम तार अर्थात् ओं फिर दुर्गे युग्म अर्थात् दुर्गे २इसके उपरान्त सलोचन अर्थात् ह्रस्व इकार युक्त ढांत अर्थात् मूर्द्धन्य णकार सहित रक्षिपद प्रयोग करके फिर द्विठान्ता अर्थात् स्वाहा शब्द प्रयोग करै। तो "ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणी स्वाहा" इस प्रकार मंत्र हुआ। यही जय दुर्गा का दशाक्षर मंत्र है यह मंत्र उच्चारण करके समस्त तिल बखेरे, तिस काल इस प्रकार कहना चाहिये "तिलोसि इत्यादि,,। यह कहकर ईशानादि दिशा के क्रम से आत्म चतुर्भाग में सम्पूर्ण तिल बखेर कर सात (पद) चलकर उसी स्थान में प्रवेश और देवता की पूजाकरकेन्त्मपूयर बजकरैंनकरकनिभंत्रहो जमंती क। सिद्ध सन्मुख न हो तबतक जप करना चाहिये। सिद्धि सन्मुख होने पर उसको सत्य पाश में बद्ध करके वरकी प्रार्थना करै तिस काल वह सिद्धि नर वा हस्ती जिस किसी बलि की प्रार्थना करै, दिनान्तर में दिव कह कर स्वीकार करके गृह में गमन करै। दूसरे दिन यव वा धान्यके लोष्ट्र द्वारा विनिर्मित नौ (९) कुञ्जर प्रदान करै तन्त्रान्तर में भी कहा है, यथा—चन्द्रहास अर्थात् अर्द्धचन्द्राकृति खड्ग द्वारा क्षेत्रमय

यत्रोद्भवेन धान्योद्भवेन वा। तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

यत्र क्षेत्रमयं वापि शालिधान्योद्भवं च वा। चन्द्रहासेन-विधिवत् तत्तन्मन्त्रेण घातयेत् ॥ चन्द्रहासेनार्द्धचन्द्राकृतिखड्गेन इत्यर्थः।

नीलतन्त्रेऽपि—

जपादौ तु वलिं दद्यात् पश्चादपि वलिं हरेत्। जपान्ते जपमध्ये वा देहि देहीति भाषते ॥ तदापि च वलिं दद्यात् माहिषं छागमेव वा। न दिक्षु वीक्षणं किंचिन्न च वन्धुसमागमः ॥ जलादिदुर्गसर्पाणां दक्षिणां विभवावधि। गुरवे गुरुपुत्राय तत्पत्न्यै वा प्रदापयेत् ॥ सम्यक् सिद्धैकमन्त्र्यस्य नासाध्यमिह किंचन। बहु मन्त्ररतः पुंसः का कथा शिवएव सः ॥

श्मशानविशेषो यथा तदुक्तं कुलसद्भावे—

श्मशानालयमागत्य मुक्तकेशो दिगम्बरः। जपेदयुतसंख्यन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥ तत्रैव प्रेतमारुह्य प्रजपेन्मन्त्रमुत्तमम्। अयुतं मैथुनीभूत्वा विभीः सत्यपरायणः ॥ स याति परमां सिद्धिं देवैरपि सुदुर्लभाम्। आकर्षणवशीकारमारणोच्चाटनादिकम् ॥ स्तम्भनं मोहनञ्चैव द्रावणं त्रासनं तथा। वाग्मित्वञ्च धनित्वंच बहुपुत्रत्वमेव च

वा शालिधान्यमय तत्तत् हस्त्यादि यथा विधान से मंत्रोच्चारणपूर्वक निपातित करै नीलतंत्र में कहा है-जप के आदि में वलिप्रदान पूर्वक शेष में भी वलिप्रदान करै। और जप के अन्त में वा जप में जब दो दो कहै, तब ही छाग वा मेष की वलि देवे। किसी ओर भी दृष्टिपात न करै। अथवा बंधुबान्धवों के सहित सम्मिलित न होवे। अकेले ही इस कार्य को करै जिस प्रकार अपना विभव हो उसी के अनुसार गुरुको अथवा गुरुके पुत्र को वा गुरुकी स्त्री को दक्षिणा देनी चाहिये। यदि एकमात्र भली भांति सिद्ध न हो तो भी कुछ असाध्य नहीं होता। इस स्थल में बहुत मंत्र रत पुरुष का अधिक क्या वर्णन करै वह व्यक्ति साक्षात् शिव है ॥

श्मशान में विशेष विधि है जिस किसी प्रकार से मंत्र साधन नहीं होता कुलसद्भाव में कहा है —श्मशानालय में जाय मुक्तकेश और दिगम्बर होकर सर्वकामार्थ सिद्धि के लिये अयुत जप करै। प्रेत के ऊपर आरोहण करके इस प्रकार अनुष्ठान में प्रवृत्त होवे। मैथुनीभूत और सत्य परायण होकर भय दूर करने के उपरान्त इस प्रकार अयुत जप करने से देवगणों को भी सुदुर्लभ परमसिद्धि लाभ होती है। अधिक क्या आकर्षण वशीकरण, मारण, उच्चाटन, स्तम्भन, मोहन, द्रावण, त्रासन, वाग्मित्व, बहु

बहुवल्लभतामेति सर्वाग्निस्त्वमेव हि । स याति खेचरत्वं च देवैरपि सुदुर्लभम् ॥ न जरा न च मृत्युश्च न रोगो न च घातनम् । अथवा स भवेन्नित्यं कतुर्विंशतिसिद्धियुक् ॥ स्वदेहरुधिराक्तैश्च विल्वपत्रैः सहस्रशः । श्मशानेऽभ्यर्च्य देवीं च वागीशसमतां व्रजेत् ॥

कालीतन्त्रे च—

महाचीनद्रुमलतामज्जाभिर्विल्वपत्रकम् । सहस्रं देवीमभ्यर्च्य श्मशाने साधकोत्तमः ॥ तदा राज्यमवाप्नोति यदि नैवं पलायते । अनादित्यं यथा दृष्ट्वा लक्षं जपति भूमिपः ॥ निर्मलांच ततो दृष्ट्वा वश्यार्थमयुतं जपेत् ॥.

भैरवतन्त्रेऽपि—

श्मशाने योषितं मन्त्री संपूज्य ऋतुगां शुभाम् । रक्तचन्दन-सिक्ताङ्गीं रक्तवस्त्रैरलंकृताम् ॥ तावत् पुष्पैर्मनुं प्रोष्य ततोध्यायेच्च चण्डिकाम् । पूजयित्वा लभेत् राज्यं यदि न भ्रितयायते ॥ मेषमहि-षरक्तेन वाग्मित्वं तस्य जायते । धनित्वं जायते तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥ वचसा स भवेज्जीवो धनेन च धनाधिपः । आज्ञया देव-

---

पुत्र और बहु वल्लभा इन सम्पूर्ण की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण का प्रिय होजाता है और देवगणों को भी दुर्ल्लभ खेचरत्व लाभ होता है। जरा(बुढापा)आक्रमण नहीं कर सकता मृत्यु भी फिर नहीं होती, समस्त रोग भी फिर त्रिसीमा में नहीं आ सक्ते शोक दुःखादि भो दूर होजाते हैं। श्मशान में इस प्रकार शवपर अरोहण करके अपनी देह के शोणिताक्त सहस्र विल्वपत्र से देवी की आराधना करन पर वागीशकी समान होजाता है। कालीतंत्र में भी कहा है? महा प्राचीन द्रुमलता की मज्जा संयुक्त सहस्र विल्वपत्र द्वारा श्मशाम में देवी की पूजा करके यदि पलायन किया जाय तो राज्य लाभ होता है। अनादित्य में अवलोकन करके लक्ष जप करने से जिस प्रकार राजा होता है निर्म्मालिा में दर्शन करके तिसी प्रकार सम्पूर्ण वशीकरण के लिये अयुत जप करै। भैरवतन्त्र में भी कहा है साधक श्मशान में ऋतुगामिनी सत्स्वभाव रमणी को पूजा करके रक्तचन्दन सिक्ताङ्गी रक्तवस्त्र मण्डिता चण्डिका के ध्यानमें प्रवृत्त होवे तो राज्य लाभ करने में समर्थ होता है। मेष और महिष के रक्त द्वारा पूजा करने से वाग्मित्व लाभ होता है, धनित्व प्राप्त होता है, और सर्व सिद्धि समुत्पन्न होती है। अधिक क्या? वह वाक्य में वाक्पति की समान होता है। धन में कुवेर होता है। आज्ञा में देवराज होता है, रूप में कामदेव होता है, बल में पवन की

राजोऽसौ रूपेणैव मनोभवः। बलेन पवनो ह्येष सर्वतत्त्वार्थसाधकः। साधितं शोधितं मांसं सास्थि दद्यात् सदा बलिम् ॥ मूषमांसं छाग-मांसं मैषं माहिषमेव च। सर्वं सास्थि प्रदातव्यं तथा लोमसमन्वितम्॥ ॥ अजीवं नखनखच्छिन्नं केशं संमार्जनास्पदम् । निवेदयेत् श्मशाने च सर्वसिद्धिप्रदं भवेत् ॥ नारीरजोऽन्वितं कृत्वा पत्राणां शतमुत्तमम् । प्रत्येकं प्रजपेन्मन्त्रं ततो होमं समाचरेत् ॥ युगानामयुतं देवि! पूजि-ता दक्षिणा भवेत् । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य वाग्मी धीरश्च जायते ॥ न तस्य दुर्लभं किंचित् पृथिव्यां तस्य जायते ।

कुलसद्भावेऽपि—

रेतोयुक्तेन पुष्पेण चार्कस्यैव सहस्रशः। श्मशानेऽभ्यर्च्य कालीं तु सर्वसिद्धिं स विन्दति ॥ धनवान् बलवान् वाग्मी सर्वयोषित्प्रियः सुखी। जायते नात्र सन्देहो महाकालवचो यथा ॥ श्मशाने शयनं यस्य शवासनगतः पुमान्। असकृच्च जपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदो भवेत्॥ तर्पयेच्च शवास्ये तु रक्तमांसादिभिस्तथा। त्रिभिर्मन्त्रमुदीर्यैवं सर्व सिद्धिर्भवेत्ततः ॥ तर्पयेच्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैस्तथा। रेतोभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन कचेन च॥ मैथुनार्जितयोषायाः कुलप्रक्षालनेन च।

समान होता है। इसप्रकार वह सर्वविध तत्त्वार्थसाधक होता है । साधित और शोधित करके अस्थि के सहित मांस बलि प्रदान करै। मूषिकमांस छागमांस, समस्त लोम और अस्थि के सहित प्रदान करना चाहिये। अपने नखद्वारा छिन्न और संमार्जनास्पद केश श्मशान में निवेदन करने से सर्वसिद्धिप्रद होता है । नारी के रजोयुक्त करके शतविल्वपत्र प्रदान पूर्वक होम करै। प्रत्येक पत्रप्रदान के समय मंत्र प्रयोग करना चाहिये। अयुतवार जप करके पूजा करने से दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार दक्षिणा के अनन्तर फल सर्वविध सिद्धि संघटित होती है। इसके अतिरिक्त वाग्मी और धीर होजाता है, पृथिवी में भी फिर कुछ दुर्लभ नहीं होता। कुलसद्भाव में भी कहा है, शुक्रसंयुक्त सहस्र अर्क पुष्प द्वारा श्मशान में देवी कालिका की पूजा करने से सर्वविधसिद्धि लाभ होती है, एवं धनवान्, बलवान्, समस्त स्त्रियों का प्रिय और सुखी होता है। महाकाल ने स्वयं यह कहा है, अतएव इस विषय में किसी प्रकार सन्देह नहीं। जो व्यक्ति शव के आसन और श्मशान में शयन करके बारम्बार जप करता है, वह सर्वसिद्धिप्रद होता है। रक्त और मांसादि द्वारा शव वदन में तर्पण करने से सर्वविधिसिद्धि लाभ होती है। तीन मंत्र उच्चारण करने चाहिये। रुधिर युक्त रक्तधारायुक्त दुग्ध द्वारा शुक्र द्वारा अपने कच द्वारा, मैथुनप्रसक्त

मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि ॥ मूषमार्जाररक्तेन वाग्मित्वं तस्य जायते । बलित्वं जायते तस्य सर्वासिद्धिश्च जायते ॥

भावचूड़ामणौ—

सर्वसिद्धिप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम् । सर्वपापहरञ्चैव सर्व रोगविनाशनम् ॥ नान्यत् सिद्धिप्रदं देवि ! वीरसाधनवर्जितम् । महाबलो महा बुद्धिर्महासाहसिकः शुचिः ॥ महास्वच्छो दयावांश्च सर्वभूताहितेरतः । तेषां कृते महादेवि ! वीरसाधनमुत्तमम् ॥

बृहत्श्रीक्रमसंहितायाम्—

अस्मात्परतरं किंचित्सत्वरं सिद्धिदायकम् । सर्वसिद्धिर्भवत्येव अहो रात्रे कलौयुगे ॥ द्वापरे त्वच्च मासेन त्रेतायां वत्सरेणच । कृते च दशभिर्वर्षैः सत्ये सिद्धिर्न संशयः ॥

अथाष्टम्यां चतुर्दश्यां कुजवारे वा प्रथमप्रहराभ्यंतरे गुरुं देवीञ्च नत्वा वीरवेशो यात्रां कुर्य्यात् ॥

तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

घटीबन्धनवस्त्रं च मूलेन परिधाय च । तदार्थेन पुनर्वस्त्रं मूलेनाङ्ग बिलेपनम् ॥ कृतोष्णीषश्च मूलेन सिंदूरेणोर्द्धवे पुण्ड्रकम् । इष्टदेवं गुरुं

रमणी के कुलप्रक्षालन द्वारा, मेष, महिष, और मनुष्य रक्त द्वारा एवं मूष और मार्जार के शोणित द्वारा तर्पण करने से वाग्मित्व, बलशालित्व, और सर्वसिद्धि का अधीश्वरत्व उत्पन्न होता है, भावचूडामणि में भी कहा है हे देवि ! वीर साधन जिस प्रकार साक्षात्कार से सर्वसिद्धि प्रदान करता है, संपूर्ण महापातक नष्ट करता है, समस्त पाप हरण करता है और संपूर्ण रोगों को दूर करता है इस प्रकार अन्य किसी सिद्धि से संभव नहीं । महाबल महाबुद्धि महासाहसिक शुचि महास्वच्छ दयावान् और सर्व्वभूतों के हितनिरत, व्यक्तिगणों के लिये वीर साधन की सृष्टि हुई है । वृहत् श्रीक्रमसंहिता में भी कहा है, इसकी अपेक्षा शीघ्र सिद्धिदायक और कुछ नहीं है । कलियुग में अहोरात्रि के मध्य में ही सर्वविध सिद्धि लाभ होती है । द्वापर में एक मास में त्रेता में एक वर्ष में, और सत्ययुग में दश वर्षमें सिद्धिलाभ होती है । इस में सन्देह नहीं । अनन्तर अष्टमी में वा चतुर्दशी में मंगलवार में प्रथम प्रहर के मध्य में गुरु और देवी को प्रणाम करके, वीर वेशमें यात्रा करे । तन्त्रांतर में कहा है, मूलमंत्र में घटीवस्त्रपरिधान, मूलमंत्र में अङ्ग विलेपन, मूलमंत्र में उष्णीषबन्धन, और मूलमंत्र में ही सिंदूर का ऊर्द्धपुण्ड्र विधान करके इष्टदेवता और

नत्वा यात्रा प्रहरमध्यतः ॥ कार्य्या च साधकैः सार्द्धं हृदि मंत्रं परामृशन् । अत्तुब्धो भुक्तभोज्यस्तु यदि स्याद्वीरसाधकः ॥ दिव्यां वा पशु भावो वा भुक्त्वा साधनमाचरेत ॥

अथ साधनस्थानम् ।

तदुक्तं भावचूडामणौ—

शून्यागारे नदीतीरे पर्वते निर्जनेऽपि वा । बिल्वमूले श्मशाने वा तत्समीपे वनस्थले ॥ अष्टम्यांच चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ भौमवारे तमिस्रायां साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् । उपचारं समादाय कुलामृतरसन्तथा ॥ गुडार्द्रकरसेनैव सुरा तु ब्राह्मणस्य च । गौड़ी च क्षत्रियस्यैव माध्वी वैश्यस्य तत्र वै ॥ कदलीमधुसंमिश्रश्वानत्वचि रसैः सुरा । सर्वं शूद्रस्य संप्रोक्तं यत्र वा तद्रुचिर्भवेत् ॥ गृहीत्वा तत्र दातव्यं सर्वं नैव च संस्पृशेत् ॥

अन्यत्रापि—

द्विजानामनुकल्पन्तु न साक्षाच्च विकल्पितम् ॥

तदुक्तं रुद्रयामले—

सत्यक्रमाच्चतुर्वर्णैः क्षीराज्यमधुपिष्टकैः । त्रेतायां पूजिता देवी घृतेन सर्ववर्णिभिः ॥ मधुभिः सर्ववर्णैश्च पूजयेद् द्वापरे युगे ।

गुरु को प्रणाम एवं हृदयमें मन्त्र परामर्शन पूर्वक साधक गणों के समभिव्याहार में पहर में यात्रा करैं । यदि वीर साधक हो, तो किसी प्रकार क्षुब्ध न होवे, भोजन करले । दिव्यही हो, अथवा पशुभावही हो, भोजन करके साधन में प्रवृत्त होवे ।

साधनस्थान यथा—भावचूड़ामणिमें कहा है, शून्यागार, नदीतीर, पर्वत, निर्ज्जन. विल्वमूल, श्मशान, इसके समीप का प्रदेश, अथवा वनस्थल इन सम्पूर्ण स्थान में दोनों पक्षकी अष्टमी वा चतुर्दशी में भौमवार में रात्रि में उत्कृष्ट सिद्धिसाधन में प्रवृत्त होवे । उपचार, कुलामृतरस, ब्राह्मण होने से गुड़ और अदरकरस निर्मित सुरा एवं क्षत्रिय गौड़ी और वैश्य माध्वी सुरा समभिव्याहार में लेवे । शूद्रके पक्ष में कदली और मधुमिश्रत कुक्कुरत्वके रसनिर्मित्त सुरा प्रशस्त है यह समस्त ग्रहण करके वहां देवे । स्वयं कुछ स्पर्शन करै । अन्यत्र भी कहा है, द्विजगणों का अनुकल्प साक्षात विकल्पित नहीं । रुद्रयामल में कहा है, सत्ययुग में चारो वर्ण यथा क्रमसे क्षीर, आज्य, मधु, और पिष्टक द्वारा, त्रेतामें सम्पूर्ण वर्णही घृत द्वारा द्वापर

पूजनीया कलौ देवि ! केवलैर्वासवैश्च तैः ॥ मांसं भक्तं च शुद्धान्नं धूपदीपादिकं तथा । तिलाः कुशाश्च सर्वाश्च स्थापनीयाः प्रयत्नतः ॥

अथ पूर्वोक्तान्यतमस्थानं गत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय पूर्वमुखो मूलान्ते फट्कारं दत्वा यागभूमिं प्रोक्ष्य गुरुगणेशवटुकयोगिनीभ्यः पूर्वादितः संपूज्य पूर्वोक्तविधानेन मंत्रं भूमौ विलिख्य ये चात्रेत्वादि पूर्वोक्तमंत्रेण भूमौ पुष्पांजलित्रयं दत्त्वा प्रणम्य श्मशानाधिपतिभ्यः पूर्ववद्बलिं दत्वा अघोरमंत्रेण शिखाबन्धनं विधाय स्वदर्शन मंत्रांते आत्मानं रक्ष रक्षेति हृदि हस्तं दत्त्वा हृद्रक्षां विधाय पूर्वोक्तक्रमेण भूतशुद्ध्यादिकं विधाय जयदुर्गामंत्रेण दिक्षु सर्षपं विकीर्य्य तिलोऽसीत्यादिना तिलान् विकीर्य्य विहितासन समीपं गच्छेत् ॥

तदुक्तं तन्त्रांतरे—

गुरुपूजादिकं सर्वं पूर्वोक्तमन्त्रमुच्चरेत् । ये चात्रेत्यादि मंत्रेण भूमौ पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥ श्मशानाधिपतीनांतु पूर्ववद्बलिमाहरेत् । अघोरास्त्रेण मंत्रेण शिखाबन्धनमाचरेत् ॥ स्वदर्शनेन वा रक्षामुभाभ्यां परिकल्पयेत् । मायास्फुरद्वयं वर्म प्रस्फुरद्वितयं पुनः ॥ घोरघोर-

में मधुद्वारा, और कलियुग में संपूर्ण वर्ण केवल आसव द्वारा देवी की पूजा करें । मांस भक्त शुद्धान्न, धूप और दीपादि एवं तिल और संपूर्ण कुश यत्न सहित स्थापन करने चाहिये ।

अनन्तर पूर्व कथित अन्यतम स्थान में गमन करके सामान्य अर्घ्य विधान के सहित पूर्वमुख बैठ मूलान्त में फट्कार दान पूर्वक यागभूमि प्रक्षालन और पूर्वादि दिशा में गुरु, गणेश, बटुक और योगिनी गणों की पूजा करके पूर्वोक्त विधानानुसार भूमि में तीन पुष्पाञ्जलि दान और प्रणाम करै । फिर श्मशान के अधिपति गणों को पूर्व की समान बलि देकर अघोर मन्त्र से शिखाबंधन विधान और स्वदर्शन मन्त्र के अन्त में आत्मा की रक्षा कर, इत्यादि कहकर, हृदय में हाथ लगाय हृद् रक्षा करै। फिर पूर्वोक्त क्रमसे भूतशुद्ध्यादि करके और जयदुर्गा मन्त्र से दशोंदिशाओं में सरसों बखेर, तिलोसि इत्यादि मन्त्र से सम्पूर्ण तिल फेंक कर, विहित आसन के समीप गमन करैं ।

तन्त्रान्तर में भी कहा है । सम्पूर्ण गुरुपूजादि में पूर्वोक्त मंत्र उच्चारण और चात्र इत्यादि मंत्र से भूमि में पुष्पाञ्जलि निक्षेप और श्मशानाधिपतिगणों के उद्देश से पूर्व की समान बलि आहरण अघोरास्त्र मन्त्र से शिखाबन्धन समाचरण और स्वदर्शन मंत्रसे रक्षा कल्पना करनी चाहिये। ह्रीं ह्रीं स्फुर स्फुर हुं हुं प्रस्फुर प्रस्फुर घोर

तरेत्यन्ते तनुरूपपदं ततः । चटयुग्मं तदन्ते च प्रचटद्वितयं पुनः । हनयुग्मं समुद्धृत्य सहस्रारस्वरूपकम् । वर्मास्त्रान्तं महामन्त्रं सुदर्शनं प्रकीर्त्तितम् ॥ भूतशुद्धिं ततः कृत्वा न्यासजालं प्रविन्यसेत् । जलदुर्गाख्येन मनुना सर्षपान् दिक्षु निःक्षिपेत् ॥

अथ विहितशवो यथा तदुक्तं भावचूड़ामणौ—

यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं पयोमृतम् । रज्जुबद्धं सर्पदष्टं चण्डालं चाभिभूतिकम् ॥ तरुणं सुन्दरं शूद्रं रणे नष्टं समुज्ज्वलम् । पलायनविशून्यन्तु सम्मुखे रणवर्त्तिनम् ॥ एतेषामन्यतमं ग्राह्यमित्यर्थः ।

अथ निषिद्धशवो यथा तदुक्तं तत्रैव—

स्वेच्छामृतं द्विवर्षंच वृद्धं स्त्रियं द्विजं तथा । अन्नाभावे मृतं कुष्ठिनं सप्त वर्षार्द्धकं तथा ॥ एवं चाष्टशवं त्यक्त्वा पूर्वोक्तान्यतमं शवम् ॥ गृहीत्वा मूलमंत्रेण पूजास्थानं समानयेत् ॥

नीलतन्त्रे च—

चाण्डालं चाभिभूतं वा शीघ्रं सिद्धिफलप्रदम् ।

कालीतन्त्रेऽपि—

ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेद्वीरसाधनम् ।

घोरतरा चट चट प्रचट प्रचट हन हन फट् "। इसका ही नाम सुदर्शन मंत्र है अनन्तर भूतशुद्धि करके, न्यासजाल प्रविन्यस्त और जयदुर्गा मन्त्र से सम्पूर्ण सरसों समस्त दिशाओं में बखेरे ।

विहित शव यथा – भावचूडामणि में कहा है यष्टिविद्ध, शूलविद्ध, खड्गविद्ध, जलमृत, रज्जुबद्ध, सर्पदष्ट, चण्डाल, तरुण सुंदर शूद्र जो पलायन न करके सन्मुख समर में युद्ध करके विनष्ट हुआ हो ऐसे व्यक्तियों में से अन्यतम व्यक्तिको आसनार्थ ग्रहण करै ।

निषिद्ध शव यथा–उसी में यह कहा है अपनी इच्छा से मरा द्विवर्ष, वृद्ध, स्त्री, द्विज, अन्न के अभाव से मरा कुष्ठी, सप्तवर्षार्द्धक, यह अष्टविध शव त्याग करके पूर्वोक्त अन्यतम शवग्रहण और मूलमंत्र से उसको पूजास्थान में लावे । नीलतंत्र में कहा है–चाण्डाल अथवा अभिभूत यह दो शव शीघ्र सिद्धिफल प्रदान करते हैं । कालीतंत्र में कहा है–ब्राह्मण और गोमय वर्ज्जन करके वीरसाधन में प्रवृत्त होवे । अनन्तर शव-समीप, गमन और 'ओं फट्' मंत्र से शव को अभ्युक्षण और 'ओं हुं मृतकाय, इत्यादि

अथ शवसमीपं गत्वा ओं फट् इति शवमभ्युक्ष्य ओं हुं मृतकाय नमः फट् इति शवोपरि पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा स्पर्शपूर्वकम् वक्ष्यमाणमन्त्रेण प्रणमेत् ॥

तदुक्तं भावचूड़ामणौ—

प्रणवाद्यस्त्रमन्त्रेण शवञ्च प्रोक्षणञ्चरेत् । प्रणवं कूर्चवीजञ्च मृतकाय नमः फट् ॥ पुष्पांजलित्रयं दत्वा प्रणमेत् स्पर्शपूर्वकम् ॥ हे वीर ! परमानन्द ! शिवानन्द ! कुलेश्वर ! आनन्दभैरवाकार ! देवीपर्य्यङ्कसंस्थित ! ॥ वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने । प्रणम्यानेन मन्त्रेण क्षालयेत् तदनन्तरम् ॥ अथ सुगन्धिजलेन शवं सुस्नाप्य वाससा जलमुद्धृत्य धूपैर्धूपिते गन्धचन्दनादिभिः शवं प्रलिप्य तत् कटिदेशे धृत्वा पूजास्थानं समानयेत् ।

तदुक्तं नीलतन्त्रे —

तारं कूर्चं मृतकाय नमोऽन्तं मन्त्रमुद्धरेत् । शवस्नपनमन्त्रोऽयम् इत्यादि । धूपैः सुधूपितं कृत्वा गन्धादिना प्रलिप्य च । रक्ताक्तो यदि देवेश ! भक्षयेत् कुलसाधनम् ॥ ततः कुशशय्यायां पूर्वशिरः कृत्वा शवं स्थापयेत् ।

मंत्र से शव के ऊपर तीन पुष्पांजलि प्रदान एव स्पर्श पूर्वक वक्ष्यमाण मंत्र से प्रणाम करे । भावचूडामणि में कहा है । यथा-प्रणवादि अस्त्रमन्त्र से शवको प्रोक्षण 'ओं हुं, इत्यादि मंत्रसे तीन पुष्पांजलि दान और स्पर्श करके प्रणाम करे । हे वीर हे परमानन्द ! हे शिवानन्द ! हे आनन्द भैरवाकार ! मैं वीर और कुलेश्वर देवीके पर्यंकमें अवस्थिति करके तुम्हारी शरणागत हुआ हूं । तुम चण्डिका की अर्चना में उत्थान करो । इस मंत्रसे प्रणाम करके तिसके पीछे उसका अभ्युक्षण करै ॥

अनन्तर सुगन्धित जल से भली भांति शवको स्नान कराकर और वस्त्र द्वारा उत्तम रूप से पोछकर धूप द्वारा धूपित और गंध चंदनादि द्वारा प्रलिप्त करके उस की कमर पकडकर पूजास्थान में लावे । नीलतंत्र में कहा है यथा—'ओं हुं कूर्च्चमृतकाय नमः' यह मंत्र उच्चारण करै । यह शवके स्नान कराने का मंत्र है । धूप द्वारा धूपित और गंधादि द्वारा विलिप्त करने से यदि रक्ताक्त हो तो कुलसाधक को भक्षण करती है । अनन्तर कुशशय्यामें शवको पूर्वशिर करके स्थापन करे । नीलतंत्र में

तदुक्तं तत्रैव—

कुशशय्यां परिष्कृत्य तत्र संस्थापयेत् शवम् । एलालवङ्गकर्पूर-जातीखदिरसारकैः । ताम्बूलं तन्मुखे दत्वा शवं कुर्य्यादधोमुखम् ॥ स्थापयित्वा तस्य पृष्ठं चन्दनेन विलेपयेत् । बाहुमूलादि कट्यन्तं चतुरस्रं विभाव्य च ॥ मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टकसन्वितम् । ततश्चै नेयमजिनं कम्बलान्तरितं न्यसेत् ।

तन्त्रान्तरे च—

गत्वा शवस्य सान्निध्यं धारयेत् कटिदेशतः । यद्युपद्रावयेदस्य दद्यान्निष्ठीवनं शवे॥ पुनः प्रक्षालनं कृत्वा जपस्थानं समानयेत्॥ ततो द्वादशांगुलमानानि यज्ञकाष्ठानि दशदिक्षु संस्थाप्य पूजयेत् तत्र इन्द्रादि दशदेवताः ।

विषमिन्द्राय संलिख्य सुराधिपतये ततः । इमं बलिं गृह्ण युगं गृह्णापरयुगं ततः ॥ विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छ ठद्वयम् । अनेन मनुना पूर्वे बलिं दद्याच्च सामिषम् ॥ साध्यनामादिकं कृत्वा पूर्ववद्बलिमाहरेत् । सर्वेषां लोकपालानां ततः साधकसत्तमः ॥

कहा है यथा--कुशशय्या स्वच्छ करके उस में शवको स्थापनपूर्वक इलायची लवङ्ग (लौंग) कर्पूर चमेली, और खदिरसार द्वारा तांबूल प्रस्तुत करके शव के मुख में देवे। उसका अधोमुख और उसका पृष्ठदेश चन्दन द्वारा अनुलिप्त करै। अनंतर बाहु मूल से कटि पर्यंत चारों ओर भावना करके मध्य में दलाष्टक समन्वित चतुर्द्वार पद्म भावना और कम्बलान्तरित आसन विन्यस्त करना चाहिये। तन्त्रान्तर में कहा है। शव के समीप में गमन करके कटिदेश धारण करै। यदि उपद्रव करै,तो उसके गात्रमें निष्ठीवन देवे। पुनर्वार प्रक्षालन करके जपस्थान में लावे। अनन्तर द्वादश अंगुल परिमाण यज्ञकाष्ठ सम्पूर्ण दिशाओं में स्थापन करके उसमें इन्द्रादि दश देवताकी पूजा करनी चाहिये।"विषम् इन्द्राय„ इत्यादि मंत्रसे पूर्वकी ओर आमिष सहित बलि देवे। साध्यनामादि करके पूर्व की समान सम्पूर्ण लोकपालों के उद्देश से बलिप्रदान करनी चाहिये। बलिप्रदान का मन्त्र यह है"लं इन्द्राय"इत्यादि इसप्रकार सम्पूर्ण लोक-पालों की बलि आहरण करके शवके अधिष्ठात्री देवता इत्यादि को भी बलिप्रदान करै उसका मंत्र यह है। 'चतुःषष्टियोगिनीभ्योनमः इत्यादि ॥

तत्र अयं क्रमः। लं इंद्राय सुराधिपतये ऐरावतवाहनाय वज्रहस्ताय शक्तिपारिषदाय सपरिवाराय नमः। इति संपूज्य वलिं दद्यात् यथा-ओं इं द्राय सुराधिपतये इमं वलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा। एष बलिः इन्द्राय नमः वं वह्नये तेजोऽधिपतये मेषारूढाय शक्तिहस्ताय इत्यादि पूर्ववत् संपूज्य बलिं दद्यात्। ओंवह्नये तेजोऽधिपतये इत्यादिना पूर्ववत् यं यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिषवाहनाय इत्यादिना संपूज्य बलिं दद्यात् अनेन ओं यमाय प्रेताधिपतये इत्यादिना पूर्ववत् क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये स्ववाहनाय खड्गहस्ताय इत्यादि पूर्ववत् संपूज्य वलिं दद्यात् अनेन ओं निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये इत्यादि पूर्ववत् वं वरुणाय जलाधिपतये मकरवाहनाय पाशहस्ताय इत्यादिना पूर्ववत्। वं वायवे वाय्वधिपतये अंकुशहस्ताय मृगवाहनाय इत्यादिना पूर्ववत् संपूज्य बलिं दद्यात् अनेन। ओं वायवे वाय्वधिपतये इत्यादि पूर्ववत्। ओं कुवेराय यक्षाधिपतये गदाहस्ताय नरवाहनाय इत्यादिना संपूज्य बलिं दद्यात् अनेन। ओं कुवेराय यक्षाधिपतये इत्यादिना पूर्ववत् ओं ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय वृषवाहनाय इत्यादिना पूर्ववत् निर्ऋृतिवरुणयोर्मध्ये ओं अनन्ताय नागाधिपतये चक्रह-

---

अनन्तर समीपस्थ भूप्रदेश में पूजासामग्री और उत्तरसाधक को स्थापन मूलान्त में „ह्रीं फट् इत्यादि" मंत्र से आसन की पूजा, मूलोच्चारण के सहित अश्वारोहण और क्रमसे शवके ऊपर बैठ, अपने पादतल में सम्पूर्ण कुश दान शवके केशपाश प्रसारण शिखाबन्धन, गुरु और देवीको नमस्कार प्राणायाम और षड़ङ्गन्यास समाधान पूर्वोक्त वीरासन बंधन और दशोदिशाओं में मंत्र द्वारा लोष्ट्र निक्षेपकरके संकल्प करना चाहिये। भावचूडामणि में कहा है। यथा-समीप में पूजा द्रव्य और दूर में उत्तरसाधक को स्थापन करै। यह उत्तर साधक समान गुण सम्पन्न हों मंत्रवित् और विजितेन्द्रिय हों अनन्तर स्वम ग्रांतर में आत्मा की अभ्यर्चना करके फिर "फट्" इत्यादि मंत्र से अश्वारोहण क्रमसे उपवेशन, पादतल में संपूर्ण कुशदान, शव के केशकलाप प्रसारण और दृढ़प्रकार से शिखाबंधन करके, कृतसंकल्प होवे। तन्त्रांतर में कहा है,शवके ऊपर आरोहण, और गुरुपूजादि,समाचरण एवं प्राणायाम विधान करके सम्पूर्ण दिशा में समस्त लोष्ट्र निक्षेप करै। अनन्तर अपने वाम में शवसमीप में अर्घ्यपात्रादि स्थापन और शव की तुण्डिकामें पीठपूजादि विधान षोडशउपचार से देवी की आराधना करके, शवके मुख में कारण द्वारा तीन बार तर्पण कर

स्ताय रथवाहनाय इत्यादिना पूर्ववत् संपूज्य बलिं दद्यात् अनेन ओं अनन्ताय इत्यादि पूर्ववत्। इन्द्रेशानयोर्मध्ये आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये पद्महस्ताय हंसवाहनाय इत्यादिना पूर्ववत् संपूज्य आं ब्रह्मणे इत्यादिना पूर्ववत् शवाधिष्ठातृ देवताभ्यो बलिं दद्यात् चतुषष्टियोगिनीभ्यो नमः डाकिनीभ्यो नमः।

अथ पूजासामग्रीं सन्नीधौ सुधि चोत्तरसाधकञ्च संस्थाप्य मूलांते ह्रीं फट् शवाय नमः इत्यादिना आसनं संपूज्य मूल मुच्चरन् अश्वारोहणक्रमेण शवोपरि उपविश्य स्वपादतले कुशान् दत्वा शवकेशान् प्रसार्य्य जुटिकान् बध्वा गुरुं देवींच नमस्कृत्य प्राणायामषड्ङ्गन्यासान् कृत्वा पूर्वोक्तवीरासनं दशदिक्षु मनुना लोष्ट्राणि निःक्षिप्य संकल्पं कुर्य्यात्।

तदुक्तं भावचूड़ामणौ—

पूजाद्रव्यं सन्निधौ च दूरे चोत्तरसाधकम्। समानगुण सम्पन्नं मान्त्रिकं विजितेन्द्रियम्॥ अभिषेकविधि ज्ञात्वा देवतां भावयेत् पराम्। संस्थाप्यात्मानमभ्यर्च्य स्वमन्त्रान्ते ततः परम्॥ फाड्त्यनेन मन्त्रेण तत्राश्वारोहणं विशेत्। कुशान् पादतले दत्वा शवकेशान् प्रसार्य्य च॥ दृढं निबद्ध्य जुटिकां कृतसङ्कल्पसाधकः॥

तन्त्रान्तरे—

शवोपरि समारुह्य गुरुपूजादिकं चरेत्। प्राणायामं विधायाथ दिक्षु लोष्ट्राणि निःक्षिपेत्॥

भावचूड़ामणि में कहा है। यथा-वहां देवी की सम्यक् प्रकार से पूजाकरके सुविस्तर उपचार द्वारा इत्यादि। नीलतंत्र में भी कहा है—शवके मुख में यथा विधान से देवी और देवता का आप्यायन करके, शव से उठे। उसके सन्मुख गमन पूर्वक वक्ष्यमाण मंत्र पाठ करै। भावचूड़ामणि में कहा है। यथा—उठ और सन्मुख में अवस्थान करके भक्तिपरायण होकर "ओं शवो में" इत्यादि मंत्र पाठ करें। अनन्तर मूल मंत्र पाठके अन्त में पट्टसूत्र द्वारा शवके दोनों पाद दृढ़ रूप से बांध कर वक्ष्यमाण मंत्र से रक्त चन्दनादि द्वारा त्रिकोण चक्र लिखना चाहिये। तंत्रांतर में कहा है, यथा—साधक मूल मंत्र उच्चारण करके फिर पट्ट सूत्र द्वारा शव के दोनों पाद दृढ़प्रकार से बांधे। तो शव फिर उठ नहीं सकता, भाव-

ततः स्ववामे शवसमीपे अर्घ्य पात्रादिकं संस्थाप्य शवजुटिकायां पीठपूजादिकं कृत्वा षोड़शोपचारैः देवीं संपूज्य शवमुखे देवीं कारणेन त्रिः सन्तर्पयेत् ।

तदुक्तं भावचूड़ामणौ—

तत्र देवीं सुसंपूज्य उपचारैः सुविस्तरैः ।

नीलतन्त्रे च—

शवास्ये विधिवद्देवीं देवताप्यायनं ततः ।

ततः शवादुत्थाय तस्य संमुखं गत्वा वक्ष्यमाणमन्त्रं पठेत् ।

तदुक्तं भावचूड़ामणौ—

उत्थाय संमुखे स्थित्वा पठेद्भक्तिपरायणः । ओं वशो मे भव देवेश ! ममामुकपदं ततः ॥ सिद्धिं देहि महाभाग ! कृताश्रमपदां वर ! । ततो मूलमन्त्रं पठन् पट्टसूत्रेण शवपादद्वयं निबध्य वक्ष्यमाणमन्त्रेण रक्तचन्दनादिना त्रिकोणचक्रं विलिखेत् ।

तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

मूल मन्त्रमुच्चरन् मन्त्री शवपादद्वयं ततः । पट्टसूत्रेण बध्नीयात् येनोत्थातुं न शक्यते ॥

चूड़ामणि में कहा है, "ओं भीम भीरुभयो" इत्यादि मंत्र से शवके पदतल में त्रिकोण चक्र लिखे । तो शव उठ नहीं सकता और चलभी नहीं सकता । शवके दो हस्त, दो पार्श्व, प्रसारित और उसके ऊपर समस्त कुशस्थापित, और उसमें अपने दोनों पद-स्थित करके, पुनर्वार प्रणाम के सहित मस्तक में गुरु का और हृदय में देवी का ध्यान पूर्वक ओष्ठाधर संपुटित करके निर्भय जप करना चाहिये । उसमें कहा है, यथा—पुनर्वार उपविष्ट होकर, दोनों पार्श्व में दोनों बाहु प्रसारित और दोनों हस्तों में कुश आस्तृत करके उसमें दोनों पद स्थापित करै । एवं स्थिरचित्त और स्थिर इन्द्रिय होकर, अधर और औष्ठ संपुटित करके देवी के ध्यान सहित मौली जपमें प्रवृत्त होवे । इस स्थल में भी श्मशान साधन के क्रम से जप करना कर्त्तव्य है । यदिअर्द्धरात्रि पर्यंत कुछ भी न देखा जाय, तो पूर्व की समान अर्घ्य और तिल बिखेर एवं सप्तपद गमन

भावचूड़ामणौ—

ओं भीमभीरुभयद्राव ! द्रव्यलोचनभावक ! त्राहि मां देवदेवेश ! शवानामधिराधिप ! ॥ इति पादतले तस्य त्रिकोणं चक्रमुल्लिखेत् । येनोत्थातुं न शक्नोति शवश्च निश्चलो भवेत् ॥

शवहस्तद्वयं पार्श्वयोः प्रसार्य्य तदुपरि कुशान् दत्त्वा तत्र स्वपादौ निधाय पुनः प्राणायामं कृत्वा शिरसि गुरुं हृदि देवींच ध्यात्वा ओष्ठाधरसंपुटौ विहितमालया विमीर्जयेत् ।

तदुक्तं तत्रैव—

उपविश्य पुनस्तस्य बाहू निःसार्य्य पार्श्वयोः । हस्तयोः कुशमास्तीर्य्य पादौ तत्र नीधापयेत् ॥ ओष्ठौ संपुटकौ कृत्वा स्थिराचित्तः स्थिरेन्द्रियः । तदा देवीं हृदि ध्यात्वा मौखीं जपमथाचरेत् ॥

अत्रापि श्मशानसाधनक्रमेण जपः कार्य्यः । यथर्द्धरात्रिपर्य्यन्तं किञ्चिन्न लक्ष्यते । तदा पूर्ववत् अर्घ्यं तिलान् विकिरन् ससपादगमनादिकं कृत्वा जपं कुर्य्यादिति ।

करके जप करै । आसन चलित होनेपर भय न करे । तिस समय इस प्रकार कहै. हे देवि ! मैंने हस्ती इत्यादि जो प्रार्थना की हैं वह दिनांतर में दान करो । इस समय आपका नाम क्या है, कहो । संस्कृत में इसप्रकार कहे पुनर्वार निर्भय होकर जप करै फिर यदि मधुरभाव से बात कहै तो मधुरभाव से उसका उत्तर देना चाहिये । अनन्तर सत्य कहलाकर बरकी याचना करैं यदि सत्य न कहै. और वर भी न दे तो पुनर्वार एकाग्र चित्त से जप करै नररूप के अतिरिक्त तहां देवता भी अपलर्पण नहीं करते । इसीलिये यत्न सहित समझना चाहिये. कि मनुष्य अथवा देवयोनि कोई नहीं। तिस काल मातः मातृष्वसा अथवा मातुलानी इन सम्पूर्ण के वेश में आगमन करके चिह्न करती हैं और इस प्रकार कहती हैं हे वत्सः ! उठो निःसंदेह ही तुम्हारा कार्य नष्ट हुआ । यह देख प्रातःकाल हुआ है. तुम्हारे पिता गृह में आक्रोश प्रकाश करते हैं। सम्पूर्ण मनुष्य भी प्रायः मत्सर विशिष्ट और राजागण भी दण्ड प्रयोग करते हैं। कदाचित् कोई देखले तो क्या होगा ? इत्यादि विविध वाक्य प्रयोग करने पर भी जप परित्याग न करै । तिस समय मृत पितृगण और दूर देश वासी मृत बांधवगण देवतारूप धारण करके तहां आगमन करते हैं । इनसे भी यदि साधक को क्षोभ न हो और यदि कुछ क्षोभ न करसके तो दैवी स्त्री रूप धारण और द्विजरूप धर पुरुष वेष ग्रहण करके तीन रात्रि के अंत में तहां आगमन पूर्वक "वर ग्रहण कर,, यह कहकर

चलासने भयं नास्ति भये जाते वदेत्ततः । यद्यत् प्रार्थयसे देवि ! दातव्यं कुञ्जादिकम् ॥ दिनान्तरे तु दास्यामि स्वनाम कथयस्व मे । इत्युक्तः संस्कृतेनैव निर्भयस्तु पुनर्जपेत्॥ पुनश्चेत् मधुरं वाक्त व्यक्तव्यं मधुरं ततः । ततः सत्यं कारयित्वा वरन्तु प्रार्थयेत्ततः॥ यदि सत्यं न करोति वरं वा न प्रयच्छति । तदा पुनर्जपेद्धीमान् एकाग्रमानसस्तथा ॥ नररूपंनातत्रदेवोऽपिनापसर्पति।यत्नतस्तेनबोद्धव्यो नरो वा देवयोनयः माता मातुःस्वसावापि मातुलानी तथैवच आगत्य चिन्हं कुरुते मायया च्छाद्य विग्रहम्॥ उत्तिष्ठ वत्स! ते कार्यं सर्वं यातु न संशयः॥ प्रभात समयोजातस्त्वत्पिता क्रोशते गृहम् प्रायो विमत्सरा लोका राजानां दण्डधारिणः । कदाचित् केन वा दृष्टस्तदा किंचिद् भविष्यति ॥ इत्यादि विविधैर्वाक्यैर्न च जापं परित्यजेत् । मृताः पितृगणास्तत्र दूर देशनिवासिन ॥ बान्धवास्तत्र गच्छन्ति देवरूपधरास्तथा । स्त्रीपुत्रसेवकादींश्च गृहीत्वा नियतः परे ॥ रुदन्तः पुत्रका सर्वे भ्रातरोऽनुजाशीश्यकाः निजकांताङ्गसंस्पर्शं वस्त्राद्याभरणादिकम् ॥ गृहीत्वा नयितेतत्र

शब्द करती हैं। इस प्रकार अच्छा या बुरा जो हो, देवी के स्त्री वेश से वरदेने में उद्यत होनेपर वीर पति का क्या नहीं साधित होता ? सन्मुख अथवा असन्मुख यदिसंस्कृत करके बात कहें, तो वह स्त्री निसन्देह स्वयं देवी, और वह पुरुष निःसंदेह ही साक्षात् भैरव है यदि वह न हो तो मायाघटित विग्रह समझना चाहिये फिर किसी प्रकार वर की प्रार्थना न करें। और किसी प्रकार बात भी न कहे। पुरुष यदि संस्कृतमें बात कहै तो इस प्रकार कहे। अथवा यदि कुछ नील लोहितवर्ण उत्कट ज्योति आविर्भूत, किम्बी प्रकार शब्द सम्भूत और सम्यक् प्रकार से अमृत लाभ हो, तो विचार करके ग्रहण करे स्वयं शिव ने यह बात कही है। क्योंकि देवगणों के कार्य अनेक प्रकार हैं। वह सहज में जानने दुष्कर हैं। भैरव और सम्पूर्ण वटुक कुल शास्त्र परायण हैं। इस लिये परित्याग में दोष उत्पन्न होने से वर लाभ करके जपादि त्याग करना चाहिये। और फल लगाया है यह जानने पर छुटिका भी छोड़ देवे। अन्यत्र भी कहा है। यथा– शवको प्रक्षालन और स्थापन करके बन्धन खोल देवे। और पदस्थित चक्र का मार्जन कर के पूजा करता हुआ जलमें निक्षेप करके स्नान करे। अनन्तर अपने गृह में गमन करके दिनान्तरमें बलिप्रदान करे। उसका मंत्रयह है, "अस्मिन् रात्रौ., इत्यादि। भावचूडामणि में इस प्रकार कहा है।

अनन्तर पिष्टक निर्मित पूर्व याचित नर, कुक्कुर और शूकर दान करके उस दिन उपवास करना चाहिये दूसरे दिन नित्य कर्म के अन्त में पंच गव्य पान करके पचीस

पानकैस्तद्वर्ज्यंत्यजेत् । बान्धवैस्तत्र दिवसे शङ्का तत्र प्रजायते ॥ यदि न लुभ्यते तत्र तदा किं वा न लभ्यते । स्त्रीरूपधारिणी देवी द्विजरूपधरः पुमान् ॥ वरं गृह्णेति शब्दं वै त्रिरात्रान्ते वरं लभेत् । साधुना साधुना वापि योषिच्चेद् वरदायिनी ॥ तदा वरिपतेस्तस्य किं न सिध्यति भूतले । निष्पापपुरुषेणै व कुलीनेनैव संस्कृता ॥ असंस्कृता वरा देवी पापं युङ्क्ते न संशयः॥ संमुखेऽसंमुखे चापि संस्कृतं वाक्ति चापरम्॥ सैव देवी न सन्देहा स देवो भैरवः स्वयम् । न चेदेवं भवेच्चैव माया घटितविग्रहः । वरं न वरयेत्तत्र न किञ्चित् प्रवदेत्ततः । स चेत् संस्कृतमाख्यानं वक्ति वक्तव्यमीदृशम् ॥ न चेत् स्वयं कौलिकोऽपि वरं ग्राह्यं निराकुलम् । अथवा उत्कटं किञ्चित् ज्योतिर्वा नीललोहितम् ॥ शब्दो वा जायते सम्यगमृतं वापि लभ्यते । विचार्य्य तद्गृहीतव्य मेवं शिवेन भाषितम् ॥ एवं कृत्वा तु बहुधा न चाकृतविशुद्धयः । अवश्यं तत्र दातव्यं न च प्रत्यचतां क्वचित् ॥ भैरवा वटुकाश्चैव कुलशास्त्रपरायणाः । एतच्छास्त्रप्रसङ्गेन कृत्याकुटिलविग्रहाः ॥पुत्रो भूत्वा हरेद्विद्यां नारी भूत्वा विमोहयेत् । तस्मात्तु भवेद्दोषात् विचारे यत्नमाचरेत् ॥ सत्ये कृते वरं लब्ध्वा सत्यजेच्च जपादिकम् । फलं जातमिति ज्ञात्वा जुटिकां मोचयेत्ततः ॥

ब्राह्मणों को भोजन करावे । पन्द्रह या दश ब्राह्मणों के भोजन कराने पर भी हानि नहीं है ब्राह्मण भोजन के उपरांत स्नान और भोजन करके उत्तम स्थल में अवस्थिति करै । ब्राह्मणों को भोजन न कराने से साधक निर्धन होता है, और यदि निर्धन हो तो देवता रुष्ट होते हैं तीन रात्रि वा छय रात्रि अथवा नौ रात्रि गुप्त रहना चाहिये । स्त्री शय्या में गमन करने से, व्याधि ग्रस्त होता है, गीत श्रवण करने से बधिर होता है । नृत्य देखने से नेत्रहीन होता है । दिनमें बात कहने से मूक होता है । पन्द्रह दिन के उपरांत देह में देवता का अधिष्ठान होता है । गो ब्राह्मण की निन्दा कभी न करै । शुद्ध होकर नित्य देव, गौ और ब्राह्मण को स्पर्श करना चाहिये । प्रातःकाल के समय नित्य क्रिया के उपरांत विल्वपत्रोदक पान करै । फिर सोलहवां दिन उपस्थित होने पर गंगा में स्नान करना चाहिये । तिसकाल स्वाहा के अन्त में मूल उच्चारण करके, तर्पण के अन्त में' नमः'शब्द प्रयोग करै । इस प्रकार जल द्वारा तीन सौ से ऊर्द्ध्व देवता गणों का तर्पण करना चाहिये । स्नान और तर्पण शून्य होनेसे देव तर्पणमें अधिकार नहीं होता । इस प्रकार विधानानुसारही लोकमें सिद्धि होती है और इस लोकमें संपूर्ण उत्कृष्ट भोग भोग करके परलोकके समय हरिपद

अन्यत्रापि-

शवं प्रक्षाल्य संस्थाप्य बन्धनं मोचयेत् पदम् । पदे चक्रं मार्जयित्वा पूजयित्वा जले क्षिपेत् ॥ शवं जलेऽथ गर्त्ते वा निःक्षिप्य स्नानमाचरेत् । ततस्तु स्वगृहं गत्वा बलिं दद्यात् दिनान्तरे ॥

अस्यां रात्रौ येषां देवानां यजमानोऽहं ते गृह्णन्तु इमं बलिम् ।

इति भावचूड़ामणौ-

अथ तैस्तु चितश्मशाननरकुञ्जरशूकरात् । दत्त्वा पिष्टमयानेवं कर्तव्यमुपबोधनम् ॥ परेऽन्हि नित्यमाचर्य्य पञ्चगव्यं पिबेत्ततः । ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पञ्चविंशतिसंख्यकान् ॥ पञ्च पञ्च विहीनान् वा क्रमाच्चैव दशावधि । ततः स्नात्वा च भुक्त्वा च निवसेदुत्तमस्थले ॥ यदि न स्याद्विप्रभोज्यं तदा निर्धनतां व्रजेत् । तेन् चेन्निर्धनस्तस्य तदा देवः प्रकुप्यति ॥ त्रिरात्रं वाथ षड्रात्रं नवरात्रन्तु संयमेत् । स्त्रीशय्यां यदि गच्छेद्वै तदा व्याधि र्भवेत् च हि ॥ गीतं श्रुत्वा च बधिरो

में लीन होता है । और निष्फल सफल होता है, इसके अतिरिक्त यह शव साधन करने से शक्ति का प्रियतर होजाता है। शव का अभाव होने से श्मशान में घोर साधन करना चाहिये जिनका जो भाव, कथित है, वह यदि उस भाव से अर्च्चना न करै तो वृथा क्रमयोग में ही भ्रष्ट हो जाता है, इस विषय में भावउपदेश न करै । रूप भी निर्देश न करै । कुलसे मंत्र ग्रहण करके जिस प्रकार समझे उसी भावमें प्रवृत्त होवे॥

इतिश्रीमहामहोपाध्याय श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीपूर्णानन्दगिरिविराचित

श्याम रहस्य भाषाटीका सहित त्रयोदश परिच्छेदः समाप्तः॥१३॥

अब प्रकारान्तर साधन कहते हैं-काली तन्त्र में कहा है. हे देवि ! श्रवण करो सम्पूर्ण साधनों से श्रेष्ठ वीर साधन कीर्त्तन करता हूं । लोक में शीघ्र फलप्राप्तिके लिये प्रकारान्तर वर्णित होता है । पुरुष चतुष्पथ में चारों ओर हृद खनन और ब्रह्मरन्ध्र में ओजित प्रदीप प्रज्वलित करै। मध्यभाग में अन्य एक खनन करना चाहिये । उससे ही शुद्धासन होता है । पूर्वोक्त मार्गानुसार उसमें संस्कार आरम्भ करना चाहिये । मशकादि देवगण को पूर्व की समान बलिप्रदान करै। कल्पोक्त पूजा करके एकाग्रचित्त से जप करना चाहिये । नग्न होकर दन्त और अक्षमाला एवं राजदन्त और मेरु माला द्वारा सर्वदैव मन्त्र अयुतवार जप करै । जपान्त में बलिप्रदान पूर्वक विभव के अनुसार दक्षिणा दान करने से, सर्वसिद्ध का अधीश्वर, विद्वान् और सम्पूर्ण देव

निश्च नुर्नृत्यदर्शनात् । यदि वक्ति दिने वाक्यं तदास्य मूकता भवेत् ॥ पञ्चदशदिनान्ते तु देहे देवस्य संस्थितिः । गोब्राह्मणानां निन्दाञ्च न कुर्य्याच्च कदाचन ॥ देवगोब्राह्मणादींश्च प्रत्यहं संस्पृशेत् शुचिः । प्रातर्नित्याक्रियान्ते तु विल्वपत्रोदकं पिबेत् ॥ ततः स्नायाच्च गङ्गायां प्राप्ते षोड़शवासरे । स्वाहान्तमूलमुच्चार्य्य तर्पणान्ते नमः पदम् ॥ एवं शतत्रयादूर्द्ध्वं देवान् वै तर्पयेज्जलैः । स्नानतर्पणशून्यस्य न स्याद्देवस्य तर्पणम् ॥ इत्यनेन विधानेन सिद्धिं प्राप्नोति मानवः । इह भुक्त्वा वरान् भोगान् अन्ते याति हरेः पदम् । असाङ्गं वापि साङ्गं स्यात् निष्फलं सफलं भवेत् ॥ कृत्वा साधनमेवैतत् शक्तेः प्रियतरो भवेत् ॥ शवाभावे श्मशाने वा कार्य्यं वै वीरसाधनम् ॥ यो भावो यस्य वै प्रोक्तस्तैर्भावैर्यदि नार्चयेत् । दशाहक्रमयोगेन भ्रष्टो भवति साधकः कुलमन्त्रं गृहीत्वा न यावत् बुद्धिः प्रजायते । नोपदिश्येत्तत्र भावं नरूपं तत्र सन्दिशेत् ॥

इति श्यामारहस्ये त्रयोदशः परिच्छेदः ।

नमस्कृत होजाता है अथवा निर्जन बन में अस्थि की शय्या और अस्थि का आसन करके उदयास्त दिनमान जप करने से सर्व्वसिद्धि का अधीश्वरत्व संग्रह होता है। अथवा विल्ववृक्ष में अपनी गोदी में शव को यत्नपूर्वक बैठाल करके नृसिंह मुद्रा प्रदर्शन सहित मातृका द्वारा जप करै इस प्रकार सहस्र जप करने पर सर्व्व प्रकार की सिद्धि आधीन होती है। अथवा बटवृक्ष के मूलदेश में शवको लाकर देवीकी पूजा करके उसमें शयन करता हुआ मंत्र जप करने परभी सर्व्वसिद्धिका ईश्वर होजाता है अथवा शवगणों को काष्ठा ग्रहण करके मुण्डमाला में विभूषित होकर उससे ही तिलक और उस भस्म से ही अङ्गविलिप्त करें उस अवस्था के समय श्मशान में सकृत जप करनेसे सर्व्वसिद्धि का अधीश्वर होता है। कुंकुम, अगर, कस्तूरी, रोली, घनचन्दन कर्पूर, पद्मराग, केशर, हरिचन्दन एकत्र साधित करके प्रत्येक को साधित करै, इसके द्वारा वटिका करके फिर भद्रकाली नीला, नीलपताका लोलजिह्वा और कराल का का जप करता हुआ ललाट में तिलक करने से वीरमणों को भी भयोत्पादन किया जाता है। महाष्टमी और नवमी की संधि में सन्मुख अवस्थिति करके चारों ओर छाग महिष और मेष सबकेशवको निक्षेप करै। तिससमय सम्पूर्ण कबन्ध और दीपादि समूहमें अलंकृत सम्पूर्ण मुण्ड भी इस प्रकार निक्षेप करने चाहियें। मध्यमें कबन्ध आस्तरण पूर्व्वक ताम्बूल पूर्ण द्वारा वदनमण्डल रक्तवर्ण और दोनों नेत्र अञ्जनाङ्कित करके मंत्र जप करनेसे सर्व्वसिद्धि का अधीश्वर होजाता है। नेत्रांत और वह्निभूषित तीनों आकाश प्रत्येक देवता के ही बीज हैं मूलमंत्र सहित यह बीज सार्द्ध लक्ष जप करै।

अथ चतुर्दशः परिच्छेदः ।

अथ प्रकारान्तरसाधनम् ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे—

शृणु देवि ! वरारोहे ! वीरसाधनमुत्तमम् । नृणां शीघ्रज्ञामाप्त्यै प्रकारान्तरमुच्यते ॥ चतुष्पथे चतुर्दिक्षु पुरुषं हृदयं खनेत् । जीवितं ब्रह्मरन्ध्रेवै दीपं प्रज्वालयेदथ ॥ मध्ये तथा खनेदेकं तत्र शुद्धासनं भवेत् । पूर्वोक्तेन च मार्गेण तत्र संस्कारमारभेत् ॥ महाकालादिदेवेभ्यो वलिं पूर्ववदाहरेत् । कल्पोक्तपूजां संपूज्य जपेत् प्रयतमानसः ॥ दन्ताक्षमालया चैव राजदन्तेन मेरुणा । दिग्वासाः प्रजपेन्मन्त्र मयुतं सर्वदैवतम् ॥ जपान्ते च वलिं दत्वा दक्षिणा विभवावधि । सर्वसिद्धीश्वरो विद्वान् सर्वदेवनमस्कृतः ॥ अथवा विजनेऽरण्ये अस्थिशय्यासनो नरः । उदयान्तं दिवा जप्त्वा सर्व सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ विल्ववृक्षे निजक्रोड़े शवमारोप्य यत्नतः । नृसिंहमुद्रया वीक्ष्य जपेन्मातृकया यदि ॥ सहस्रं तत्र वै जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरोभवेत् । वटमूले शवं नीत्वा तत्र देवीं प्रपूज्य च ॥ सुप्त्वा तत्र मनुं जप्त्वा सर्व सिद्धीश्वरो भवेत् । करकाञ्ची समादाय मुण्डमाला विभूषितः ॥ तेनैव तिलकं कृत्वा तत्तद्भस्मविभूषितः । श्मशाने च सकृज्जप्त्वा सर्व सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ कुंकुमागुरुकस्तूरी रोचना घनचन्दनम् । कर्पूरं पद्म-

---

तिस समय इस प्रकार कहै।हे चामुन्डे ! हेघोर नस्वने ! जिह्वाग्र में रुधिर ग्रहण करो वलि छेदन करके वरदो वीरगणों की हित कामना से देवी कालिका का विषय कीर्त्तन किया । देवी कालिका रणस्थल में पताका की समान जय श्री विधान करती हैं इसलिये नील साधन में नील पताका की योजना करनी चाहिये । हे प्रिय ! मैंने जो पूर्व में महाविद्या उग्र चण्डा का विषय कीर्त्तन कियाहै उसको लोलजिह्वा कहतेहैं । भाद्रमास के समय पुष्कर योग में चिरचिटा लाकर मंत्र भूमि में निक्षेप और उसमें उसका साधित करके उसदिन एक मट्टी की हांडी में प्रसारित मत्स्य लाकर प्रदान करै । अनन्तर उस जलसे पूर्व की समान शवके ऊपर अभिषेक करके उसके उदर में मुख मार्गयोग में साधित विजया निक्षेप करता हुआ अञ्जनाङ्कित लोचन से मत्स्य को खनित करै । फिर पूर्व द्रव्य से तिलक करके, उत्थान पूर्वक जपमें प्रवृत्त होवे।

रागञ्च केशरं हरिचन्दनम् ॥ एकत्र साधितं कृत्वा प्रत्येकं साधयेत् सुधीः । जिह्वाग्रे रुधिरं वीर आकाशे च समाहरेत् ॥ तेनैव वटिका कृत्वा मन्त्रकालीं ततो जपेत् । नीलां नीलपताकाञ्च लोलजिह्वां करालिकाम् ॥ ललाटे तिलकं कृत्वा साधको वीरभावः स्वयम् । महाष्टमीनवम्यास्तु संयोगे पुरतः स्थितः ॥ छागमहिषमेषाणां चतुर्दिक्षु शवान् क्षिपेत् । कबन्धान् मुण्डजाञ्च दीपादिभिरलंकृताम् ॥ मध्ये कबन्धमास्तीर्य्य तत्र गन्धर्वरूपधृक् । ताम्बूलपूररक्तास्य मञ्जनाञ्जितलोचनम् ॥ कृत्वा तत्र मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । वियत्रययुतं देवि ! नेत्रान्तं चन्द्रभूषितम् ॥ बीजं प्रत्येकदेवानामिति तासाञ्च पार्वति ! ॥ मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञो जपेत् सार्द्धशतद्वयम् ॥ जिह्वाग्रे रुधिरं गृह्ण चामुण्डे ! घोरनिःस्वने ! । बलिं छित्वा वरं देहि रुधिरं गगनेऽमले ॥ कालि ! कालि ! प्रचण्डोग्रे ततोऽस्त्रं कवचं ततः । कालिकेयं समाख्याता वीराणां हितकाम्यया ॥ कूर्चयुग्मं महादेवि ! लीलया कथितं तव । चन्द्रखण्डसमायुक्तं ततो नीलपदं ततः । पताके हुँ फडन्ते च पूर्वकूटमनुर्मतः ॥ सुगुप्तेयं महाविद्या तव स्नेहाद्विहोदिता । जयश्रीकिरणी देवी पताकेव रणस्थले ॥ तेन नीलपताकेयं

स्वयं भगवान् भैरव लगुडांकित होकर तहां आविर्भूत होते हैं । उन का दर्शन करके मंत्र जप करै । हे देवि ! यदि वहां भाग्यवश से न ड़लाभ हो, तो साधक स्वयं भैरव होता है । हे देवेशि ! उल्लिखित मत्स्य लाकर, पितृकानन में निक्षेप पूर्वक तहां बारंवार जप करने से, देवता के सहित मेल होता है । हे भाविनि ! तहां महादेव और महादेवी को नमस्कार करके उनकी भस्म से तिलक करने पर, स्वयं वीरेश्वर होजाता है हे देवि ! रात्रिकाल के समय श्मशान प्रदेश में नग्नवेश मुक्तकेश भस्म भूषित कलेवर शुद्धमानस कृपाण और खड्गहस्त से यदि मातृका द्वारा जप कियाजाय । तो सम्पूर्ण सिद्धिसम्पन्न होता है । डाकिनी, योगिनी, अथवा भूत गना को तहां लाकर, पूजा करनेसे सर्वविध सिद्धि का अधीश्वर होजाता है । नील साधन में ब्राह्मण और गोमय वर्ज्जन करके अन्यान्य सम्पूर्ण जन्तुओं की शव लाकर, वीरसाधन करै । मृतासन के अतिरिक्त देवी पार्वती की पूजा करने से यावत् प्रलय तक घोर नरक में वास करना होता है । कालिका और वीरसाधन में संपूर्ण महाशव प्रशस्त हैं । और समस्त क्षुद्र शव प्रयोग समय में प्रशस्त और सर्वसिद्धि की हेतु होती हैं । हे देवि ! मैंने यह तुम्हारे निकट नीलक्रम कीर्त्तन किया । हे महेश्वरि! हमारी प्रसन्नता के लिये इसे अन्य किसी से न कहो ॥

याज्या वै नीलसाधने । उग्रचण्डा महाविद्या या पुरा कथिता प्रिये ! ॥ लोलजिह्वा तु सा प्रोक्ता संयोज्या नीलसाधने । या सा विद्या महातारा सा करालेति कीर्त्तिता ॥ भूमिपुरसमायुक्ता सामावस्या शुभोदया । भाद्रेपुष्करयोगे च तस्यां वीरवरोत्तमः ॥ विष्णुकान्तां समानीय निःक्षिपेत् मन्त्रभूमिषु । तत्र तां साधितां कृत्वा तद्दिने मृतहट्टके ॥ तत्र प्रसारितं मत्स्यमेकं मूल्येन दापयेत् । तज्जलेनाभिषेकञ्च पूर्ववच्च शवोपरि ॥ साधितां विजयां तस्य उदरे मुखवर्त्मना । क्षिप्त्वा तत्र खनेन्मत्स्यमञ्जनाञ्जितलोचनः ॥ तिलकी पूर्वद्रव्येण उत्थाय च मनुं जपेत् । स्वयं वै तत्र भगवान् भैरवो लगुड़ाङ्कितः॥ भ्रमातीतस्ततो वीरस्तं विलोक्य जपेन्मनुम् । यदि भाग्यवशाद्देवि ! लगुड़स्तत्र लभ्यते ॥ तदा स्वयं भैरवोऽसौ स्वयं वीरेश्वरो भवेत् । मत्स्य मानीय देवेशि ! निःक्षिपेत् पितृकानने ॥ तत्रासकृज्जापित्वा च देवतामेलनं भवेत् ।तत्र नत्वा महादेवं महादेवीञ्च भाविनि॥ तत्कुस्मातिलकं कृत्वा स्वयं वीरेश्वरो भवेत् । निशायां मृतहट्टे च उन्मत्तानन्दभैरव ॥ दिग्वासा विमली भस्मभूषणो मुक्तकेशकः । कृपाणखड्गहस्तश्च जपेन्मातृकया यदि ॥ तदा तस्य महादेवि ! सर्वसिद्धिः प्रजायते । डाकिनीं योगिनीं वापि अन्यां वा भूतकाङ्गनाम् ॥ तत्र

श्रीदेवी ने कहा हे देव महेश्वर ! मैं आपके प्रसाद द्वारा इससे अवगत हुई अब अशक्तपक्षका पुरश्चरण कीर्त्तन कीजिये ॥

भैरव ने कहा है, हे देवि ! श्मशानही दुर्लभ पुरश्चर्य्यानिर्दिष्ट हुई है । अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण होता है । कहता हूं श्रवण करो ! मङ्गलवार वा शनिवार में पंचगव्य विशेष करके चन्दनादि द्वारा मिलित और संयुक्त नरमुण्ड भूमि अथवा वनमें आधे हाथकी परिमाण निक्षेप करके यदि उस दिन रात में अकेलो सहस्र जप कर। तो वह व्यक्ति कल्पवृक्ष होता है । अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण किया जाता है । शव लाकर उसी द्वार में खनन कर उस दिन अष्टोत्तर शत जप करने से सर्व विध सिद्धिका अधीश्वर हो जाता है । इसमें द्विधा करने की आवश्यकता नहीं । अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण किया जाता है । दोनों पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी में सूर्योदय से अस्त पर्यंत निरातङ्क होकर जप करने से सर्व सिद्धिका अधिनायक हो जाता है । अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण किया जाता है । चंद्र और सूर्यके ग्रहण समय ग्राससे मोक्ष पर्यंत यावत् संख्यक मंत्र जप करके जपका दशांश परिमाण होम करे । सूर्यग्रहण की अपेक्षा अन्य काल श्रेष्ठ नहीं है । इस समय जिस जिस कार्यका

चानीय संपूज्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्। सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनांनीलसाधने॥ ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेद्वीरसाधनम्। मृतासनं विना देवि पूजयेत् पार्वतीं शिवाम् ॥ तावत्कालं वसेद्घोरे यावदा हूतसंप्लवम्। महाशवाः प्रशस्ताः स्युः कालिकावीरसाधने ॥ क्षुद्राः प्रयोगे कर्त्तॄणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धिदाः। एवं नीलक्रमं देवि! कथितञ्च तवानघे!॥ न कस्यचिद् प्रवक्तव्यं मम प्रीत्या महेश्वरि!॥

श्रीदेव्युवाच।

ज्ञातमेतन्मया देव! त्वत्प्रसादान्महेश्वर!। अशक्तानान्तु मे देव! पुरश्चरणमुच्यताम् ॥

भैरव उवाच—

श्मशानेषु पुरश्चर्य्या कथिता देवि! दुर्लभा॥ अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते। कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समायुतम् ॥ पंचगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः। निक्षिप्य भूमौ हस्तार्द्धमानतः कानने वने ॥ तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि मानवः। एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत् कल्पपादपः ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शवमानीय तद् द्वारि तेनैव परिखन्यते॥ तद्दिनात् तद्दिनं यावत् जपेदष्टोत्तरं शतम्। स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्य्या वि-

अनुष्ठान किया जाता है वह सम्पूर्ण ही अनन्त फल प्रसव करता है चन्द्र सूर्यके ग्रहण से पूर्व दिन उपवास करके शुचि पूर्वक समुद्रगामिनी नदी में नाभि पर्यंत अवस्थिति करके समाहित चित्त से शुद्धोदक में स्नान पूर्वक शुद्ध प्रदेश से स्पर्श मुक्ति पर्यन्त अनन्य मनसे जप करै अनन्त दशांश परिमाण क्रमसे होमादि करके पीछे देवीकी भली भांति पूजा पूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन करावे। अनन्तर मंत्रसिद्धि के लिये गुरुकी अभ्यर्चना करके उनका परितोष करै॥

कालीतंत्र में कहा है शरत्काल के समय चतुर्थी से नवमी पर्यंत भक्ति सहित भली भांति पूजा करके रात्रिमें केवल अकेला अधेरेमें बैठकर हजार जप करै। अष्टमीसे नवमी पर्यंत उपवास परायण होवे। अन्यत्र गुरु मार्गको उलंघन न करै। अथवा अन्य प्रकारभी पुरश्चरण किया जाता है अष्टमीकी सन्धि वेलामें अष्टोत्तरलतागृह में प्रवेश और यथाविधान से यत्नसहित उन सबकी पूजा करके पूर्वोक्त फल लाभ होने पर पूजादि में प्रवृत्त होवे। अष्टोत्तरशत जप करने से कामदेव होता है। उ के मूल पत्र

धारणा ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । अष्टम्यांच चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ सूर्य्योदयात् समारभ्य यावत् सूर्य्योदयान्तरम् । तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव ग्रासावधि विमुक्तितः ॥ यावत्संख्यं मनुं जप्त्वा तावद्धोमादिकं चरेत् । सूर्य्यग्रहणकालाद्धि नान्यः कालः प्रशस्यते ॥ अत्र यद्यत् कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् । तावदिति जपदशांश होमादिकमित्यर्थः ॥ ग्रहणे चन्द्रसूर्य्यस्य शुचिः पूर्वमुपोषितः । नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः ॥ यद्वा शुद्धोदकस्नात्वा शुचौ देशे समाहितः।स्पर्शाद्विमुक्तिपर्य्यंतं जपं कुर्य्याद नन्यधीः॥ अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकं चरेत्। तदन्ते महतीं पूजां कुर्य्याद् ब्राह्मणभाजनम्॥ततो मन्त्रस्य सिद्ध्यर्थं गुरुंसंपूज्य तोषयेत्॥

अथ कालीतन्त्रे—

शरत्काले चतुर्थ्यादि नवम्यंतं विशेषतः । भक्तितः पूजयित्वा रात्रौ तावत् सहस्रकम् ॥ जपदेकाकी विजने केवलं तिमिरालये। अष्टम्यादि नवम्यंतमुपवासपरो भवेत् ॥ अन्यच्च गुरुमार्गस्य लङ्घनं

द्वारा उसकी अर्च्चना करने से लतादर्शन और उसका पूजन प्रयुक्त शीघ्र मंत्रसिद्धि संघटित होती है। अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण होता है। कृष्णवर्णा रमणीकी कुलागार में मंत्र भावना और उसमें पूजा एवं संस्कार करके उस रमणी को निवेदन पूर्वक कुछ एक परिमाण मंत्र जप करै। फिर देवताकी समान तत्पर होकर उस रमणीका नमस्कार के अनंतर विदा देकर स्वयं भलीभांति संयम रहित जप के अंत में प्रातःकाल के समय सम्पूर्ण स्त्रीको बलिप्रदान करनेसे निःसंदेह मंत्रसिद्धि होती है। अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण किया जाता है। गुरुको बुलाय स्थापन पूर्वक देवता की समान पूजन और वस्त्र अलंकार एवं होमादि द्वारा उनका संतोष सम्पादन और उनके पुत्र कन्या विशेष करके पत्नीकी अर्च्चना करके मंत्र जप करने से सम्पूर्ण सिद्धि आधीन होती हैं। अथवा अन्य प्रकार भी पुरश्चरण किया जाता है। सहस्रधार गुरुके चरणकमलों का ध्यान और पूजा करके केवल देवभाव में जप करने से सिद्धेश्वर हो जाता है। गुरुको विभव के अनुसार दक्षिणा देवे। गुरुकी आज्ञा मात्र से इष्टमंत्र भी सिद्ध होता है। गुरुको लंघन करके सुरगणों को भी इस शास्त्र में अधिकार उत्पन्न नहीं होता। हे देवि! गुरुसे विमुख होकर इन सम्पूर्ण मंत्र तंत्रोंका प्रयोग करने से सिद्धिकी हानि होती है। यह तंत्र और मंत्र शिष्यगणों को भी न दिखावे दिखाने से निःसन्देह प्रेतराज के भवन में गमन करना होता है॥

नैव कारयेत् । अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ॥ अष्टमीसन्धिवेलायां अष्टोत्तरलतागृहम् । प्रविश्य मन्त्री विधिवत् ताः समभ्यर्च्य यत्नतः ॥ पूर्वोक्तफलमासाद्य पूजादिकं समाचरेत् । केवलं कामदेवोऽसौ जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ तासान्तु पत्रमूलेन उग्रां संपूज्य कर्णिके । मन्त्रसिद्धिर्भवेत् सद्यो लतादर्शनपूजनात् ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । आकृष्णयोः कुलागारे भावयेन्मन्त्रमेव च ॥ प्रपूज्य तत्र संस्कारं कृत्वा तस्यै निवेद्य च । किंचित् जपं मनुं नीत्वा देवताभावतत्परः ॥ तां विसृज्य नमस्कृत्य स्वयं जप्त्वा सुसंयतः । प्रातः स्त्रीभ्यो बलिं दत्त्वा मन्त्रसिद्धिर्न संशयः ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । गुरुमानीय संस्थाप्य देववत् पूजनं विभोः ॥ वस्त्रालङ्कारहेमाद्यैः सन्तोष्य गुरुमेव च । तत्सुतं तत्सुताञ्चैव तत्पत्नीञ्च विशेषतः ॥ पूजयित्वा मनुं जप्त्वा सर्व सिद्धीश्वरो भवेत् । अथ वान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ॥ सहस्रारे गुरोः पादपद्मं ध्यात्वा प्रपूज्य च । केवलं देवभावेन जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ गुरवे दक्षिणां दद्यात् यथाविभवमात्मनः ॥ गुरोरनुज्ञामात्रेण दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥ गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन् नाधिकारः सुरैरपि । एषाञ्च मन्त्रतन्त्राणां प्रयोगः क्रियते यदि ॥ गुरुवक्त्रं विना देवि ! सिद्धिहानिः प्रजायते ।

अब कालिका का दर्शनार्थ साधनान्तर लिखते हैं । सायंकाल के समय शून्यगृह में गमन और उत्तराभि मुख बैठकर भूतशुद्धि इत्यादि से न्यासपर्यन्त विधान और सिंदूर द्वारा नवकोण वृत्त अष्टदल वृत्त चतुरस्र और चतुर्द्वारात्मक यंत्र अंकित करै । फिर सन्मुख कुमारी का शक्तिबीज लिख कर पुराभाग में स्थापन और उसमें पीठपूजा विधान एवं द्वादश प्राणायाम समाधान करके देवी का ध्यान करना चाहिये । यथा—नर कपाल में अधिरूढ नरमाला से बिभूषित कृष्णाभ्रसन्निभा, रक्तवस्त्र के ऊपर विराजित चारभुजा धारण किये दिव्यालङ्कार शोभित देवी की निशा मुख से दो यामद्वयपुजा और ध्यान करके उनका दर्शनोत्सुक होकर मंत्रजपमें प्रवृत्त होवे । तिस काल चारों ओर घृत का दीप रखकर शवके ऊपर बैठ मोह भय रहित होवे । और मुण्डके ऊपर मुण्ड होवे । ऊर्द्ध्वास्य और दीपदर्शन तत्पर होकर मंत्र जप और मुण्डके ऊपर दीप सन्निविष्ट करै । और मूल मंत्र से पूजा करके देवीके देखने में प्रवृत्त होवे । फिर नवकोणसमन्वित सिन्दूर मण्डल विधान करके उसमें शक्ति बीज विन्यस्त और अन्य वीज समूह में उस शक्ति बीजको परिवृत करै । अनन्तर सिंदूर द्वाराही बहिर अष्टदलपद्म लिख कर उसमें जगद्धात्री कृष्णविग्रहा कालिका का

एतत्तन्त्रंच मन्त्रंच शिष्येभ्योऽपि न दर्शयेत् । अन्यथा प्रेतराजस्य भवनं याति निश्चितम् ॥

अथ कालिकादर्शनार्थं साधनान्तरमालिख्यते—प्रदोषे शून्यगृहं गत्वा उत्तराभिमुख उपविश्य भूतशुद्ध्यादिकं न्यासान्तं विधाय सिन्दूरेण नवकोणवृत्ताष्टदलवृत्तचतुरस्रचतुर्द्वारात्मकं यन्त्रं विलिख्य संमुखे कुमार्य्योः शक्तिबीजं लिखित्वा पुरतः संस्थाप्य तत्र पीठपूजां विधाय द्वादशप्राणायामं कृत्वा देवीं ध्यायेद् यथा -

नृकपालसमारूढ़ां नरमालाविराजिताम् । कृष्णाभ्रसन्निभां रक्तवासोपरि विभूषिताम् ॥ चतुर्बाहुधरां देवीं दिव्यालङ्कारशोभिताम् । निशामुखं समारुह्य यावद् यामद्वयं भवेत् ॥ तावत्कालं जपेन्मन्त्रं कालिकादर्शनोत्सुकः । चन्दनावीतन्नृशिरः शवोपरि विराजितः ॥ घृतप्रदीपमालाभिस्तथैव परिवेष्टितः । मुण्डोपरि भवेन्मुण्डो भयमोहविवर्जितः ॥ ऊद्ध्र्वास्यः प्रजपेन्मन्त्रं दीपालोकनतत्परः । मुण्डोपरि भवेन्मुण्डस्तद्दीपंच निधापयेत् ॥ पूजयेन्मूलमन्त्रेण कुर्य्याद्देव्या बिलक्षणः । सिंदूरमण्डलं कृत्वा नवकोणसमन्वितम् ॥ शक्तिबीजन्तु तन्मध्ये लिखित्वान्यैः समावृतम् । वहिरष्टदल पद्मं तेनैव कारयेद्बुधः । तत्रावाह्य जगद्धात्रीं कालिकां कृष्णविग्रहाम् । पूजयेद्विधिवद्देव्यै नवरात्र समाहितः ॥ ततस्तुष्टा जगद्धात्री कालिका परमेश्वरी ।

आवाहन करके समाहित होकर नवरात्रि यथा विधान से उनकी पूजा करनी चाहिये । तो जगद्धात्री परमेश्वरी कालिका तुष्ट होकर दया प्रकाशके पीछे साधक को सर्वविध सम्पत् प्रदान करती हैं । प्राण कण्ठगत होने पर भी इसको प्रकाश न करे ॥

इति श्री महामहोपाध्याय श्रीपरमहंस परिव्राजक श्रीपूर्णानन्द
गिरि विरचित श्यामारहस्य भाष टीका सहित
चतुर्दश परिच्छेदः समाप्तः ॥ १४ ॥

अब काम्यहोमार्थ कुण्डनियम लिखते हैं । यथा— यामल में कहा है, शांति और आरोग्य कर्म में चतुरस्र विधान करे । उच्चाटन में त्रिकोण कुंड करना चाहिये उच्चाटन में गोलाकार करे । मारण में भी गोलकुंड की योजना करनी कर्त्तव्य है ॥

सर्वसम्पत्तिदा देवी साधकस्यानुकम्पया ॥ नेदं प्रकाशयेद् मन्त्र प्राणैः कण्ठगतैरपि । शिष्याय भक्तिहीनाय भैरवेन हि भाषितम् ॥

इति श्यामारहस्ये चतुर्दशः परिच्छेदः ।

— - :o: — —

अथ पंचदशः परिच्छेदः ।

अथ काम्यहोमार्थं कुण्डनियमो यथा--

तदुक्तं यामले–

शान्त्यै प्रोक्तं तथारोग्ये कुण्डञ्च चतुरस्रकम् । आकर्षणे त्रिकोणं स्यात् उच्चाटे वर्त्तुलं तथा ॥ मारणेच तथा योज्यं वर्त्तुलं मंत्रभिः सदा ॥

देव्युवाच—

देवदेव ! महादेव ! भक्तानां प्रीतिवर्द्धन ! । कालिका या महाविद्या निर्दिष्टा न प्रकाशिता ।

श्री देवी ने कहा हे देव देव ! हे महादेव ! आप भक्तगणों की प्रीतिवर्द्धन करते हो आपने पूर्व में जो महाविद्या कालिका का विषय निर्देश किया था वह प्रकाश नहीं किया, उसको कहो मैं सुनने के लिये उत्सुक हुई हूं ।

श्री महादेव ने कहा, मैं तुमको लक्ष २ सहस्रवार निवारण करता हूं तथापि तुम स्त्रीस्वभाववशतः पुनर्वार जिज्ञासा करती हो । देवी कालिका का यह कवच अत्यन्त दुर्लभ और सर्वविध कामना पूर्ण करता है । तथापि तुम्हारे प्रति प्रीति वशतः अब वह कहता हूं । यह कवच न जानने से विद्या सिद्ध नहीं होती ॥

श्री देवी ने कहा । हे विभो ! यदि मेरे प्रति स्नेह हो, तो कवच कीर्त्तन कीजिये अन्यथा हे जगत् के नाथ ! निश्चय ही प्राण त्याग करूंगी ॥

श्रीमहादेवने कहा अति दुर्लभ कवच कीर्त्तन करताहूं, अतियत्न के सहित अपनी योनिकी समान इसको गुप्त रखना चाहिये । कालि पूर्वदिक् में रक्षा करें । कपाली दक्षिणदिक् में रक्षा करै । कुल्ला पश्चिम में और कुरुकुल्ला उत्तर में, विरोधिनी ऐशान में, विप्रचित्त अग्निकोणमें, उग्रा नैॠत में उग्रप्रभा वायुकोण में, दीप्ता

श्री महादेव उवाच—

लक्षं लक्षसहस्राणि वारितासि मया पुनः । स्त्रीस्वभावान्महादेवि! पुनस्त्वं परिपृच्छसि ॥ अत्यन्तदुर्लभं देवि! कवचं सर्वकामदम् । तथापि कथयाम्यद्य तव प्रीत्या वरानने! ॥ उक्तं पुरा महादेवि! श्रूयतां तत् कृपामयि! । कवचाज्ञानतो देवि! विद्यासिद्धिर्न जायते ॥

श्रीदेव्युवाच—

कथ्यतां कवचं देव! यदि स्नेहो मयि प्रभो । अन्यथा जगतां नाथ! प्राणांस्त्यजामि निश्चितम् ॥

श्रीमहादेव उवाच—

कवचं कथयिष्यामि सुगोप्यमतिदुर्लभम् । गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिवद्वरानने! ॥ पूर्वस्यां पातु काली च कपाली दक्षिणेऽवतु ।

मस्तक में, नीला मुखमण्डल में, घना कण्ठ में बलाका हृदय में मात्रा नाभि में मिता दोनों जंघाओं में, मुद्रा ध्वज में, और ब्राह्मणी इत्यादि महादेवीगण सर्वत्र मेरी रक्षा और पालन करें।

हे देवि! जो तीन श्लोक परम पवित्र और जिनके जानने से, मेरी समान होता है। अब तुम्हारे स्नेह के अनुरोध से यह दुलभ तीन श्लोक कीर्त्तन करता हूं । जिनका आशय पवित्र है । वही सर्पीःसागर में शोभमान मणिमय द्वीप में दमम्यान्वित रत्न गृह में शव के हृदय में सघछिन्न कर परं परा में सुशोभित क्रीं रूपणी, श्री दक्षिणा कालिका का जो ध्यान करता है ॥ १ ॥ जो तद्दीय भावना रूप परमानन्द सन्दोह भोग करता है । वही सिद्धि के लिये भगवती कालिका का वक्ष्यमाण ध्यान करता है । पानवशतः तीनों नेत्र घूर्णायमान होजाने से उनकी अत्यन्त शोभा उत्पन्न हुई है। लक्ष लक्ष स्त्रियें उनके दोनों चरणारविंदों की सेवा करती हैं। उन्हों ने सर्वशोभाढ्य और सर्व सौभाग्य सम्पन्न काल के मुख में मुख स्थापन करके चान्द्री कला धारण

कुल्ला रक्षतु पाश्चात्ये कुरुकुल्ला तथोत्तरे ॥ विरोधिनी तथैशान्यां विप्रचित्ताग्निकोणके । नैर्ऋते पातु चोग्रा च वायावुग्रप्रभावतु ॥ दीप्ता तु रक्षतां शीर्षे नीलाव्यान्मुखमण्डले । घना रक्षतु कण्ठे च बलाका हृदयेऽवतु ॥ नाभौ मात्राजङ्घयोश्च मिता मुद्रावतु ध्वजे । ब्रह्माण्याद्या महादेव्याः सर्वत्र पान्तु सर्वदा ॥ श्लोकत्रयं महापुण्यं यज्ज्ञात्वा मत्समो भवेत् । तव स्नेहान्महादेवि कथयामि सुदुर्लभम् ॥

श्रीपरमशिव उवाच ।

सर्पिःसागरविस्फुरन्मणिमयद्वीपे कदम्बान्विते गेहे रत्नमये शवस्य हृदये रत्नामृतेशानने । वर्गाद्याननवामलोचनमयीं श्रीदक्षिणां कालिकां सद्यश्छिन्नशिरःकरां भगवतीं ध्यायन्ति पुण्याशयाः ॥ मद्याघूर्णितलोचनत्रयमहाशोभामयीं योषितां लक्षैः सेवितपादपद्मयुगलां श्रीभैरवीद्योतिताम् । श्रीमत्कालमुखे मुखं निदधतीं चान्द्रीं कलां बिभ्रतीं तां ध्यायन्ति सुसिद्धये भगवतीं तद्भावनानन्दिताः ॥ मांसासृग्दुग्धखण्डच्छुरितमधुमहापानमत्तां हसन्तीम् अट्टाट्टं कालकालं कहकहडमिति प्रोल्लसन्तीं सखीषु । नृत्योद्दामहासोन्मदमुदितमहाभैरवानन्दवीचीं मातङ्गं खण्डयन्तीमभयवरकरां कालिकां तां भजामः ॥ इदन्तु दिव्यं कवचं मनोज्ञं देयं कदाचिद् गुरवेऽपि नैव । महद्भयात् स्नेहरसेन दत्वा हानिः शरीरेण च साधकेषु ॥

यस्मादिदन्तु कवचं लभ्यते बहुपुण्यतः । तेन दत्तन्तु सकलं सद्गुरुं परम प्रिये ! ॥ यस्मै तस्मै न दातव्यं प्राकृतेभ्यो विशेषतः । प्रकाशे सिद्धिहानिः स्यात् तस्माद् यत्नेन गोपयेत् ॥ गुरुपादप्रसादेन यदि कालीं

की है । ॥ २ ॥ जो माँस और असृग्रूप दुग्ध खण्ड में विच्छुरित मधु अतिमात्र पान करके मत्तभावापन्न हुई हैं । जो नृत्यवशतः अतिशय उद्दामभावापन्न और महा हास्योन्मद से परम आमोदित महाभैरव के आनन्दलहरीस्वरूप और जो हस्ती को पकड़कर खंड २ करती हैं । उसी वराभयकरा कालिका की भजना करता है ॥ ३ ॥ यह विद्या मनोज्ञ कवच गुरु को भी न देवे । महाभय वा स्नेह रस प्रयुक्त दान करने से शरीर के सहित साधक की हानि होती है । क्योंकि पुञ्जीकृत पुण्यप्रभाव सेही यह कवच लाभ होता है । इसीकारण जिसको तिसको विशेषतः प्राकृत व्यक्तिगणों को न देवे और प्रकाश करने से भी सिद्धि की हानि होती है । इसलिये यत्नसहित गुप्त रक्खे । गुरु के पादप्रसाद से यदि देवी कालिका को

प्रलभ्यते जप्त्वा कालीं महाविद्यामिदन्तु कवचं मठेत्॥ अज्ञात्वा कवचं देवि ! कालिका चेत् प्रजप्यते । स नाप्नोति फलं तस्मात् परत्र नरकं व्रजेत् ॥ सर्वत्र सुलभा विद्या कवचन्तु सुदुर्लभम् ॥ शरीर धनदारेण गुरुं सन्तोष्य तत् पठेत्॥ सफला रजनी पूजा दिवापूजा च निष्फला। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रजन्यां कवचं स्मरेत् । विवादे च रणे द्यूते विद्यायां कवितागमे । राजगेहे विचारे च सर्वत्रेदं पठेन्नरः ॥ मोहन-स्तम्भनाकर्षमारणोच्चाटनं तथा । कवचस्मरणाद्देवि ! जायंते सर्वासि-द्धयः ॥ अथवा किमिहोक्तेन सत्यं सत्यं मम प्रिये ! प्रत्यक्षा दक्षिणा काली वरं यच्छति सुन्दरि ! ॥ गुरौ च कवचे तंत्रे यंत्रे देवीं सदा भजेत् । गुरुस्त्राता महादेवः कवचं यः प्रयच्छति ॥ इदंतु कवचं प्राप्य हेलनं कुरुते तु यः । अचिरान्मृत्युमाप्नोति मम तुल्योऽपि साधकः ॥ स माता जनकश्चैव स गुरुः स च पूजितः । स सर्वदः स आचार्य्यः कवचं यः प्रयच्छति ॥

इति श्रीरुद्रयामले महातंत्रे श्रीदक्षिणकालिकायाः परमशिवोक्तं सर्वसिद्धिदं कवचं समाप्तम् ॥

लाभ किया जाये तो काली महाविद्या का जप करके यह कवच पाठ करै । हे देवि ! यह कवच न जानकर काली का मंत्र जप करने से उसका फल लाभ नहीं होता। और अन्तकाल के समय नरक संघटित होता है । काली का मन्त्र सर्वत्र सुलभ, किंतु कवच अत्यन्त दुर्लभ है । इसलिये शरीर, धन और स्त्री द्वारा गुरु को सन्तुष्ट करके, यह पाठ करना चाहिये। रात्रि में पूजा करने से वह सफल होती है । दिन में पूजा निष्फल होती है, इसलिये सर्वयत्न से रात्रि में कवच स्मरण करै । विवाद, युद्ध, द्यूतक्रीडा, विद्या, कवितागम, राजगृह विचार सर्वत्र यह कवच पाठ करै। हे देवि ! इस कवच के स्मरण मात्र से ही मोहन, स्तम्भन, आकर्षण, मारण और उच्चाटन इत्यादि सर्वविध सिद्धि लाभ होजाती है। अथवा इस विषय में और क्या कहूं ? सत्य सत्य ही कहता हूँ, देवी दक्षिणा कालिका प्रत्यक्ष होकर वरदान करती हैं गुरु में कवच में तंत्र में और यंत्र में सर्वदा देवी की भजना करै। गुरुही त्राणकर्त्ता है । क्योंकि यह कवच दान करते हैं। जो व्यक्ति इस कवच को प्राप्त करके उनके प्रति अश्रद्धा करता है वह मेरी समान होने पर भी अचिरात् मृत्यु के मुख में पतित होता है । जो व्यक्ति यह कवच प्रदान करै । वही माता, वही पिता, वही गुरु वही पूजित, वही आचार्य्य, और वही सम्पूर्ण दान करता है ।

इति दक्षिणकालिका का परमशिवोक्त सिद्धिदायक कवच समाप्त ॥

नमामि कृष्णरूपिणीं कृष्णाङ्गयष्टिधारिणीम् । समग्रतत्वसागरमपारपारगह्वराम् ॥ शिवाप्रभां समुज्ज्वलां स्फुरच्छशाङ्कशेखराम् । ललाटरत्नभास्करां जगत्प्रदीप्तिभास्कराम् ॥ महेन्द्रकश्यपार्चितां सनत्कुमारसंस्तुताम् । सुरासुरेन्द्रवन्दितां यथार्थनिर्मलाद्भुताम् ॥ अतर्क्यरोचिरूर्जितां विकारदोषवर्जिताम् । मुमुक्षुभिर्विचिन्तितां विशेषतत्वसूचिताम् ॥ मृतास्थिनिर्मितस्रजां मृगेन्द्रवाहनाग्रजाऽम् ।

देवी कालिका को नमस्कार करता हूं। वह साक्षात् कृष्णरूपिणी अर्थात् संहार स्वरूप हैं। उनकी अङ्गयष्टि कृष्ण अर्थात् तमोगुण ले व्यवच्छिन्न है। वह सम्पूर्ण तत्त्व की सागर स्वरूप हैं। वह अपार अर्थात् उनकी सीमा वा अवधारण नहीं है, और सहज में भी उनको प्राप्त नहीं किया जाता। वह पारा अर्थात् भक्तगण उनको सहज में ही लाभ करते हैं। वह गहवरा अर्थात् अतीव दुर्विज्ञेय स्वरूप हैं। वह शिवा अर्थात् कल्याणस्वरूप हैं। वह प्रभा अर्थात् सूर्य्य चन्द्रादि ज्योतिरूप से सम्पूर्णको प्रकाश करती हैं। वह समुज्ज्वला अर्थात् विज्ञान ज्योतिस्वरूप हैं। वह स्फुरत् अर्थात् सत्स्वरूप प्रकृति हैं। वह शशाङ्का अर्थात् अमृत की आधार हैं। वह शेखरा अर्थात् सबसे श्रेष्ठ हैं। वही सब की ललाट अर्थात् अदृष्ट स्वरूप हैं वही रत्न अर्थात् सब से उत्कृष्ट हैं। वह भास्करा अर्थात् सम्पूर्ण प्रभाकी खानस्वरूप हैं। वह जगत् अर्थात् जन्म मृत्यु हैं। प्रभास्वरूप से वारंवार आविर्भाव और तिरोभाव साधन करती हैं। वह प्रदीप्ति अर्थात् सम्पूर्ण चैतन्यज्योति स्वरूप हैं। वह भास्करा अर्थात् वही चैतन्य ज्योति को नित्य प्रकाश करती हैं। वही महेश्वर अर्थात् सम्पूर्ण महत् पदार्थ से श्रेष्ठ हैं और वही कश्यप अर्थात् सम्पूर्ण के आश्रय हैं। वह आदि देव भी उनकी अर्चना करते हैं। जो सनत् अर्थात् सर्वदाही विराजमान हैं। किसी समय जिनका अभाव वा क्षय नहीं और जो कुमार अर्थात् सम्पूर्ण अमङ्गल विनाश करते हैं। वह भी उनका स्तव करते हैं। सुर और असुरगण के भी ईश्वर सम्पूर्ण उनकी वन्दना करते हैं। वह यथार्थ चरम सत्यस्वरूप हैं। वह निर्मला अर्थात् शुद्धसत्वस्वरूप हैं। वह अद्भुता अर्थात् परम आश्चर्य्यस्वरूप हैं। तर्क द्वारा उनको प्राप्त नहीं किया जाता। वह साक्षात् ज्योतिस्वरूप हैं। वह ऊर्ज्जिता अर्थात् अपने स्वरूप से संपूर्ण को अधःकृत करती हैं। मुमुक्षुगण उनकी चिन्ता करते हैं। विशेष तत्त्व अर्थात् जगत् भ्रम निराकृत होने से, जो विज्ञानयोग उत्पन्न होता है, उसके प्रभाव से ही उन को जाना जाता है। विशेष अर्थात् सांख्य, तत्त्व अर्थात् ज्ञानयोग द्वारा ही उनका स्वरूप व्यक्त हुआ है। वह मृतास्थि अर्थात् काल के समय अपनपं में सम्पूर्ण हरण करती हैं वह निर्मित स्रजा अर्थात् सम्पूर्ण को माया के बल से निर्माण करके उस माया जनित अज्ञान से समुद्भूत ममतापाश में बद्ध करके रखती हैं वह मृगेन्द्रवाहना

सुशुद्धतत्वतोषणां त्रिवेदपारभूषणाम् ॥ भुजङ्गहारहारिणीं कपाल खण्डधारिणीम् । सुधार्मिकोपकारिणीं सुरेन्द्रवैरिघातिनीम् ॥ कुठारपाशचापिनीं कृतान्तकामभेदिनीम् । शुभांकपालमालिनीं सुवर्णकल्पशाखिनीम् ॥ श्मशानभूमिवासिनीं द्विजेंद्रमौलिभाविनीम् । तमोऽन्धकारयामिनीं शिवस्वभावकामिनीम् ॥ सहस्रसूर्य्यराजिकां धनञ्जयोग्रकारिकाम्।सुशुद्धकालकन्दलां सुभृङ्गवृन्दमंजुलाम्॥ प्रजापिनीं प्रजावतीं नमामि मातरं सतीम् । स्वकर्मकारणे गतिं हरप्रियांच

अर्थात् उन्होंने स्वयं हिंसा धर्म को अपने आधीन किया है । वह अग्रजा अर्थात् सब के आगे उत्पन्न हुई हैं । वह सुशुद्धा अर्थात् निरवच्छिन्नस्वत्वस्वरूप हैं। वह तत्वतोषणा अर्थात् एकमात्र सत्य द्वारा ही संतोष लाभ करती हैं । वह तीनों बेद के पार अर्थात् अतीत हैं । वह भूषणा अर्थात् सबको ही आविर्भावमात्र से सुशोभित करती हैं । वह सदा अर्थात् सत्स्वरूप से सम्पूर्ण व्याप्त करती हैं । वह औचित्यैकलक्षणा अर्थात् जो कुछ न्यायसङ्गत है, वह वही हैं । वह मनोजवैरी अर्थात् उन्होंने संसारबन्धन का हेतुभूत रजोगुण का ध्वंस किया है । वह लक्षणा अर्थात् संसार की सर्वत्र सर्वदा समस्त वस्तु में उनको देखा जाता है । वह भुजङ्ग अर्थात् भोगासक्त पुरुषों की हार अर्थात् संसार की प्रीति हरण करती हैं । वह कपालखण्डधारिणी अर्थात् सम्पूर्ण ही अदृष्ट को परिचालन करती हैं । वह धार्मिकगणों का उपकार और सुरेन्द्रगणों के वैरी विनाश करती हैं । वह कुठारपाशचापिनी अर्थात् छेदन बन्धन निराकरण करती हैं । वह कृतान्तकी कामनाभेद अर्थात् मृत्यु निवारण करती हैं । वह सम्पूर्ण सौभाग्य रूपिणी हैं । वह कपालमालिनी अर्थात् तमोगुणभूषित हैं । वह सुवर्णा हैं । वह कल्पशाखिनी अर्थात् समस्त की मनोकामना पूर्ण करती हैं । वह श्मशान अर्थात् प्रलयस्वरूप हैं । वह भूमि अर्थात् सम्पूर्ण की स्थितिस्वरूप हैं । वह वासिनी अर्थात् उन्होंने सम्पूर्ण को व्याप्त और आवृत किया है । वह द्विजेन्द्रमौलिभाविनी अर्थात् सम्पूर्ण द्विजेन्द्र मस्तकद्वारा उनकी पूजा करते हैं । वह तमोन्धकारयामिनी अर्थात् महाप्रलयरात्रि हैं । वह शिवकी अर्थात् सर्वमङ्गलमय पुरुष की स्वभावकामिनी अर्थात् प्रकृति हैं वह सहस्र सूर्य्यकी समान प्रकाशयुक्त हैं । वह धन और वही जय हैं । वह उग्रकारिका अर्थात् महाप्रलयादि संघटित करती हैं । वह प्रजापिनी अर्थात् सब ही उनका जप करते हैं । वह प्रजावती अर्थात् संपूर्ण संसार ने उनसे जन्म ग्रहण किया है । वह सब की माता हैं । वह सती अर्थात् सर्वकाल सर्वदेश में स्थिति करती हैं । उनको प्रणाम करता हूं । वह हरप्रिय अर्थात् साक्षात् मायारूप से सम्पूर्ण को मोहित करके उनकी प्रीति आकर्षण करती हैं । वह पार्वती अर्थात् अङ्कारस्वरूप हैं । वह अनन्त शक्ति हैं ।

पार्वतीम् ॥ अनन्तशक्तिकान्तिदां यशोऽर्थभुक्तिमुक्तिदाम् । पुनः पुनर्जगद्धितां नमाम्यहं सुरार्चिताम् ॥ जयेश्वरी ! त्रिलोचने ! प्रसीद देवि ! पाहिमाम् । जयन्ति ते स्तुवन्ति ये शुभं लभन्त्यमोघतः ॥ सदैव ते हतद्विषः परं भवन्ति सज्जुषः । नराः परे शिवेऽधुना प्रसाधि मां करोमि किम् ॥ अतीव मोहितात्मानो वृथा विचेष्टितस्य मे । कुरु प्रसादितं मनो यथाऽस्मि जन्मभंजनः ॥ तथा भवन्तु तावका यथैव घोषितालकाः । इमां स्तुतिं ममेरितां पठन्ति कालिसाधकाः । न ते पुनः सुदुस्तरे पतन्ति मोहगह्वरे ॥

इतिश्रीब्रह्मकृत्कालिस्तवः समाप्तः ।

इति श्री पूर्णानन्दगिरि परिव्राजक परमहंसविरचितं
श्यामारहस्यं समाप्तम् ॥

यह कान्तिदा अर्थात् माया प्रसव करती हैं। वह भुक्ति मुक्ति और यश का साधन हैं। यह जगत् का हित करने वाली और सुख देने वाली है। इसलिये सम्पूर्ण उनकी अर्चना करते हैं। मैं भी इसी कारण बारम्बार उनको नमस्कार करता हूं। तुम्ही जया, तुम्हीं ईश्वरी. तुम्हीं त्रिलोचना अर्थात् त्रिभुवन के लोचन अर्थात् ज्ञानस्वरूप हो। अतएव प्रसन्न हो और मेरी रक्षा करो। जो तुम्हारा स्तव करते हैं, वह जयलाभ करते हैं। वही शुभसंग्रह करते हैं। वही सर्वदा शत्रुसंहार करते हैं। एवं वही सर्वदा सत् सम्भोग करते हैं। हे शिवे ! अब आज्ञा करो, मुझको क्या करना चाहिये। मेरी आत्मा मोह से अतीव आच्छन्न है। इसलिए मैं वृथा कार्य्य में सर्वदा प्रवृत्त होता हूं। अतएव जिससे फिर मेरा जन्म न हो, वही विधान करो। काली साधकगण मेरा यह स्तोत्र पाठ करने से पुनर्बार मोहगह्वर में पतित नहीं होते ॥

इति श्री ब्रह्मकृतकालीस्तव सम्पूर्णम् ।
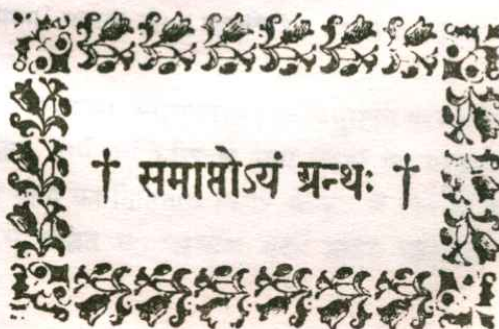
कुलार्णवतन्त्रम्

(ऊर्ध्वाम्नायतन्त्रात्मकम्-'कल्याणी'-हिन्दी व्याख्या सहितश्च)

सम्पादक एवं भूमिका लेखक : डॉ. सुधाकर मालवीय

हिन्दी अनुवादक : पं. चितरञ्जन मालवीय

कौल शब्द 'कुल' शब्द से निष्पन्न होता है। कुल शब्द के अन्यान्य अर्थ पाये जाते हैं—1. मूलाधारचक्र, 2. जीव, प्रकृति, दिक्, काल, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश—इन नौ तत्त्वों की 'कुल' संज्ञा है। ३. श्रीचक्र के अन्तर्गत त्रिकोण की कुल संज्ञा है, इसी को योनि भी कहते हैं। सौभाग्यभास्कर ग्रन्थ में कौलमार्ग शब्द का स्पष्टीकरण 'कुल' = शक्ति, अकुल = शिव के रूप में किया गया है। कुल से अकुल का अर्थात् शक्ति से शिव का सम्बन्ध ही कौल है। कौलमतानुसार शिवशक्ति में कोई भेद नहीं है। कुलार्णव तन्त्र कौल सम्प्रदाय का अत्यन्त प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है।

प्रस्तुत संस्करण का मूल पाठ आर्थर एवलोन के संस्करण पर आधृत है। महामना संस्कृत शोध संस्थान के विद्वान् पं. चितरञ्जन मालवीय द्वारा इस ग्रन्थ की इदं प्रथमतया हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इस ग्रन्थ के सम्पादक एवं भूमिका लेखक डॉ. सुधाकर मालवीय, संस्कृत विभाग, कला संकाय, का. हि. वि. वि. वाराणसी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। इस प्रकार काशी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों द्वारा संशोधित एवं व्याख्यात यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है और शोधार्थियों द्वारा संग्रहणीय है।

पृ. 392 मूल्य : रु. 200/-

ज्ञानार्णवतन्त्रम्

सम्पादक एवं भूमिका लेखक : डॉ. सुधाकर मालवीय
हिन्दी अनुवादक : पं. रामरञ्जन मालवीय

ज्ञानार्णव तन्त्र का प्रस्तुत संस्करण श्रीविद्या के उपासकों के समक्ष इदं प्रथमतया हिन्दी के साथ प्रस्तुत है। प्रस्तुत संस्करण का मूल आनन्दाश्रम के मुद्रित मूल पर आधारित है तथा अनेक स्थानों पर पाठों को मन्त्रमहोदधि आदि अन्य ग्रन्थों से मिलाकर शुद्ध किया गया है। श्रीविद्याविषयक अनेक ग्रन्थ सम्प्रदायानुसार प्राप्त होते हैं। ज्ञानार्णव तन्त्र का उनमें एक विशिष्ट स्थान है। त्रिपुरसुन्दरी की उपासना इस तन्त्र का मुख्य विषय है।

श्रीविद्या के कादि, हादि और कहादि नामक तीन भेद प्रसिद्ध हैं। कादियों की देवी काली, हादियों की त्रिपुरसुन्दरी और कहादियों की तारा (अथवा नीलसरस्वती) हैं। तीनों सम्प्रदायों के अपने-अपने मान्य ग्रन्थ हैं, जिनमें त्रिपुरसुन्दरी की उपासना पद्धति का तन्त्र ग्रन्थ ज्ञानार्णव है।

प्रस्तुत ज्ञानार्णव तन्त्र की हिन्दी व्याख्या प्रथमतः महामना संस्कृत शोध संस्थान के विद्वान् पं. रामरञ्जन मालवीय द्वारा की गई है। ग्रन्थ के सम्पादक एवं भूमिका लेखक डॉ. सुधाकर मालवीय का. हि. वि. वि. वाराणसी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। इन दोनों विद्वानों द्वारा सम्पादित एवं अनूदित यह तन्त्र ग्रन्थ संग्रहणीय है।

पृ. 344 **मूल्य : रू. 200/-**

दो भागों में प्रकाशित — मूल्य 1000/-, डिमाई साइज, पृष्ठ संख्या - 990

श्रीमद्भगवद्गीता की प्राचीन टीकाओं में सरस्वती के वरद पुत्र मधुसूदन सरस्वती कृत 'गूढ़ार्थ दीपिका' नामक टीका का विशिष्ट स्थान है। इनके सम्बन्ध में यह उक्ति प्रसिद्ध है—

वेत्ति पारं सरस्वत्याः मधुसूदनसरस्वती मधुसूदन सरस्वत्याः पारं वेत्ति सरस्वती ॥

इसमें ज्ञान, कर्म एवं भक्ति के साथ गूढ़ार्थ का सम्यग् विवेचन है। द्वैत एवं अद्वैत की दृष्टि से गीता का निहितार्थ क्लिष्ट संस्कृत में होने के कारण सामान्य पाठक इसके रसास्वाद से वञ्चित थे। महामना मदन मोहन मालवीय जी के अनुरोध पर

(२७२)

श्रीस्वामिनारायणतीर्थविरचित

योगसिद्धान्तचन्द्रिका

भूमिका, परिशिष्ट, टिप्पणी आदि से विभूषित

संपा. - प्रो. विमला कर्नाटक

सत्रहवीं शताब्दी के आचार्य श्री स्वामिनारायणतीर्थविरचित 'योगसिद्धान्तचन्द्रिका' संस्कृत में उपनिबद्ध एक मौलिक टीका है। व्यासभाष्यानुसारी योगसूत्र की टीका होते हुए भी इसमें ऐसे नवीन विषयों की उद्भावना हुई है, जो पातञ्जलयोग की पूर्ववर्ती तत्त्ववैशारदी, योगवार्त्तिक आदि प्रौढ संस्कृत टीकाओं में उपलब्ध नहीं है। इसे योगसूत्र का उपजीव्यग्रन्थ कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। षड्दर्शननिष्णात स्वामिनारायणतीर्थ का यह चूडात्र निदर्शन है। योगसूत्र के अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिये अत्यन्त उपयोगी होने के कारण प्रोफेसर विमला कर्नाटक ने इस टीका को अपने पूर्ण रूप से प्रकाशित करने के अपने चिरसंकल्प को साकार किया है। इसके लिये डॉ. विमला कर्नाटक ने भारतवर्ष के प्रमुख-प्रमुख संस्कृत शोधप्रतिष्ठानों से सम्बन्धित पाण्डुमातृकाओं का सश्रम संकल्प कर उनका अनुशीलन किया। इस प्रकार सौ वर्ष पूर्व खण्डित अवस्था में प्रकाशित 'योगसिद्धान्तचन्द्रिका' टीका को अनुसन्धान की पाठभेदपरक पद्धति से परिष्कृत एवं संवर्द्धित कर उसे पूर्ण अवस्था में प्रकाशित किया है। इस प्रकार पातञ्जलयोगवाङ्मय की श्रीवृद्धि करने में डॉ. विमला कर्नाटक का भगीरथ प्रयास वर्तमान 'योगसिद्धान्तचन्द्रिका' संस्करण में स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

रु. 200/-,

कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रंथ

गौतमीयतन्त्रम् । महर्षिगौतमप्रणीतम् । सम्पादक–भगीरथ झा	५०-००
त्रिपुरारहस्य का तन्त्रविश्लेषण । (प्राचीन भारतीय तन्त्रसाधना एव आधुनिक युगीन मनोविश्लेषणशास्त्र का तुलनात्मक विवेचन) लेखक–डा० अरविन्द वसावडा, हिन्दी व्याख्याकार–डा० भवानीशंकर उपाध्याय	४०-००
रुद्रयामलतन्त्रम् । (उत्तरतन्त्रम्) श्लोकानुक्रमणिका सहित । सम्पादक–डा० रामकुमार राय	३५०-००
गन्धवतन्त्रम् । श्लोकानुक्रमणिका सहित । सम्पादक–डॉ० रामकुमार राय	१५०-००
षट्चक्रनिरूपणम् । पूर्णानन्दयतिविरचितम् कालीचरण-कृत 'श्लोकार्थपरिष्कारिणी' शंकरकृत 'षट्चक्रभेद-टिप्पणी' विश्वनाथकृत 'षट्चक्रविवृत्ति' संस्कृत-सविमर्श 'प्रह्लाद' हिन्दी व्या० सहित । सम्पादक एव व्याख्याकार–गो० प्रह्लादगिरि वेदान्तकेशरी	७५-००
षट्चक्रनिरूपणम् । पूर्णानन्दयतिविरचित । सविमर्श 'प्रह्लाद' हिन्दी व्या० सहित । व्या० प्रह्लादगिरि वेदान्तकेशरी	२०-००
क्रमदीपिका । केशवभट्टप्रणीत । विद्याविनोद श्रीगोविन्द भट्टाचार्यकृत विवरण सहित । डा० सुधाकर मालवीय-कृत सविमर्श 'सरला' हिन्दी व्याख्या सहित	१२५-००
श्रीमाहेश्वरतन्त्रम् । अपौरुषेयम् नारदपाञ्चरात्रान्तर्गतम् । श्रीसुमङ्गलया पराशक्त्याविर्भावित श्रीशिवेनोमाया उपदिष्ट ब्रह्मरहस्यात्मकम् 'सरला' हिन्दी व्याख्योपेतम् । सम्पादक: व्याख्याकारश्च–डा० सुधाकर मालवीय	२५०-००
कुलार्णवतन्त्रम् । 'कल्याणी' हिन्दी टीका सहित । अनु० पं० चितरंजन मालवीय, संपा० डॉ० सुधाकर मालवीय	२००-००
उड्डामरेश्वरतन्त्रम् । 'शान्तीश्वरी' हिन्दी टीका संवलितम् । टीकाकार–डा० बृजेशकुमार शुक्ल	४०-००

सहयोगी प्रतिष्ठान—चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी-१

मूल्य : २००-००